अधिगम एवं शिक्षण

(LEARNING AND TEACHING)

Mr. Vikas Sharma
Mrs. Monika Rani
Mrs. Ranjana

TANDON PUBLICATIONS®
LUDHIANA

अधिगम एवं शिक्षण

(LEARNING AND TEACHING)

P.S.R.S.C.E.
3671
AL-6 S-3

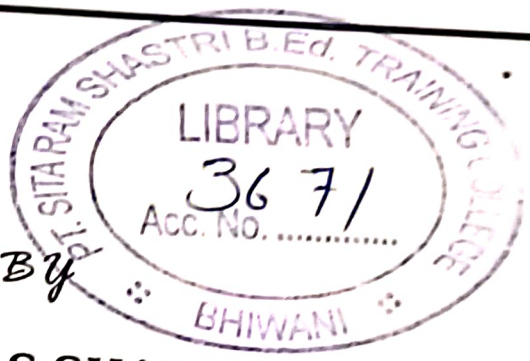

BY

Mr. VIKAS SHARMA

*[M.Sc. (Physics), M.Ed., UGC NET in Edu.
M.Phil in Edu., Prusing Ph.D. in Edu.]*

Mrs. MONIKA RANI

*[M.Sc. (Computer Science),
M.A. (Political Science), M.Ed.]*

Mrs. RANJANA

[M.A. (Sanskrit), M.Ed.]

TANDON PUBLICATIONS (TM)

BOOKS MARKET, LUDHIANA

Published by :
TANDON PUBLICATIONS
BOOKS MARKET, LUDHIANA. 141008
Phones : (0) 0161-2728794
Mobile : 98159-08794, 79862-14940
Email : tandonpublications@yahoo.com
Trade Mark No. : 1611885

Branch Office :
TANDON PUBLICATIONS
Basti Buron Khan, Near Kusht Ashram
Tanda Road, Jalandhar City (Punjab)

© Copy Right Strictly Reserved by the Publisher

ISBN-978-93-85720-00-0

Price : ₹ 275-50

Composed by :
Computer People
Jalandhar City.

Printed at :
Bright Printers
Jalandhar City.

प्रस्तावना

प्रिय पाठकों,

प्रस्तुत पुस्तक बी. एड. और एम. एड. के विद्यार्थियों के लिए एक कारागर रूप साबित हो, इस प्रयास हेतु जीवन पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक का निर्माण किया गया है।

अधिगम एवं शिक्षण पुस्तक में नवीन इकाईयों को समाहित करते हुए विद्यार्थियों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई है। पुस्तक का उद्देश्य विद्यार्थियों को सरल रूप से ज्ञान अर्जन और सहज समझ बोध का कारक मान कर रखा गया है।

पुस्तकीय मानकता विद्यार्थियों की सफलता पर हीं निर्भर रही है इसी कारण यह पाठकों में सफलता का रूप बन उभरी है। मैं आभार प्रकट करता हूँ **टण्डन प्रकाशन** का जिन के द्वारा विद्यार्थियों को ये लाभ सदैव मिलता रहा है।

आपके आवश्यक सुझाव हमारे सदैव प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं।

शुभ कामना सहित

लेखकगण

SYLLABUS

COURSE II : LEARNING AND TEACHING

COURSE CONTENT

UNIT–1

- Teaching : Concept, Nature, Importance of Teaching and Phases of Teaching: Pre-active, Inter-active and Post-active
- Teaching : Different from Instruction, Training and Indoctrination
- Levels of Teaching : Memory, Understanding and Reflective level
- Theories of Teaching : Formal Theories, Descriptive Theories, Normative Theories

UNIT–2

- Models of Teaching
  * Bruner's Concept Attainment Model
  * Mastery Learning Model
  * Inquiry Training Model
  * Glaser's Basic Teaching Model
- Strategies of Teaching
  * Simulation
  * Brain-storming
  * Lecture
  * Demonstration
  * Team-Teaching

UNIT–3

- Learning : Concept, Importance, Types and Factors Affecting Learning
  * Concept of e-learning (m-learning and online learning)
  * Constructivism
  * Learning styles
- Flander's Interaction Analysis : Concept, Procedure and Significance in Teaching-Learning
- Use of ICT in Teaching Learning Process

UNIT–4

- Evaluation in Teaching–Learning Process : Concept, Need and Characteristics of Evaluation
- Evaluation Devices-Written, Oral and Observation
- Types of Evaluation : Formative, Summative and Diagnostic
- Grading and its Types
- Continuous and Comprehensive Evaluation

विषय सूची

इकाई – I
(Unit – I)

1. शिक्षण
(Teaching) 3
2. शिक्षण सम्बन्धित अवधारणा अनुदेशन, प्रशिक्षण और प्रतिपादन
(Teaching ; Different from Instruction, Training and Indoctrination) 25
3. शिक्षण के सिद्धान्त
(Theories of Teaching) 52

इकाई – II
(Unit – II)

4. शिक्षण के प्रतिमान
(Models of Teaching) 63
5. शिक्षण की नीतियाँ
(Strategies of Teaching) 82
6. दल शिक्षण/टोली शिक्षण/समूह शिक्षण
(Team Teaching) 92
7. फ्लैण्डर्स अन्त: क्रिया विश्लेषण प्रणाली
(Flander's Interaction Analysis System) 99
8. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी
(Information and Communication Technology or ICT) 114

इकाई – III
(Unit – III)

9. अधिगम संप्रत्यय महत्त्व, प्रकार एवं अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक 125
(Learning Concept Importance, Types and Factor Affecting Learning)
— ई–लर्निंग अधिगम (E-Learning)
— एम–लर्निंग/अधिगम (M-Learning)
— ऑनलाईन–लर्निंग (Online-Learning)

10. सीखने की शैली
(Learning Style) 139

इकाई – IV
(Unit – IV)

11. मूल्यांकन
(Evaluation) 145

12. सतत् या व्यापक मूल्यांकन
(Continuous and Comprehensive Evaluation) 190

इकाई – I
(Unit – I)

1. शिक्षण
   (Teaching)
2. शिक्षण सम्बन्धित अवधारणा अनुदेशन, प्रशिक्षण और प्रतिपादन
   (Teaching ; Different from Instruction, Training and Indoctrination)
3. शिक्षण के सिद्धान्त
   (Theories of Teaching)

1

शिक्षण
(Teaching)

शिक्षण का सामान्य अर्थ है अध्यापक वर्ग द्वारा अपनाया गया व्यवसाय अथवा कम अनुभवी व कम ज्ञान वाले विशेष व्यक्ति को अनुभवी व अधिक ज्ञानी व्यक्ति द्वारा दिया गया ज्ञान।

इसमें किसी व्यक्ति को कुछ सिखाने के लिये कुछ विशेष ज्ञान, कौशल, रुचियों और अभिवृत्ति आदि प्राप्त करने के लिये दी जाने वाली सहायता। शिक्षण सामाजिक और सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में घटने वाली जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक प्रक्रिया है, जो समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक रूप के अनुसार बदलता रहता है।

- **शिक्षण को अच्छी तरह जानने के लिये निम्न परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है।**
- **परिभाषा**

1. बी. ओ. स्मिथ (B.O. Smith, 1960) : "शिक्षण सीखने हेतु सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं की एक प्रणाली है।"

(Teaching is a system of actions intendes to produce learning.)

2. क्लार्क (Clark, 1970) : "शिक्षण से तात्पर्य उन क्रियाओं से है जिनकी संरचना और जिनका परिचालन विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये किया जाता है।"

(Teaching refers to activities that are designed and performed to produce change in student behaviour.)

3. थोमस एफ. ग्रीन (Thomas F. Green, 1971) : शिक्षण शिक्षक का वह कार्य है जिसे बालक के विकास के लिये किया जाता है।

(Teaching is the task of teacher which is performed for the development of a child.)

4. एन. एल. गेज (N.L. Gage, 1962) : शिक्षण से तात्पर्य उस व्यक्तिगत पारस्परिक प्रभाव से है जिसे किसी दूसरे व्यक्ति की व्यावहारिक क्षमताओं में परिवर्तन लाने के लिये डाला जाता है।

(Teaching is a form of interpersonal influence aimed at changing the behaviour potential of another person.)

5. एच. सी. मौरीसन (H.C. Morrison, 1934) : "शिक्षण एक अधिक परिपक्व (mature) व्यक्तित्व और कम परिपक्व व्यक्तित्व के बीच वह घनिष्ठ सम्पर्क है जिसके द्वारा कम परिपक्व व्यक्तित्व को शिक्षा की दिशा में और आगे बढ़ाया जा सकता है।"

(Teaching is an intimate contact between a more mature personality and a less mature one which is designed to further the education of the latter.)

उपरोक्त सभी परिभाषायें किसी न किसी प्रकार से पूर्ण नहीं है। इनमें शिक्षण की प्रकृति, उसमें निहित घटकों, तत्वों तथा क्रियाओं उनके द्वारा पूरे किये गयें लक्ष्यों की सही जानकारी नहीं मिल पाती।

शिक्षण वास्तव में गतिमान व व्यापक संप्रत्यय है जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

शिक्षण से अभिप्राय एक ऐसी त्रिध्रुवीय प्रक्रिया (Tripolar process) से है जिसमें शिक्षण के स्त्रोत विद्यार्थी व विद्यार्थी के वय्वहार में परिवर्तन लाने के लिये आवश्यक सभी क्रियाओं के प्रारूप और आयोजन पर ध्यान दिया जाता है।

शिक्षण की अवधारणा
(Concept of Teaching)

शिक्षण की अवधारणा काफी व्यापक एवं विस्तृत है। शिक्षण की अवधारणा के अन्तर्गत निम्न विषय शामिल है।

— शिक्षण का अर्थ एवं परिभाषायें।

— शिक्षण की प्रकृति एवं विशेषतायें।

— शिक्षण का अन्य समरूप संप्रत्ययों से सम्बन्ध।

— शिक्षण संप्रत्यय का विशलेषणात्मक स्वरूप।

— शिक्षण के चर तथा उनके कार्य।

शिक्षण की प्रकृति विशेषतायें
(Nature and Characteristics of Teaching)

शिक्षण की प्रकृति व विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. शिक्षण कला व विज्ञान है : शिक्षण में कला व विज्ञान दोनों होते हैं। सिल्वरमैन महोदय ने इस विषय में कहा है- "शिक्षण औषधिविज्ञान की तरह एक कला है, क्योंकि इसमें प्रतिभा और सृजनात्मकता का प्रयोग किया जाता है, चिकित्सा विज्ञान की तरह यह भी एक विज्ञान है, क्योंकि इसमें ऐसी तकनीक तरीकों और कौशलों का प्रयोग होता है जिनका निरन्तर अध्ययन करना, वर्णन करना व सुधार लाना संभव होता है।"

2. शिक्षण व्यवसाय से सम्बन्धित क्रिया है (Teaching is related to profession activity) : शिक्षण को व्यावसायिक क्रियाओं से जोड़ा जाता है जिनसे एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों की प्रगति व विकास कर सकता है।

3. शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है (Teaching is a social process) : शिक्षण समाज में समाज के लिये और समाज द्वारा की जानी वाली प्रक्रिया है। समाज व समाज में शामिल सदस्यों के विचार, उद्देश्य, कार्य प्रणाली और संगठन में विविधता और निरन्तर परिवर्तनशीलता शिक्षण को कोई सरल, सर्वमान्य और स्थिर रूप प्रदान नहीं कर सकती।

4. शिक्षण का परिचालन विद्यार्थी के मार्गदर्शन व प्रगति के लिये : शिक्षण में अध्यापक अपने विद्यार्थियों की प्रगति व मार्गदर्शन के लिये प्रयत्नशील रहता है।

5. शिक्षण पारस्परिक अन्तःक्रिया है (Teaching is an interactive process) : शिक्षण विद्यार्थी व शिक्षण साधनों के बीच चलने वाली पारस्परिक अन्तः प्रक्रिया है।

6. शिक्षण में उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास : कक्षा में निश्चित समय में सीखने व सिखाने के लिये की गई क्रियाओं को शिक्षण कहा जाता है। शिक्षण के अनेक रूप होते हैं जैसे- औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा, निदेशात्मक व अनुदेशात्मक प्रशिक्षण, सुधारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) अनुबंधन (conditioning) और प्रतिपादन (indoctrination) वर्णन, प्रयोग, प्रदर्शन आदि शिक्षण के अनेक रूप होते हैं। जिनके द्वारा शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

7. शिक्षण द्वारा विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना : शिक्षण के द्वारा अनेक प्रकार की क्रियायें क़रवाई जाती हैं। इन सभी क्रियाओं को इस प्रकार संगठित व आयोजित किया जाता है। सामाजिक और भौतिक वातावरण में पाठ्य सामग्री, पाठ्य-विधियों और शिक्षण साधनों द्वारा विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन किया जा सके।

8. शिक्षण अध्यापक की मेहनत का फल (Teaching is the output emanating from the teacher) : विद्यार्थी अपने जीवन में जो कुछ भी सीखते हैं, अपने जीवन में जो सफलता प्राप्त करते हैं। यह सभी एक अध्यापक के परिश्रम का फल होता है।

9. संप्रेषण अच्छे शिक्षण की विशेषता : शिक्षण में एक अच्छा संप्रेषण होना अति-आवश्यक है। ज्ञान, कर्म और भावनाओं का सफलतापूर्वक संप्रेषण करना एक अच्छे शिक्षण की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। यह संप्रेषण-क्रिया शिक्षण, शिक्षण के अन्य स्त्रोतों, विद्यार्थी और शिक्षण क्रियाओं की बीच एकसमान चलती रहती है।

10. शिक्षण का वैज्ञानिक रूप में प्रयोग : शिक्षण में अध्यापक व्यवहार, विद्यार्थी अध्यापक अन्त:क्रिया और विद्यार्थियों के व्यवहार में आये हुये परिवर्तनों से शिक्षण में क्या हो रहा है उसका क्या फल है, उसका विश्लेषण व मूल्यांकन वैज्ञानिक तरीकों से किया जा सकता है। इस प्रकार का किया गया मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया में सुधार व परिवर्तन लाने के लिये पर्याप्त प्रतिपुष्टि (Feedback) प्रदान करता है।

11. शिक्षण एक अति विशिष्ट व कौशलों से युक्त कार्य है : शिक्षण एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण व विशेष कार्य है। जिसके द्वारा शिक्षण के ऐसे विशेष कौशलों का प्रयोग किया जाता है जिनके आधार पर शिक्षण में निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है।

निष्कर्ष : अन्त में हम कह सकते है कि शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया, कला-विज्ञान, अध्यापक के परिश्रम, वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग, विशेष कौशलों और शिक्षक व विद्यार्थी की पारस्परिक अन्त: क्रिया द्वारा ही सफल हो सकता है।

शिक्षण का महत्त्व
(Importance of Teaching)

शिक्षण का एकमात्र उद्देश्य व लक्ष्य विद्यार्थियों को सीखाना होता है। शिक्षण हमेशा विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास, प्रगति व उसमें सशक्तता लाने के लिये किया जाता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक व्यवहार में अपेक्षित वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है। इस शिक्षण प्रक्रिया में एक अध्यापक ही विद्यार्थी की सहायता कर सकता है, वही विद्यार्थी को शिक्षण के उद्देश्य बता सकता है और उसे अधिगम कार्य में तत्पर कर सकता है।

वैसे तो एक विद्यार्थी शिक्षक के बिना भी सीखने में तत्पर हो सकता है। जैसे अपने आप पढ़कर (स्वाध्याय), पुस्तकालय में पुस्तकों द्वारा, ई-लर्निंग द्वारा और अन्य साधनों द्वारा सीख सकता है, स्वयं ही खोज कार्य या अनुसंधान द्वारा सीख सकता है। परन्तु इसमें वह इनती सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, जितना एक अध्यापक का शिक्षण अपने अधिगम से सीखाकर उसे सफलता प्रदान कर सकता है।

एक अध्यापक द्वारा किया गया शिक्षण कार्य विद्यार्थियों के अधिगम कार्य में निम्न रूप से सहायक सिद्ध हो सकता है :

1. अभिप्रेरणा (Motivation) : शिक्षण विषय-वस्तु में शिक्षक की सक्रियता को प्रदर्शित करता है। इससे शिक्षण में सक्रियता स्थापित होती है, जिससे छात्रों व शिक्षकों अभिप्रेरणा मिलती है।

2. प्रभावशाली-शिक्षण (Effective-Teaching) : छात्रों के निरंतर अभ्यास, अनेक प्रकार की शिक्षण विधियों का प्रयोग, शिक्षक का ज्ञान, विद्यार्थियों की शिक्षण में रूचि आदि के माध्यम से शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

शिक्षण
(Teaching)

शिक्षण सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण में घटित होने वाली जटिल, सांस्कृतिक तथा नैतिक प्रक्रिया है। इसका स्वरूप तथा संगठन, उस समाज के सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप के अनुसार परिवर्तित होता रहता है जिसमें यह घटता है। शिक्षण कार्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व शिक्षण का अर्थ समझना उचित होगा।

शिक्षण का अर्थ : शिक्षण शब्द को अंग्रेजी भाषा में Teaching कहा जाता है। शिक्षणं शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है सीख देना या सिखाना। वर्तमान समय में शिक्षण विद्यार्थियों अध्यापक द्वारा ज्ञान देने तक ही सीमित नहीं है। शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी में वांछित ज्ञान व कौशल को विकसित किया जाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी, अध्यापक, पाठ्यक्रम, पाठ्य विधियों, पाठ्य वस्तुओं व अन्य पाठ्य सम्बन्धित वस्तुओं को पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये विधिवत तथा मनोवैज्ञानिक रूप से नियोजित किया जाता है।

सामान्य अर्थों में शिक्षण अध्यापक वर्ग द्वारा अपनाया गया व्यवसाय है। इसमें कम अनुभवी व्यक्ति को अधिक अनुभवी व्यक्ति ज्ञान प्रदान करता है। शिक्षण किसी व्यक्ति को कुछ सिखाने के लिये कुछ विशेष ज्ञान, कौशल, रूचियों और अभिवृत्ति आदि प्राप्त करने के लिये दी जाने वाली विशेष सहायता से है। शिक्षण अध्यापक व छात्र के बीच होने वाली अन्तः प्रक्रिया है, जिसके आधार पर एक अध्यापक छात्र के व्यवहार में वांछित परिवर्तन किया जा सकता है।

परिभाषा :

शिक्षण के अर्थ अच्छी प्रकार समझने के लिये शिक्षाशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है।

1. रायन्स (Ryans) : "दूसरों को सीखाने के लिये दिशा निर्देश देने तथा अन्य प्रकार से उन्हें निर्देशित करने की प्रक्रिया को शिक्षण कहा जाता है।"

("Teaching is concerned with the activities which are concerned with the guidance or direction of the learning of other.")

2. स्मिथ (Smith) : "शिक्षण का उद्देश्य निर्देशित क्रिया है।"

("Teaching is a goal directed activity.")

3. क्लार्क (Clarke, 1970) : "शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसके प्रारूप तथा संचालन की व्यवस्था इसलिये की जाती है जिससे छात्रों के व्यवहारों में परिवर्तन लाया जा सके।"

("Teaching process is designed and performed to produce change in student behaviour.")

4. थोमस. एफ. ग्रीन (Thomas F. Green, 1971) : "शिक्षण शिक्षक का वह कार्य है जिसे बालक के विकास के लिये किया जाता है।"

("Teaching is task of teacher which is performed for the development of a child.")

5. गेज (Gage) : "शिक्षण एक प्रकार का पारस्परिक प्रभाव है जिसका उद्देश्य है दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों में परिवर्तन लाना है।"

("Teaching is an act of interpersonal influence aimed at changing the ways in which other person can or will behave.")

6. रायबर्न (Ryburn) ने "शिक्षण एक सम्बन्ध है जो विद्यार्थी को उसकी शक्तियों के विकास में सहायता देता है।"

("Teaching is a relationship which helps the child to develop his powers.")

7. एच. सी. मौरिसन (H.C. Morrison) : "शिक्षण एक अधिक परिपक्व व्यक्तित्व के बीच वह घनिष्ठ सम्पर्क है जिसके द्वारा कम परिपक्व व्यक्तित्व को शिक्षा की दिशा में और आगे बढ़ाया जा सकता है।"

("Teaching is an intimate contact between a more mature personality and a less mature which is designed to further the education of the latter.")

8. गिलफोर्ड (Gilford) : "शिक्षण व्यवहार में परिवर्तन है।"

9. बर्टन (Burton) : "शिक्षण अधिगम के कार्य में प्रेरणा, मार्गदर्शन, निर्देशन व उत्साह है।"

("Teaching is the stimulation, guidance, direction and encouragement of learning.")

इस प्रकार, बहुत से विद्वानों ने शिक्षण की अनेक परिभाषायें दी है। प्रत्येक विद्वान ने शिक्षण सम्बन्धी अपनी विशिष्ट धारणा प्रकट की है। शिक्षण से अभिप्राय एक ऐसे त्रिपक्षीय सम्बन्ध (Triadic relation) अथवा त्रिध्रुवीय प्रक्रिया से है जिसमें शिक्षण के

स्त्रोत (मानवीय और भौतिक), विद्यार्थी और विद्यार्थियों के व्यवहार में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिये आवश्यक सभी क्रियाओं के प्रारूप और आयोजन पर ध्यान दिया जाता है।

शिक्षण संप्रत्यय
(Concept of Teaching)

किसी वस्तु व्यक्ति या विचार विशेष के प्रति हमारी जो धारणा बन जाती है, उसे हम संप्रत्यय (Concept) कहते हैं। संप्रत्यय में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष ज्ञान छिपा रहता है। शिक्षण संप्रत्यय में निम्नलिखित तत्व विद्यमान होती है।

1. शिक्षण का अर्थ।
2. शिक्षण की प्रकृति और विशेषतायें।
3. शिक्षण और अधिगम के पारस्परिक सम्बन्धो के विषय में सोचना।
4. शिक्षण के विश्लेषणात्मक स्वरूप (Analytical Concept) की चर्चा करना।
5. शिक्षण व उसके विभिन्न चरणों की व्याख्या करना।

शिक्षण की प्रकृति व विशेषताएँ
(Nature and Characteristics of Teaching)

शिक्षण का अर्थ, परिभाषायें व संप्रत्यय जानने के बाद हमें शिक्षण की प्रकृति और विशेषताओं के बारे में जानना चाहिये। शिक्षण की प्रकृति क्या है ? शिक्षण की विशेषतायें क्या है ? शिक्षण में तीन मुख्य बिन्दुओं में सम्बन्ध होता है। (1) शिक्षक (2) विद्यार्थी (3) विषय-वस्तु। शिक्षण प्रक्रिया विशेष परिस्थितियों में दी जाने वाली शिक्षा है, जो विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करती है। इसमें शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही क्रियाशील होते है। इस सम्बन्ध में व्याप्त धारणाओं को समझने के लिये शिक्षण की प्रकृति व विशेषतायें जानना आवश्यक है, जो निम्नलिखित है :

1. शिक्षण का कार्य ज्ञान प्रदान करना (Giving information) : शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा छात्रों को ज्ञान प्रदान किया जाता है। किसी भी छात्र को पूर्ण ज्ञान नहीं होता है और न ही वह स्वयं अकेला ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। अनेक वस्तुओं के प्रयोग के विषय में उसे ज्ञान नहीं होता। इन वस्तुओं के प्रयोग के ज्ञान के लिये छात्रों को शिक्षण की आवश्यकता है। शिक्षण ही उनमें ज्ञान का संचार करता है।

2. शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है (Teaching is a social process) : शिक्षण समाज में, समाज के लिये और समाज द्वारा चलाई गई एक प्रक्रिया है। शिक्षक और छात्र दोनों ही समाज के सक्रिय सदस्य है। इन दोनों के द्वारा ही समाज में अनेक प्रकार की अच्छी क्रियायें संचालित की जाती है।

3. अनेक क्रियाओं का सम्मिश्रण (Mixture of many activities) : शिक्षण एक क्रिया द्वारा सम्पन्न नहीं होता। इसे पूरा करने के लिये अनेक विधियों व क्रियाओं का प्रयोग करना पड़ता है। जैसे- पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ना, विषय-वस्तु को प्रस्तुत करना, अभिप्रेरणा और मूल्यांकन आदि। ये क्रियायें एक-दूसरे से सम्बन्धित होती है।

4. शिक्षण एक व्यावसायिक क्रिया है (Teaching is a professional activity) : शिक्षण एक व्यावसायिक क्रिया है। इसमें एक शिक्षक अपने विद्यार्थियों की प्रगति और विकास में सहायता करता है।

5. परिवर्तनशील प्रकृति (Dynamic in Nature) : शिक्षण का दूसरा नाम परिवर्तनशीलता है। शिक्षण हमेशा परिवर्तनशीलता की प्रक्रिया से गुजरता है। समय की गति के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों और आदर्शों में परिवर्तन होता है।

6. शिक्षण कला और विज्ञान दोनों है (Teaching is both art as well as science) : शिक्षण की प्रकृति कलात्मक और विज्ञानमयी दोनों प्रकार की है। शिक्षक की प्रकृति कला प्रधान भी है और व्यक्ति प्रधान भी होती है।

सिल्वरमैन ने इस विषय में कहा है-

"शिक्षण चिकित्सा की तरह एक कला है। क्योंकि इसमें अच्छे व्यवहार या शिष्टता के साथ-साथ सृजनात्मकता भी होती है, परन्तु इसके साथ-साथ यह विज्ञान भी है क्योंकि इसमें नई तकनीकों और कौशलों का प्रयोग होता है। जिनका क्रमबद्ध अध्ययन करना होता और उन्हें विकसित करना होता है।"

7. संवेगों की शिक्षा (Training to Emotions) : शिक्षण बच्चों के संवेगात्मक जीवन को शिक्षा एवं उत्साह देने वाली एक क्रिया है। शिक्षण के द्वारा बच्चों को स्वतन्त्र और प्रेममय वातावरण प्रदान करना चाहिये और शिक्षण के द्वारा उनके संवेगो सही दिशा देनी चाहिये। जिससे उनका संवेगात्मक जीवन विकसित हो।

8. शिक्षण औपचारिक व अनौपचारिक (Teaching Formal and Informal) : शिक्षण औपचारिक व अनौपचारिक दोनों प्रकार का होता है। औपचारिक शिक्षण से अभिप्राय विद्यालय में पूर्ण की जाने वाली शिक्षा से सम्बन्धित क्रियायें। अनौपचारिक शिक्षण से अभिप्राय है विद्यालय या कक्षा से बाहर पूर्ण की जानी वाली क्रियायें।

9. कौशलपूर्ण व्यवसाय (A skilled occupation) : शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है। प्रत्येक व्यक्ति इसमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। शिक्षण में सफलता प्राप्त करने के लिये, उसे उचित परिस्थितियों का निर्माण करने के लिये शिक्षण व अनुदेशन की विभिन्न विधियों का ज्ञान होना चाहिये। शिक्षा के उद्देश्यों व अर्थ का भी ज्ञान होना चाहिए।

10. शिक्षण में सम्प्रेषण कौशल का विकास होता है (Teaching is dominated by communication skills) : शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो कम से कम दो लोगों के बीच सम्पादित की जाती है। यह प्रक्रिया शिक्षक और विद्यार्थी के बीच में होती है। अध्यापक और विद्यार्थी भाषा द्वारा एक-दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इस प्रकार शिक्षण में दोनों के बीच संप्रेषण कौशल विकसित होता है।

11. शिक्षण का वैज्ञानिक रूप में प्रयोग : शिक्षण में अध्यापक व्यवहार, विद्यार्थी अध्यापक अन्त: क्रिया और विद्यार्थियों के व्यवहार में आये हुए परिवर्तनों से शिक्षण में क्या हो रहा है, उसका विश्लेषण व मूल्यांकन वैज्ञानिक तरीकों से किया जाता है। इस प्रकार का किया गया मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया में सुधार व परिवर्तन लाने के लिये पर्याप्त प्रतिपुष्टि (Feedback) प्रदान करता है।

12. शिक्षण निदानात्मक प्रक्रिया है (Teaching is a remedial process) : शिक्षण में भी शिक्षक एक चिकित्सक की तरह शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का उपचार करता है। जैसे एक चिकित्क रोग के कारण को जानकर उपचार करता है, उसी तरह एक शिक्षक भी शिक्षण में शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं को जानकर उनका उपचार या निदान करता है।

13. मार्गदर्शन (Guidance) : शिक्षण विद्यार्थियों के लिये मार्गदर्शन का भी कार्य करता है। शिक्षण का कार्य विद्यार्थियों को उचित समय, उचित विधि तथा उचित वस्तुओं के विषय में जानकारी प्रदान करना है। शिक्षण में बच्चों का इस प्रकार से मार्गदर्शन करना चाहिये कि छात्र का समय और शक्ति नष्ट न हो। उसे उचित मार्गदर्शन करना चाहिये।

14. शिक्षण में निरीक्षण व अवलोकन किया जाता है (Teaching is amenable to observation and analysis) : शिक्षण में छात्रों द्वारा किये गये कार्य का निरीक्षण और अवलोकन किया जाता है। इस आधार पर छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन किया जा सकता है।

15. शिक्षण एक त्रि-ध्रुवीय प्रक्रिया है (Teaching is Tripolar process) : वी. एस. ब्लूम ने शिक्षण को एक त्रि-ध्रुवीय प्रक्रिया माना है। जिसमें शिक्षण उद्देश्य, अधिगम अनुभव व छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन आदि शामिल होते हैं।

16. शिक्षण योजनाबद्ध प्रक्रिया है (Teaching Planned activity) : शिक्षण एक योजनाबद्ध व नियमित प्रक्रिया है। इसमें शिक्षण से सम्बन्धित कार्य एक योजना के आधार पर किया जाता है। शिक्षण विशिष्ट योजना अनुसार संगठित होता है।

17. शिक्षण की प्रकृति परिवर्तनशील (Teaching nature is Dynamic) : शिक्षण में समय और स्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। समय की गति के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों और आदर्शों में परिवर्तन होता रहता है।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त शिक्षण की अनेक उत्तम विशेषतायें और भी है। जिनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार है।

1. अच्छे शिक्षण में व्यक्ति स्वयं सीखता है।
2. अच्छे शिक्षण सुव्यवस्थित नियोजन की आवश्यकता होती है।
3. अच्छे शिक्षण में अनेक प्रकार की सूचनायें प्रदान की जाती है।
4. अच्छे शिक्षण की प्रकृति प्रगतिशील होती है।
5. अच्छा शिक्षण नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से जोड़ता है।
6. अच्छा शिक्षण प्रजातान्त्रिक मूल्यों पर आधारित होता है।
7. अच्छे शिक्षण में निर्देश दिये जाते हैं न कि आदेश।
8. अच्छे शिक्षण अध्यापक व छात्र में परस्पर अन्तः क्रिया होता है।
9. अच्छे शिक्षण में अध्यापक व छात्र सहयोग भावना से काम करते हैं।
10. अच्छे शिक्षण में अच्छी शिक्षण विधियों का प्रयोग होता है।
11. अच्छा शिक्षण छात्रों में संवेगात्मक स्थिरता लाता है।
12. अच्छा शिक्षण निदानात्मक व उपचारात्मक होता है।
13. अच्छा शिक्षण वातावरण को छात्रों के अनुकूल करता है।
14. अच्छा शिक्षण छात्रों को अच्छा भविष्य प्रदान कता है।
15. अच्छे शिक्षण अध्यापक और छात्र के सम्बन्ध मधुर होते हैं।

शिक्षण का महत्त्व
(Importance of Teaching)

शिक्षण का एकमात्र उद्देश्य और लक्ष्य विद्यार्थियों को सिखाना होता है। शिक्षण हमेशा विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास, प्रगति और उनमें सशक्तता लाने के लिये किया जाता है। इसके द्वारा विद्यार्थी के संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना होता है। शिक्षण प्रक्रिया में एक अध्यापक ही विद्यार्थी की सहायता कर सकता है। उसे शिक्षण के उद्देश्य व लक्ष्य के बारे में बता सकता है और उसे अधिगम कार्य में तत्पर कर सकता है।

वैसे तो एक विद्यार्थी शिक्षक के बिना अपने आप भी सीख सकता है जैसे स्वाध्याय से, पुस्तकालय में पुस्तकों द्वारा, ई-लर्निंग द्वारा और शिक्षा के अन्य साधनों द्वारा सीख सकता है। परन्तु इसमें वह इतनी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता जितनी एक अध्यापक का अधिगम उसे सीखा सकता है।

एक अध्यापक द्वारा किया गया शिक्षण कार्य विद्यार्थियों के द्वारा अधिगम कार्य में निम्न रूप से सहायक सिद्ध हो सकता :

1. शिक्षण क्रियाओं की योजना (Planning of Teaching Activities) : शिक्षण में शिक्षण कार्य सम्पन्न करने के लिये शिक्षण क्रियायें नियोजित की जाती है। शिक्षण कार्य को जानने के लिये शिक्षण योजनायें बनाने के लिये शिक्षण को जानना बहुत आवश्यक है। पाठ-योजना बनाते समय छात्र-अध्यापक इसका लाभ उठा सकते है।

2. कौशलों को अच्छी प्रकार प्राप्त करने में सहायक (Helps in proper acquisition of skills) : बालक हमेशा दूसरों के व्यवहार को देखकर और उसका अनुकरण करके सीखते हैं। जैसे- एक लड़की सी.डी. देखकर, विडियो देखकर और टी.वी. देखकर अपने आप ही नृत्यु सीख लेती है और इसका निरन्तर अभ्यास करती हुई इस कौशल को अपने-आप अर्जित (प्राप्त) कर लेती है। परन्तु इस प्रकार का कौशल उस कौशल की तुलना नहीं कर सकता जो कौशल एक अध्यापक और प्रशिक्षक द्वारा दिया जाता है।

3. शिक्षण में सक्रियता (Activeness in Teaching) : विषय-वस्तु में शिक्षक की सक्रियता होने के कारण शिक्षण में सक्रियता अपने-आप ही आ जाती है। जिस कारण शिक्षक और छात्र दोनों ही सक्रिय हो जाते हैं।

4. शिक्षण के तथ्यों और नियमों के ज्ञान प्राप्त करने में सहायक (Teaching helps in the proper acquisition of facts and principles) : शिक्षण विद्यार्थी की नियमों और तथ्यों को समझने में उचित प्रकार से सहायता करता है। यदि कोई विद्यार्थी स्वाध्याय (पुस्तकालय या ई-लर्निंग) द्वारा शिक्षण के तथ्यों और नियमों को समझने का प्रयास करता है तो वह विषय-विशेष से सम्बन्धित नियमों और तथ्यों को उचित प्रकार से समझ नहीं सकता। परन्तु यदि एक शिक्षक अपने शिक्षण द्वारा उन तथ्यों और नियमों को आसान बनाकर विद्यार्थियों को समझाता है। विद्यार्थी को शिक्षण द्वारा उस विषय का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। इसमें विद्यार्थी अधिगम को रटते नहीं है। बल्कि विषय अच्छी प्रकार समझकर उसका स्थायी ज्ञान प्राप्त करते हैं।

5. समय और प्रयास बचाने में सहायता (Helps in saving the time and efforts) : जब कोई अधिगमकर्त्ता या बच्चा अपने-आप सीखने का प्रयास करता है तो

इससे उसका समय और परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। परन्तु शिक्षण कार्य में अपने शिक्षकों द्वारा प्राप्त ज्ञान, अनुभवों और कौशलों द्वारा विद्यार्थी ज्ञान को आसानी से सीख सकता है।

6. सर्वांगीण विकास (Wholesome development) : शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बच्चे का सर्वांगीण विकास करना होता है। शिक्षण के द्वारा बच्चे के सभी पक्षों का जैसे- शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक, कलात्मक और भाषात्मक का विकास किया जाता है। किसी भी व्यक्ति और समाज के सशक्तता के लिये व्यक्ति सम्पूर्ण और समन्वित विकास जरूरी है। शिक्षण के द्वारा ही बालकों को व्यक्ति की वृद्धि और विकास आदि तथ्यों से परिचित कराता है। इसी कारण इसे बालकों की बुद्धि, विकास, प्रगति और कल्याण के लिये इसे महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

7. प्राप्त तथ्यों का अभ्यास करना (Practice for the learned facts) : शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया के बाद अपने विद्यार्थियों से यह आशा करते हैं कि उन्होंने जो कुछ भी पढ़ाया या सिखाया है विद्यार्थी उनका अभ्यास करे।

कक्षा शिक्षण में एक अध्यापक द्वारा अभ्यास, पुनरावृत्ति और अनुप्रयोग के अनुभव प्रदान करने के लिये समूह में अथवा व्यक्तिगत रूप से अभ्यास कार्य करने, गृहकार्य और प्रोजेक्ट कार्य सम्बन्धी गतिविधियों के अवसर दिये जाते हैं। इससे बच्चों में सीखे हुए ज्ञान को अपने मस्तिष्क में ज्ञान को धारण करने, अभ्यास करने और उसमें निपुणता प्राप्त करने और अर्जित ज्ञान व कौशलों को उपयोगी ढंग से प्रयोग लाने में सहायता मिलती है।

8. योजना बनाना : शिक्षण-क्रियाओं में शिक्षण की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिये शिक्षण में योजना बनाना बहुत आवश्यक है। छात्राध्यापक पाठ-योजना बनाकर शिक्षण क्रियाओं पर सक्रिय रूप से काम कर सकते है।

9. छात्र-अध्यापक प्रशिक्षण (Pupil teacher's training) : शिक्षण द्वारा छात्रों में शिक्षण-कौशल विकसित होता है। जिस कारण छात्र-अध्यापक शिक्षण की सभी क्रियाओं में प्रशिक्षित हो जाते है।

10. राष्ट्र के विकास और प्रगति में सहायक (Helps in the progress and development of the Nation) : शिक्षण के द्वारा न केवल बालकों का ही विकास और प्रगति होती है बल्कि उनके साथ-साथ वे जिस समाज और राष्ट्र में रहते है उस समाज और राष्ट्र की भी प्रगति होती है। शिक्षण द्वारा समाज और राष्ट्र में वांछित और सकारात्मक परिवर्तन किये जा सकते हैं। शिक्षण द्वारा समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाने साथ-साथ समाज से कुरीतियों, अंधविश्वास और रूढ़िबद्धता को भी समाप्त किया जा सकता है।

शिक्षण के अन्य महत्त्व :

1. शिक्षण द्वारा छात्रों में उत्साह जगाया जा सकता है।
2. शिक्षण द्वारा व्यक्ति को अच्छा और सुव्यवस्थित वर्तमान और भावी जीवन दिया जा सकता है।
3. शिक्षण द्वारा छात्रों की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।
4. शिक्षण द्वारा छात्रों को उत्तम नागरिक बनाया जा सकता है।
5. शिक्षण द्वारा छात्रों का ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक विकास किया जा सकता है।
6. शिक्षण द्वारा छात्रों में संवेगों को विकसित किया जा सकता है।

शिक्षण के चरण या अवस्थायें
(Phases of Teaching : Pre-active, Inter-active and Post-active)

शिक्षण एक जटिल सामाजिक क्रिया है शिक्षण को उचित प्रकार से सम्पन्न करने के लिये शिक्षण में एक क्रमबद्ध योजना की आवश्यकता होती है। शिक्षण प्रक्रिया का मुख्य कार्य अधिगम को प्रभावशाली बनाना है। शिक्षण प्रक्रिया को सुचारू और नियोजित रूप से चलाने के लिये शिक्षण में कुछ सोपानों या चरणों को व्यवस्थित करके आगे बढ़ना होता है। इन्हीं अवस्थाओं या चरणों को शिक्षण अवस्थाओं या शिक्षण चरणों (Phases of Teaching) की संज्ञा दी गई है। शिक्षण की अवस्थाओं को व्यक्त करने के लिये कई विद्वानों ने शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ी हुई विभिन्न चरणों या अवस्थाओं की व्याख्या की है।

जेम्स के. डंकन ने शिक्षण को चार अवस्थाओं वाली क्रिया माना है। ये चार अवस्थायें निम्नलिखित है :

(1) पाठ्यक्रम योजना (2) मापन (3) अनुदेश (4) मूल्यांकन

परन्तु शिक्षण क्रियाओं का विश्लेषण तीन अवस्थाओं में किया गया है।

जैक्सन ने शिक्षण को तीन चरणों में बाँटा है :

1. शिक्षण का पूर्व-क्रियाशील चरण
   (Pre-active Phase of Teaching)
2. शिक्षण का अंत:क्रियाशील चरण
   (Inter-active Phase of Teaching)
3. शिक्षण का उत्तर क्रियाशील चरण
   (Post-active Phase of Teaching)

शिक्षण की अवस्थायें
(Phases of Teaching)

↓	↓	↓
शिक्षण की पूर्व अवस्था (Pre-active Phase of Teaching)	शिक्षण की अन्त: क्रियात्मक अवस्था (Inter active Phase of Teaching)	शिक्षण की उत्तर क्रियात्मक अवस्था (Post-active Phase of Teaching)

शिक्षण की पूर्व-क्रियात्मक अवस्था (Pre-active Phase of Teaching)

यह शिक्षण कार्य की नियोजन अवस्था होती है। इसमें योजना बनाकर शिक्षण किया जाता है। इसे तैयारी अवस्था (Preparation stage) भी कहा जाता है।

इसमें शिक्षण कार्य करने से पहले योजना बनाई जाती है। अध्यापक अपनी योग्यता, ज्ञान, अनुभव व विषय के अनुसार कक्षा में शिक्षण उद्देश्यों को निर्धारित करता है। उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये पाठ्य सामग्री को योजना के अनुसार क्रमानुसार प्रस्तुत करता है। इसमें अध्यापक पाठ योजना बनाता है। इस अवस्था को Planning Phase (योजना अवस्था) कहा जाता है।

इस अवस्था में निम्नलिखित कार्य व क्रियायें सम्मिलित होती है।

प्रमुख शिक्षण क्रियायें (Operation at Pre-active Phase)

इस चरण में निम्नलिखित क्रियायें है :

1. शिक्षण उद्देश्यों का निर्माण (Fixation of Goals) : इसमें अध्यापक द्वारा शिक्षण उद्देश्यों का निर्माण व निर्धारण किया जाता है। पाठ के उद्देश्यों को निर्धारित करके उन्हें व्यवहारिक शब्दावली में प्रयोग किया जाता है। अध्यापक यह निश्चित करता है कि उसे विद्यार्थी के व्यवहार में किस प्रकार परिवर्तन करता है।

शिक्षण के इस चरण में दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व है :

1. विद्यार्थियों का पूर्व व्यवहार (Entering Behaviour)
2. विद्यार्थियों का अन्तिम व्यवहार (Terminal Behaviour)

इनकी व्याख्या करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है :

1. शिक्षण की व्यवहारिक क्रियाओं की पहचान करना।

2. छात्रों के अपेक्षित व्यवहार में परिवर्तन करना।

3. योजना स्तर पर मूल्यांकन की व्याख्या या विश्लेषण करना।

2. पाठ्य-वस्तु सम्बन्धी निर्णय व पाठ्य सामग्री का चयन (Decision making about subject matter and selection of sub-matter) : उद्देश्यों के निर्माण के बाद पाठ्य वस्तु के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है और पाठ्य सामग्री का चयन किया जाता है और उन्हें विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत करके उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन किया जाता है। इस कार्य के लिये निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है :

1. पाठ्यक्रम की क्या आवश्यकता है ?

2. छात्रों का पूर्व व्यवहार क्या है ?

3. ज्ञान का मूल्यांकन कैसे किया जाए ?

4. किस स्तर पर प्रेरणा प्रभावशाली होती है ?

3. पाठ्यवस्तु व पाठ्य-सामग्री को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करना : विषय-वस्तु के निश्चित होने के बाद पाठ्य-वस्तु व पाठ्य-सामग्री को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित करके उसे क्रम से प्रस्तुत किया जाता है। इस सम्बन्ध में अध्यापक को शिक्षा का स्थानान्तरण तथा मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है।

4. शिक्षण-नीतियों के सम्बन्ध में निर्णय (Decision-making about the strategies of Teaching) : पाठ्यवस्तु को क्रम में रखने के बाद अध्यापक को उचित शिक्षण नीतियों और विधियों का चुनाव करना पड़ता है। शिक्षण नीतियों का चयन करते समय विद्यार्थियों के स्तर तथा शिक्षण के उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाता है। अध्यापक शिक्षण के लिये यह महत्त्वपूर्ण कार्य है।

5. शिक्षण नीतियों का विकास व विस्तार (Development of teaching strategies) : उचित शिक्षण नीतियों के बाद अध्यापक को यह निर्णय लेना होता है कि शिक्षण के समय वह कब और कहाँ किस शिक्षण विधि का प्रयोग करेगा- अर्थात् उसे कब चार्ट, चित्रों व मॉडल का प्रयोग करना है, उसे कब प्रश्न पूछने है, कब और कैसे ब्लैक-बोर्ड का प्रयोग करना है और मूल्यांकन कैसे करना है आदि।

शिक्षण की पूर्व-सक्रिय अवस्था में निम्नलिखित कार्य भी हैं :

1. विषय व पाठ का चुनाव।

2. अनुदेशनात्मक लक्ष्यों का विशिष्टीकरण।

3. विषय-वस्तु का विश्लेषण।

4. विद्यार्थियों के पूर्व व्यवहार का विशिष्टीकरण।

5. शिक्षण इकाई से सम्बन्धित केन्द्रीय सामग्री लिखना।

पूर्व सक्रिय अवस्था अध्यापक अनेक लक्ष्यों को निश्चित करता है। विषय-वस्तु व नीतियों का आपस में सामंजस्य स्थापित किया जाता है। इस प्रकार यह कार्यान्वयन अवस्था में सफल शिक्षण का मार्ग दिखाती है।

शिक्षण की अन्त: क्रियात्मक अवस्था और इसकी क्रियायें (Inter-active Stage of Teaching and its Operation)

शिक्षण कार्य की यह दूसरी अवस्था क्रियान्वयन चरण (Implementation stage) के रूप में हमारे सामने आती है। वास्तविक कक्षीय शिक्षण ही शिक्षण की अन्त: क्रिया अवस्था है। अध्यापक इस अवस्था में जो कुछ भी नियोजित करता है, उसे इस अवस्था में कार्यान्वित किया जाता है। इसमें अध्यापक का वह व्यवहार शामिल किया जाता है जो व्यवहार वह कक्षा में प्रवेश करने पर करता है।

पी. डब्ल्यू. जैकसन (P.W. Jackson) के अनुसार, अन्त: क्रिया अवस्था में अध्यापक विद्यार्थियों को अनेक प्रकार की शाब्दिक अभिप्रेरणायें प्रदान करता है। वह व्याख्या करता है, प्रश्न पूछता है, विद्यार्थियों की अनुक्रियायें सुनता है और निर्देशन देता है।

(During the Interactive stage, "the teacher provides pupils verbal stimulation of various kinds, makes explation, asks questions, listens to student's responses and provides guidance.")

इसमें अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच कक्षा-कक्ष अन्त: क्रिया होती है। अन्त: क्रिया जितनी संजीव, यथार्थपूर्ण और प्रभावपूर्ण होती उतनी ही शिक्षण अधिगम उद्देश्यों में सफलता प्राप्त होगी। इस क्रियान्वयन चरण की गतिविधियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. प्रत्यक्षीकरण (Perception)
2. निदान (Diagnosis)
3. प्रतिक्रियात्मक प्रक्रियायें (Reactive-processes)

1. प्रत्यक्षीकरण (Perception) : कक्षा-कक्ष अन्त: क्रिया में अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच में प्रत्यक्षीकरण होना आवश्यक है। कक्षा में प्रवेश करते ही अध्यापक का पहला काम कक्षा की स्थिति का निरीक्षण करना है। जब तक अध्यापक अपने विद्यार्थियों को ठीक तरह नहीं समझ पाएगा तब तक उचित शिक्षण अधिगम के लिये

वांछित अन्त: क्रिया करना सम्भव नहीं हो सकता। एक अध्यापक कक्षा के आकार को देखता है, विद्यार्थियों के चेहरे के हाव-भाव देखता है। प्रत्यक्षीकरण द्वारा वह यह जान सकता है क्या चीज उसके लिये सहायक है और क्या चीज उसके लिये कठिनाई उत्पन्न कर सकती है। उसे योग्य और कमजोर बच्चों की पहचान हो जाती है।

इसी प्रकार विद्यार्थी को अध्यापक की योग्यता व व्यवहार का ज्ञान प्रत्यक्षीकरण द्वारा हो जाता है।

2. निदान (Diagnosis) : विद्यार्थियों के साथ उचित अन्त: क्रिया करने के लिये उनकी योग्यताओं, क्षमताओं व्यक्तित्व और उनके व्यवहार सम्बन्धी बातों की जानकारी होना आवश्यक है। कक्षा का अवलोकन करने के बाद अध्यापक विद्यार्थियों के उपलब्धि स्तर को जाँचने के लिये निम्नलिखित प्रयास करता है।

1. योग्यतायें (Abilities)
2. अभिरूचियाँ (Aptitude)
3. अभिवृत्तियाँ (Attitudes)
4. रूचियाँ (Interests)
5. बुद्धि (Intelligence)
6. अकादमिक पृष्ठभूमि (Academic background)

इस तरह एक अध्यापक विभिन्न तरीकों और तकनीकों की सहायता लेकर विद्यार्थियों के विषय विशेष के प्रारम्भिक व्यवहार स्तर की उचित जानकारी हो जाये। पहले से उन्हें कितना ज्ञान और बोध है, कितनी और किस प्रकार की कुशलतायें उनके अन्दर है, इस बात का बोध उसे अपने शिक्षण के लिये विद्यार्थियों के साथ वांछित अन्त:क्रिया करने के लिये उसे ठीक प्रकार तैयार कर सकता है।

निदानात्मक कार्य कुछ प्रश्न पूछकर किया जा सकता है अथवा व्यवहार एवं कार्य के कुछ अवसर प्रदान करके भी अध्यापक उनके स्तर की जाँच कर सकता है। शाब्दिक एवं अशाब्दिक अन्त: क्रियाओं द्वारा विद्यार्थियों को भी अपनी योग्यताओं, अभिरूचियों, अभिवृत्तियों, रूचियों आदि को जाँचने का अवसर मिलता है और वे इस प्रकार के शिक्षण कार्य में प्रभावशाली योगदान में सक्षम हो जाते हैं।

3. प्रतिक्रियात्मक क्रियायें (Reactive processes) : अध्यापन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में दो प्रकार की क्रियायें शामिल होती है :

1. प्रारम्भ (Initiation)
2. प्रतिक्रिया या अनुक्रिया (Response)

ये दोनों क्रियायें अध्यापक और विद्यार्थियों की बीच सम्पन्न होती है। इन दोनों को शाब्दिक अन्त:क्रिया (Verbal Interaction) का नाम दिया गया है। जब अध्यापक कुछ क्रियायें करता है तो विद्यार्थी उनके प्रति अनुक्रिया करता है। इस प्रकार विद्यार्थी जब कोई क्रिया करता है तब अध्यापक उनके प्रति अनुक्रिया करता है। जिससे कक्षा में अन्त:क्रिया चलती है। शाब्दिक अन्त:क्रिया के साथ-साथ अशाब्दिक अन्त:क्रिया भी चलती है।

अन्त:क्रिया को दो भागों में बाँटा गया है :

1. शाब्दिक अन्त: क्रिया (Verbal Interaction)
2. अशाब्दिक अन्त:क्रिया (Non-verbal Interaction)

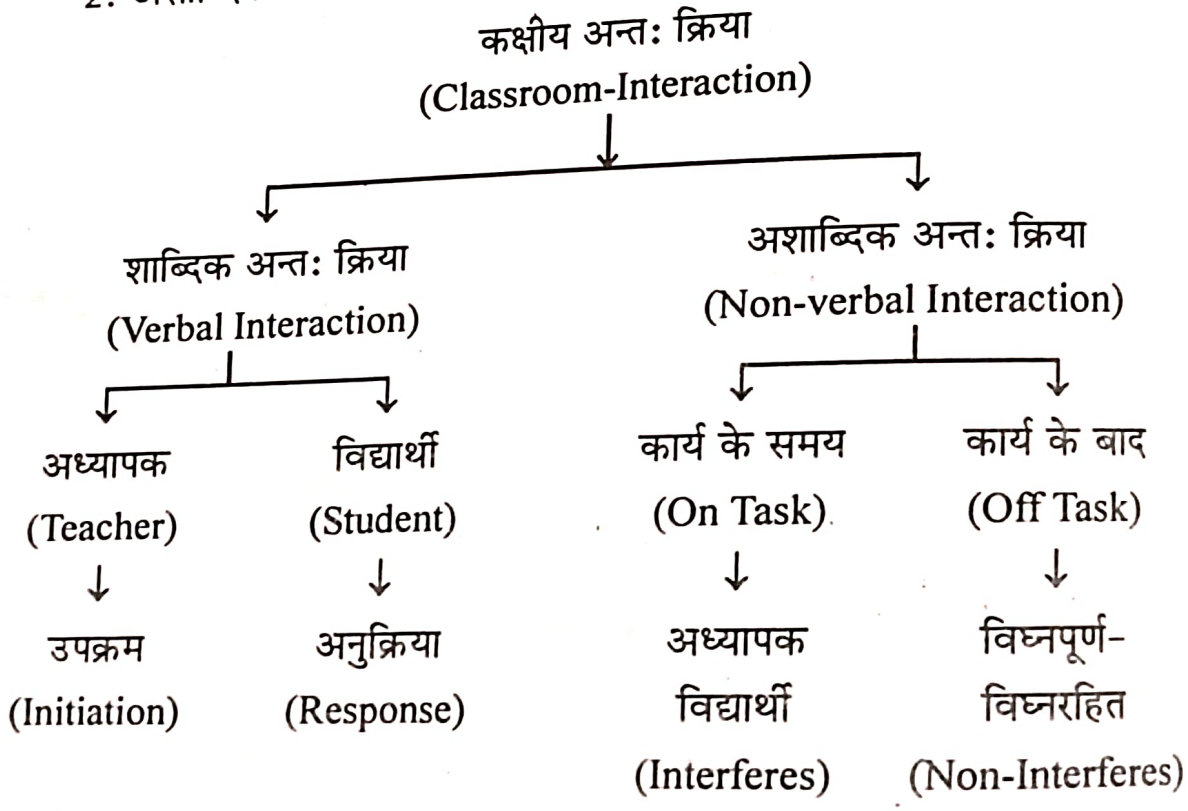

इनमें शाब्दिक अन्त:क्रिया सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। यह अध्यापक और विद्यार्थी के बीच अनुकरण (Imitation) अथवा अनुक्रिया (Response) द्वारा होती है। शिक्षण में अशाब्दिक अन्त: क्रिया भी महत्त्वपूर्ण होती है। यह शिक्षण में रचनात्मक वातावरण का निर्माण करती है।

अन्त:क्रिया अवस्था शिक्षण में ऐसा वातावरण उत्पन्न करती है जो शिक्षण अधिगम को प्रभावशाली बनाती है।

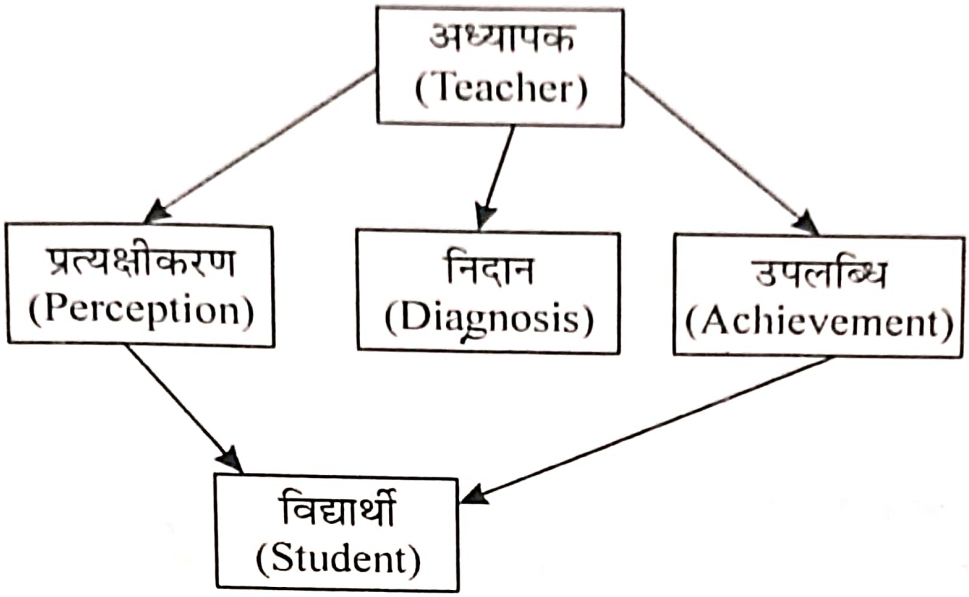

चित्र : अन्त:क्रिया अवस्था के कार्य

अन्तः क्रिया अवस्था के अन्य कार्य

डॉ. मावी के अनुसार शिक्षण अधिगम में अन्त:क्रिया अवस्था के अन्य कार्य भी है। जो निम्नलिखित प्रकार से हैं।

1. प्रस्तुत करना (Presenting)
2. पूछना (Asking)
3. अनुक्रिया करना (Responding)
4. प्रतिक्रिया करना (Reacting)
5. संरचना करना (Structuring)
6. मूल्यांकन करना (Evaluating)
7. पुनर्बलन अथवा पृष्ठपोषण प्रदान करना (Reinforcing or Providing a Feedback)

ब्राउन के अनुसार शिक्षण अधिगम अन्त:क्रिया के कार्य-

1. व्याख्या करना (Explaining)
2. अभिमुखता (Orientation)
3. बन्द करना (Closure)
4. सजीवता (Leveliness)
5. श्रव्य-दृश्य सहायक साधनों का प्रयोग (Using Audio-Visual aids)
6. विद्यार्थियों की विविध क्रियायें (Varying student's activities)

7. निर्देश देना (Giving directions)

8. तुलना करना (Comparing)

9. विवरण (Narrating)

इस प्रकार शिक्षण में अन्त:क्रियाशील चरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इनकी सहायता द्वारा शिक्षण कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सकता है।

शिक्षण की उत्तर क्रिया अवस्था और इसके कार्य (Post active Stage of Teaching and its Operations)

शिक्षण प्रक्रिया की यह तीसरी व अन्तिम अवस्था है। इसे शिक्षण मूल्यांकन अवस्था (Evaluative stage of Teaching) भी कहा जाता है। यह क्रिया शिक्षण और अधिगम दोनों से सम्बन्धित है। यह अवस्था उस समय आती है जब अध्यापक कक्षा में पढ़ा कर कक्षा से बाहर चला जाता है। अध्यापन शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये किया जाता है। मूल्यांकन द्वारा अध्यापक यह पता लगाता है कि वह शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में कितना सफल हुआ है। इसका अर्थ यह है कि विद्यार्थियों के ऐच्छिक व्यवहार परिवर्तन की प्राप्ति कहाँ तक सम्भव हुई है। इस अवस्था में अध्यापक अपनी नीतियों के प्रति विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं पर विचार करता है।

कक्षा में हुई सभी घटनाओं का प्रत्यास्मरण करता है। अपने तरीके से औपचारिक व अनौपचारिक रूप से मूल्यांकन करता है। इसी मूल्यांकन के द्वारा वह अपने भावी शिक्षण के नियोजन कर सकता है।

उत्तर क्रिया शिक्षण अवस्था की क्रियायें अथवा कार्य निम्नलिखित है :

1. पुन: स्मरण करना (Recollecting) : अध्यापक इस अवस्था में कक्षा में हुई घटनाओं का पुन: स्मरण करता है।

2. सूची बनाना (Listing) : इसमें अध्यापक उन समस्याओं व घटनाओं की सूचि बनाता है जिन्हें अन्त: क्रिया अवस्था के दौरान देखा गया।

3. निष्कर्ष निरूपण (Extrapolating) : इसमें अध्यापक सूची के तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालता है, उसका विश्लेषण करता है और किसी विशेष तथ्य की अन्त: दृष्टि से व्याख्या करता है।

4. दिशा निर्देशों का निर्माण (Formulation of a guideline) : अन्त:क्रिया अवस्था में सामने आई सीमाओं के आधार पर भावी शिक्षण कार्य के निर्देश रेखा का निर्माण करता है। इसका निर्माण सावधानी से किया जाता है और भविष्य में उसे लागू किया जाता है।

5. साक्ष्य का आंकन (Weighing the evidence) : विद्यार्थियों के विचार, अध्यापक का शिक्षण घटनाओं से सम्बन्धित अपना रिकार्ड, भावी शिक्षण के लिये दिशा निर्देश अथवा कार्य-योजना - इन सभी का किसी विशेष प्राकल्पना (Hypothesis) के पक्ष व विपक्ष में साक्ष्य के रूप में परीक्षण किया जाता है।

इन क्रियाओं के अतिरिक्त शिक्षण-अधिगम में उत्तर क्रिया अवस्था के अन्य तीन कार्य और भी है। जो निम्नलिखित है :

1. शिक्षण द्वारा व्यवहार परिवर्तन के वास्तविक रूप की परिभाषा (Designing the Exact Dimensions of Behavioural Change) : शिक्षण खत्म हो जाने के बाद शिक्षक, शिक्षण द्वारा व्यवहार परिवर्तन के वास्तविक रूप को परिभाषित करता है, जिसे मानदण्ड व्यवहार (Criterian Behaviour) कहते है। इसके लिये वह छात्रों में आये वास्तविक परिवर्तनों की तुलना अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन से करता है। यदि अधिकतर छात्रों में वांछित परिवर्तन आ रहा है तो इसका मतलब है कि शिक्षण सफल रहा और उद्देश्यों की प्राप्ति हो गयी। यदि इसके विपरीत परिणाम आये तो मतलब शिक्षण असफल रहा।

2. मूल्यांकन की उपयुक्त प्रविधियों का चयन (Selecting Appropriate Devices and Techniques of Evaluation) : शिक्षक छात्रों के व्यवहार परिवर्तन के मूल्यांकन के लिये विश्वसनीय, वस्तुनिष्ठ तथा वैध (Reliable, Objective and Valid) प्रविधियों का चुनाव करता है। मूल्यांकन करते समय ऐसी प्रविधियों का चयन करना चाहिये जो ज्ञानात्मक, भावात्मक व गत्यात्मक पक्षों का सही मूल्यांकन कर सके।

3. प्राप्त परिणामों से शिक्षण नीतियों में परिवर्तन (Changing the Strategies in Terms of Evidences Gathered) : मूल्यांकन द्वारा शिक्षक को अपने शिक्षण की कमियों तथा सीमाओं ज्ञान हो जाता है। एक अच्छा शिक्षक मूल्यांकन से जानकारी प्राप्त करने के लिये अपनी शिक्षण नीतियों व्यूह रचनाओं और प्रविधियों आदि में सुधार लाकर शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बना सकता है।

उत्तर क्रिया शिक्षण अवस्था का महत्त्व
(Importance of Post-active Stage of Teaching)

उत्तर क्रिया शिक्षण का महत्त्व निम्नलिखित है :

1. उद्देश्यों का मूल्यांकन (Evaluating the objectives) : इसमें निश्चित किये गये लक्ष्यों व उद्देश्यों का मूल्यांकन किया जाता है।

2. विषय-वस्तु का मूल्यांकन (Evaluating the content) : इसमें विषय-वस्तु की उपयुक्तता व उसके निर्माण के लिये सुझाव दिया जाता है।

3. अनुदेशनात्मक प्रक्रिया का मूल्यांकन (Evaluating the instructional process) : इसमें अनुदेशनात्मक प्रक्रिया, सामग्री एवं नीतियों का मूल्यांकन किया जाता है।

4. कक्षीय पर्यावरण का मूल्यांकन (Evaluating the classroom environment) : इसमें कक्षा के वातावरण का मूल्यांकन किया जाता है।

अवस्थाओं का अन्तर्सम्बन्ध

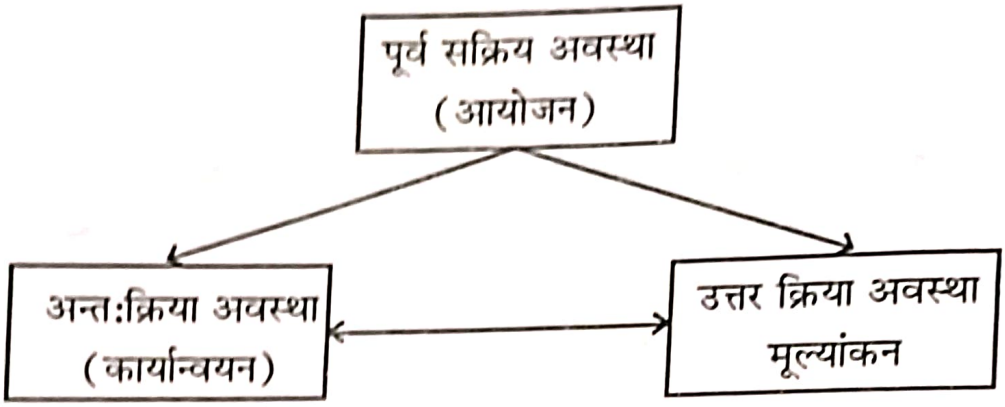

शिक्षण की प्रकृति का विश्लेषण करते समय हमें शिक्षण की तीनों अवस्थाओं की निरतन्तरता, एकता एवं अन्तर्सम्बन्ध को नहीं भूलना चाहिये।

2

शिक्षण सम्बन्धित अवधारणा
अनुदेशन, प्रशिक्षण और प्रतिपादन
(Teaching ; Different from Instruction, Training and Indoctrination)

भूमिका (Introduction)

शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थियों को ज्ञान व कौशल प्रदान करके उनके दृष्टिकोणों में परिवर्तन लाया जा सकता है। शिक्षण कक्षा के ऐसे वातावरण में होता है। जहाँ विद्यार्थी उपस्थित हो और अध्यापक उन्हें अधिगम में सहायता दें। शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं अर्थ को समझने के लिये शिक्षण, अधिगम और अनुदेशन में अन्तर समझना आवश्यक है। शिक्षण एक विस्तृत अवधारणा है। प्रशिक्षण, अनुदेशन व प्रतिपादन शिक्षण से सम्बन्धित सम्प्रत्यय है। शिक्षण प्रक्रिया में प्रशिक्षण और अनुदेशन शब्द का प्रयोग हमेशा किया जाता है। शैक्षिक संस्थानों में सामान्यत: प्रशिक्षक व अनुदेशक शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

प्रशिक्षण शब्द थोड़ा अलग होता है क्योंकि इसमें किसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह किसी भी कौशल का प्रशिक्षण हो सकता है, शिक्षण कौशल भी हो सकता है।

ग्रीन (Green, 1964) ने शिक्षण की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिये 'Teaching Topology' का निर्माण किया। निम्नांकित चित्र ग्रीन के द्वारा दी गयी 'टोपोलोजी' को प्रदर्शित करता है-

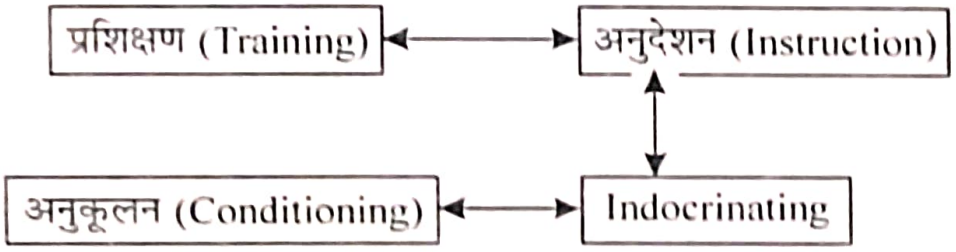

चित्र : Teaching Continum

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि ग्रीन की शिक्षण प्रक्रिया के चार विशिष्ट स्तर है-

(1) अनुकूलन (2) प्रशिक्षण (3) अनुदेशन (4) अनुबंधन

ये चारों स्तर इन्द्रधनुष के अनेक रंगों की तरह एक दूसरे से जुड़े हुये है।

ग्रीन का कथन है - "शिक्षण के स्वरूप को समझने के लिये शिक्षण के इन तत्वों को समझना अधिक उपयोगी है। जब हमें शिक्षण के इन तत्वों का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है तब हम शिक्षण के सच्चे स्वरूप को समझ पाते हैं।"

("The concept of teaching is molecular *i.e.*, as an activity it can best be understood not as single activity but as a whole family of activities.")

अनुदेशन (Instruction) : अनुदेशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बालक ज्ञान प्राप्त करके अपनी बुद्धि का विकास करता है। अनुदेशन शिक्षा का सम्पूर्ण अंश है अनुदेशन प्रणाली सामन्यता शिक्षा संस्थाओं अर्थात् विद्यालयों में प्रदान की जाती है। कुछ सामान्य ज्ञान बच्चों के मस्तिष्क में डाला जाता है, जो उनका बौद्धिक विकास करता है।

डॉ. आर. ऐ. शर्मा (Dr. R. A. Sharma) के अनुसार "अनुदेशन किन्हीं उद्देश्यों के प्रति सीखने वालों को प्रभावित करने की प्रक्रिया है।"

शिक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय शब्द कोश (International Dictionary of Education) के आधार पर, "अनुदेशन को शिक्षण के साथ-साथ प्रयोग किया जाता है। परन्तु विस्तृत सोच-विचार में शिक्षा एक विशेष प्रकार के शिक्षण के प्रशिक्षण कुशलताओं का मिलता-जुलता रूप है। यहाँ विद्यार्थियों के साथ दृश्य-श्रव्य संदेश का प्रयोग हो सकता है।"

शिक्षण एवं अनुदेशन (Teaching and Instruction) : शिक्षण व अनुदेशन एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। परन्तु एक-दूसरे के पर्यायवाची नहीं होते। शिक्षण में अनुदेशन हो भी सकता है और नहीं भी। शिक्षण का अर्थ पहले स्पष्ट कर चुकें हैं।

अब अनुदेशन का अर्थ क्या है ? यह स्पष्ट करते हैं। अनुदेशन का अर्थ उस क्रिया से हैं, जिसमें प्रशिक्षण नहीं होता। अनुदेशन में छात्रों व शिक्षको के बीच अन्त: क्रिया का होना आवश्यक नहीं होता, इसलिये इसका प्रयोग केवल ज्ञानात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये करते हैं। इसमें शिक्षा के अन्य भावात्मक और मनोगत्यात्मक पक्षों के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता, जबकि शिक्षण के द्वारा ज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोगत्यात्मक तीनों पक्षों का विकास सम्भव है।

शिक्षण में अनुदेशन हो सकता है, परन्तु अनुदेशन में शिक्षण नहीं हो सकता। अनुदेशन हमेशा छात्र केन्द्रित होता है। जबकि शिक्षण आवश्यकतानुसार छात्र-केन्द्रित, शिक्षक केन्द्रित, विषय-वस्तु केन्द्रित और परिस्थित केन्द्रित हो सकता है। अनुदेशन और शिक्षण दोनों में ही पृष्ठपोषण, पुनर्बलन पाठ्यवस्तु-विश्लेषण तथा पाठ्य-वस्तु प्रस्तुतीकरण पर विशेष बल दिया जाता है और दोनों ही संप्रत्ययों में सीखने के सिद्धान्तों को मुख्य आधार माना जाता है।

अनुदेशन की विशेषतायें
(Characteristics of Instruction)

1. अनुदेशन शिक्षण का महत्वपूर्ण भाग होता है।
2. अनुदेशन प्रक्रिया योजनाबद्ध होती है।

3. अनुदेशन देने वाले व्यक्ति को भाषा में निपुण होना चाहिये।
4. अनुदेशन का उद्देश्य तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करना होता है।
5. अध्यापक व विद्यार्थी में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।
6. विद्यार्थियों में रूचि पैदा करने के लिये इसंकी सीमा निर्धारित की जाती है।
7. अनुदेशन प्रणाली में विशेष नियमों का प्रयोग किया जाता है।
8. अनुदेशन में अनेक परीक्षायें रखी जाती है अनुदेशन देने का उद्देश्य विद्यार्थी को परीक्षा में सफल होने के योग्य बनाना।
9. अनुदेशन देने के लिये अध्यापक रखे जाते हैं। अध्यापक अनुदेशन देता है और विद्यार्थी उसे ग्रहण करते हैं।
10. अनुदेशन स्वाभाविक नहीं होता।

अनुदेशन के अवगुण या कमियाँ
(Limitations of Instruction)

1. यह केवल बौद्धिक विकास से सम्बन्धित है।
2. व्यावहरिक जीवन में इसका कोई उपयोग नहीं होता।
3. यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल है।

शिक्षण और अनुदेशन में अन्तर
(Difference between Teaching and Instruction)

शिक्षण (Teaching)	अनुदेशन (Instruction)
1. शिक्षण का क्षेत्र विस्तृत होता है।	अनुदेशन का क्षेत्र सीमित होता है।
2. शिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार का होता है।	अनुदेशन केवल औपचारिक होता है।
3. शिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाया जाता है।	अनुदेशन शिक्षण का भाग है।
4. शिक्षण में व्यक्तिगत क्षमताओं का विकास होता है।	अनुदेशन में विषय-विशेष का ज्ञान दिया जाता है।
5. शिक्षण कृत्रिम व स्वाभाविक प्रक्रिया है।	अनुदेशन केवल कृत्रिम प्रक्रिया है।

प्रतिपादन
(Indoctrination)

अनुदेशन शिक्षण स्तर का पहला चरण होता है और प्रतिपादन शिक्षण का सबसे उच्च स्तर होता है। इस स्तर पर अधिक बुद्धि एवं विवेक की आशा की जाती है। प्रतिपादन निश्चित विश्वासों को बनाने की प्रक्रिया है। आरम्भ से ही विद्यार्थियों के मस्तिष्क में कुछ विचार बैठा दिये जाते है। जो विचार निरन्तर सीखने वालो के मस्तिष्क में डाले जाते हैं, वे विचार उसके विश्वसनीय बन जाते हैं। विस्तृत रूप में प्रतिपादन को व्यक्ति के मन में इस तरह स्थापित करने की कोशिश की जाती है कि उसके मस्तिष्क में विश्वास और आदतों को स्थापित किया जाये। प्रतिपादन की सहायता से व्यक्ति के व्यक्तित्व में आदर्श और मूल्यों की स्थापना की जा सकती है और उसमें मान्यताओं, विचारों और विश्वासों की गहरी जड़े जमाई जा सकती है। प्रतिपादन व्यक्ति के ज्ञानात्मक और भावात्मक दोनों ही प्रकार के व्यवहार सम्बन्धी पक्षों में अधिक स्थायी परिवर्तन लाने की भूमिका निभाता है।

जैसे- सफल राजनीतिज्ञ, धार्मिक महापुरूष शासनाधिकारी, गिरोह चलाने वाले आदि सभी प्रतिपादन का सहारा लेकर व्यक्तियों को अपनी विचारधारा, चिन्तन, मान्यताओं, विश्वास, कार्यशैली के रंग में रंगने में सफल हो जाती है। आवश्यकता पड़ने पर कोई भी शिक्षक प्रतिपादन को अपनी शिक्षण शैली में शामिल कर सकता है। अतः प्रतिपादन शिक्षण का केवल एक भाग है, उसका पर्यायवाची नहीं है। किसी भी अध्यापक के लिये प्रतिपादन के बिना शिक्षण सम्भव नहीं हो सकता।

शिक्षण और प्रतिपादन
(Teaching and Indoctrination)

शिक्षण और प्रतिपादन एक-दूसरे से जुड़े हुए है। शिक्षक प्रतिपादन को अपनी शिक्षण प्रक्रिया में शामिल कर सकता है। इसका अर्थ हुआ शिक्षण में प्रतिपादन को शामिल करके इसे शिक्षण का अंग बनाया जा सकता है। परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। प्रतिपादन के बिना शिक्षण हो सकता है। लेकिन शिक्षण प्रक्रिया के बिना (शिक्षण साधन, शिक्षण उद्देश्यों प्रतिपादन सम्भव नहीं है।)

प्रतिपादन की विशेषतायें
(Characteristics of Indoctrination)

प्रतिपादन की विशेषतायें निम्नलिखित है-

1. प्रतिपादन द्वारा स्थायी ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।
2. प्रतिपादन शिक्षण का भाग है।

3. यह उद्देश्य केन्द्रित होता है।
4. इसमें तर्कों का कोई स्थान नहीं होता।
5. शिक्षक-प्रधान होता है।
6. प्रतिपादन द्वारा व्यक्ति में विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है।
7. इसका पाठ्यक्रम प्रभुत्तापूर्ण होता है।

प्रतिपादन को युद्ध कौशल की तरह प्रयोग लाया जाता है और अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते है, इच्छानुसार सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है। प्रतिपादन को लोगों पर निश्चित रूप में विश्वास करने योग्य बनाने के लिये प्रयोग किया जाता है।

शिक्षण और प्रतिपादन में अन्तर
(Difference between Teaching and Indoctrination)

शिक्षण (Teaching)	प्रतिपादन (Indoctrination)
1. शिक्षण का क्षेत्र विस्तृत है।	1. प्रतिपादन का क्षेत्र सीमित है।
2. शिक्षण का उद्देश्य व्यक्ति की क्षमताओं का विकास करना।	2. प्रतिपादन का उद्देश्य विश्वासों एवं दृष्टिकोणों को बदलना।
3. इसमें अनेक विधियों का प्रयोग होता है।	3. इसमें केवल भाषण विधि का प्रयोग होता है।
4. यह छात्र-केन्द्रित होती है।	4. यह अध्यापक केन्द्रित होती है।
5. शिक्षण में लम्बी प्रक्रिया होती है।	5. प्रतिपादन में निश्चित समय होता है।
6. शिक्षण कृत्रिम और प्राकृतिक दोनों तरह का होता है।	6. प्रतिपादन केवल कृत्रिम होता है।
7. मूल्यांकन गुणात्मक और मात्रात्मक होता है।	7. मूल्यांकन विश्वासों और विचारों के आधार पर होता है।
8. बालक स्वतन्त्र रूप से सीखता है।	8. बालक सीखने के लिये स्वतन्त्र नहीं होता।
9. अनुशासन प्रजातन्त्रात्मक होता है।	9. अनुशासन कठोर होता है।

प्रशिक्षण
(Training)

प्रशिक्षण शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। शिक्षण स्तर में प्रशिक्षण का स्तर अनुबंधन से ऊँचा माना जाता है। प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति विभिन्न कौशलों को अर्जित कर सकता है और चरित्र निर्माण अथवा व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन कर सकता है। प्रशिक्षण व्यक्ति को व्यवहार का स्तर निर्धारित करने में सहायता करता है। प्रशिक्षण में पहले कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं। जैसे-

विद्यार्थी शिक्षा महाविद्यालयों में अध्ययन कौशल विकसित करने के लिये प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इसी तरह इंजीनियर, कलाकार, सैनिक, पायलट, डॉक्टर, नर्स व अन्य व्यवसायों से सम्बन्धित कौशल विकसित करने के लिये प्रशिक्षण दिया जाता है।

हर अवस्था में किसी प्रकार के सीखने या शिक्षण को प्रशिक्षण कहा जाता है। पशु-पक्षियों को सिखाने अथवा शिक्षा देने का स्तर अनुबन्धन से शुरू होकर प्रशिक्षण पर समाप्त हो जाता है। इन्हें किसी भी अवस्था में शिक्षण के आगे के स्तरों, अनुदेशन अथवा प्रतिपादन पर नहीं ले जाया जा सकता। इनसे अलग मनुष्य को शिक्षण के ऊँचे से ऊँचे स्तर पर शिक्षित करके प्रशिक्षित किया जा सकता है।

जैसे कोई "मिस्त्री" है। उसे मशीन की कार्यप्रणाली व संरचना के बारे में जानकारी दे सकते हैं। उसमें अपने कार्य के प्रति रूचि व निष्ठा पैदा कर सकते हैं। उसे उसके द्वारा किये गये उत्पादन का प्रयोग और देशहित में उसके योगदान की बात समझाकर उसके मन में देशभक्ति का बीज बो सकते हैं। इस प्रकार प्रशिक्षण द्वारा उसके व्यक्तित्व, विचार और विश्वासों को एक नई दिशा दी जा सकती है।

शिक्षण और प्रशिक्षण
(Teaching and Training)

शिक्षण का मुख्य उद्देश्य होता है छात्रों के व्यवहारों में परिवर्तन, परिमार्जन व सुधार लाना तथा छात्रों के व्यवहारों में सुनिश्चितता लाना। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य है प्रशिक्षणार्थियों में वांछित परिवर्तन लाकर उनमें वांछित कौशलतायें व दक्षतायें विकसित करना।

ग्रीन महोदय (Green-1977) के अनुसार, "वांछित व्यवहार के प्रशिक्षण में बुद्धि के प्रकटीकरण की मात्रा का अनुपात जितना ज्यादा होगा उतनी सरलता से शिक्षण और प्रशिक्षण को एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है। वांछित व्यवहार में जिस अनुपात में बुद्धि का प्रकटीकरण नहीं होता है, उस अनुपात में हम प्रशिक्षण पद का प्रयोग कर सकते हैं परन्तु शिक्षण का नहीं।"

शिक्षण किसी भी वस्तु के सैद्धान्तिक पक्षों तथा ज्ञान के प्रतिपादन से सम्बन्धित होता है और प्रशिक्षण का सीधा सम्बन्ध व्यवहार परिवर्तन तथा दक्षता विकास से होता है। शिक्षण ज्ञान प्रदान करता है, प्रशिक्षण उसे आगे राह दिखाकर कौशल उत्पन्न करने पर

ध्यान देता है। शिक्षण पूँजी एकत्रित करने का कार्य करता है और प्रशिक्षण उस पूँजी को प्रभावशाली निवेश करने में दक्षता एवं कौशल देता है।

शिक्षण आधार प्रदान करता है और प्रशिक्षण उस आधार पर महल का निर्माण करता है। शिक्षण और प्रशिक्षण एक-दूसरे के पूरक कहे जा सकते है। शिक्षण प्रशिक्षण के लिये मार्ग दिखाता है और प्रशिक्षण शिक्षण का प्रभावशाली उपयोग करता है।

प्रशिक्षण की विशेषतायें
(Characteristics of Training)

प्रशिक्षण की विशेषतायें निम्नलिखित हैं -

1. प्रशिक्षण हमेशा औपचारिक ढंग से दिया जाता है।
2. प्रशिक्षण में नियमों का पालन किया जाता है।
3. प्रशिक्षण एक क्रियात्मक प्रक्रिया है।
4. प्रशिक्षण हमेशा योग्य व्यक्तियों द्वारा दिया जाता है।
5. प्रशिक्षण में समय निश्चित होता है।
6. प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किया जा सकता है।
7. प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति शक्ति को सही दिशा दी जा सकती है।
8. प्रशिक्षण द्वारा एक व्यक्ति को समाज के योग्य बनाया भी जा सकता है और नहीं भी।
9. इसमें विद्यार्थियों के लिये कठोर नियम होते हैं।
10. प्रशिक्षण में व्यक्ति के क्रियात्मक विकास पर अधिक बल दिया जाता है।

शिक्षण और प्रशिक्षण में अन्तर
(Difference between Teaching and Training)

शिक्षण (Teaching)	प्रशिक्षण (Training)
1. शिक्षण द्वारा व्यक्ति की क्षमता का विकास किया जाता है।	1. प्रशिक्षण में सीखने वाले की निपुणताओं के विकास एवं सम्पूर्णता को लागू करता है।
2. शिक्षण लम्बे समय चलता है।	2. प्रशिक्षण का समय कुछ दिन या महीनों के लिये होता है।
3. शिक्षण का क्षेत्र विस्तृत होता है।	3. प्रशिक्षण का क्षेत्र संकीर्ण होता है।

शिक्षण (Teaching)	प्रशिक्षण (Training)
4. शिक्षण घर, विद्यालय, कॉलेज, धार्मिक संस्थाओं में कहीं भी दिया जा सकता है।	4. प्रशिक्षण केवल प्रशिक्षण संस्थान में ही दिया जा सकता है।
5. शिक्षण सैद्धान्तिक व व्यवहारिक दोनों तरह का होता है।	5. प्रशिक्षण में क्रियात्मक पक्ष पर ही बल दिया जाता है।
6. शिक्षण का पाठ्यक्रम विस्तृत होता है।	6. प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम निश्चित होता है।
7. शिक्षण में कठोर नियमों का प्रयोग नहीं होता।	7. प्रशिक्षण में कठोर नियमों का प्रयोग होता है।
8. शिक्षण में विधियों की सीमा निश्चित नहीं होती।	8. प्रशिक्षण में निश्चित व सीमित विधियों का ही प्रयोग होता है।
9. सामाजिक अनुशासन का प्रयोग होता है।	9. कठोर अनुशासन का प्रयोग होता है।
10. मूल्यांकन के साधन विस्तृत होते हैं।	10. मूल्यांकन के साधन प्रत्यक्ष होते हैं।

अत: निपुणता विकसित करने के लिये प्रशिक्षण एक उत्तम कार्य है। यह प्रशिक्षक के अनुदेशों के अधीन योजनाबद्ध तरीके से तैयार किया जाता है। प्रशिक्षण का काल निश्चित होता है। निश्चित समय के बाद हम कह सकते है कि प्रशिक्षण खत्म हो गया। तब व्यक्ति उस क्षेत्र में एक योग्य व्यक्ति हो जाता है।

शिक्षण के स्तर, स्मृति,अभिबोध/बोध एवं चिन्तन स्तर (Level of Teaching, Memory, Understanding and Reflective Level)

शिक्षण एक उद्देश्यपूर्ण व महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। शिक्षण का मुख्य उद्देश्य सीखने वाले के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना तथा सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन में समायोजन करना सीखाना। शिक्षण के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिये तभी शिक्षक प्रभावशाली तरीकों का प्रयोग करके अधिक शक्तिवान बन सकता है।

शिक्षण प्रक्रिया में 'पाठ्य-वस्तु' एक महत्त्वपूर्ण उपागम है, जिसके बिना शिक्षण नहीं हो सकता। एक ही पाठ्य-वस्तु को शिक्षण उपागम परिस्थितियाँ विचारहीन (Thoughtless) से लेकर विचारपूर्ण (Thoughtfull) स्थिति तक ले जा सकते है। अत: शिक्षण की प्रक्रिया की परिस्थितियों को हम सतत् क्रम (Continuum) पर विचारहीन

क्रियाओं की अवस्थाओं या स्तरों में विभाजित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम शिक्षण की प्रक्रिया को तीन स्तरों में विभाजित कर सकते हैं।

1. स्मृति स्तर (Memory level)
2. बोध स्तर (Understanding level)
3. चिन्तन स्तर (Reflective level)

शिक्षण के इन तीन स्तरों को बौद्धिकता और विचार-युक्तता की दृष्टि से तुलनात्मक स्थान प्राप्त हो सकता है।

यह तुलनात्मक रूप निम्नलिखित चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है :

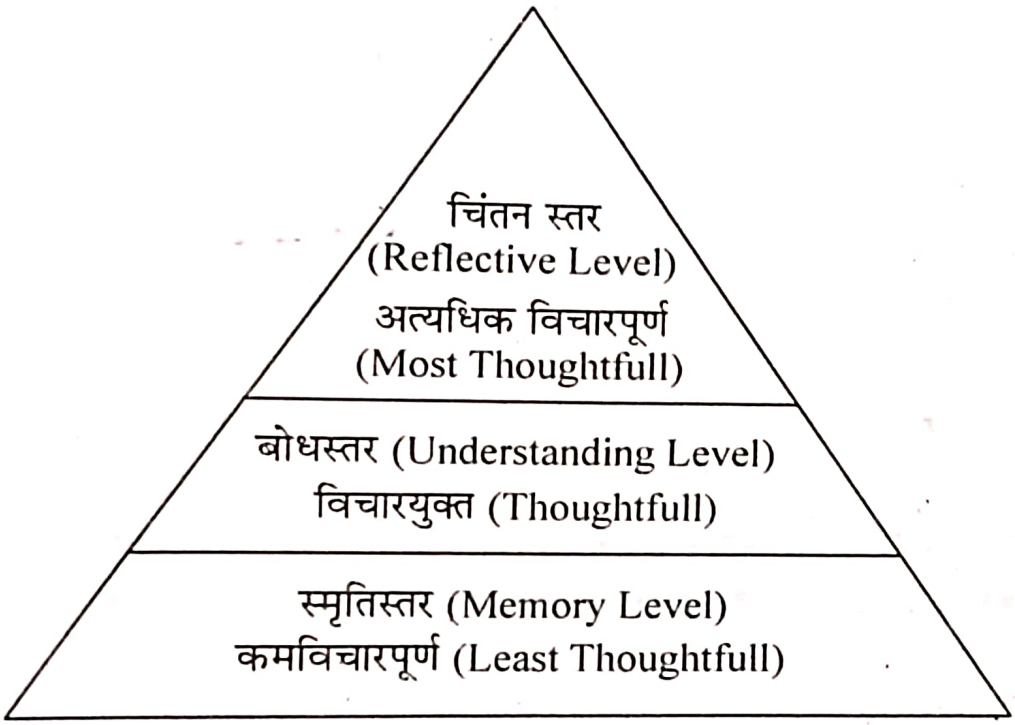

चित्र

निम्नलिखित चित्र में स्मृति स्तर को निम्न कोटि का होने के कारण बिल्कुल नीचे दिखाया गया है। जबकि चिन्तन स्तर सबसे शीर्ष स्थान पर है। बोध स्तर को मध्यम श्रेणी का दर्जा देकर चिन्तन स्तर से कम परन्तु स्मृति स्तर से अधिक स्तर का शिक्षण है।

इन तीनों स्तरों की व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है-

1. शिक्षण का स्मृति स्तर
(Memory Level of Teaching)

अधिगम की तरह शिक्षण अथवा अध्यापन भी एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का प्राथमिक स्तर स्मरण शक्ति को माना गया है। जहाँ तक मानसिक शक्तियों और बौद्धिक क्षमताओं के उपयोग तथा विकास का प्रश्न है स्मृति स्तर का शिक्षण काफी

निम्न स्तर का शिक्षण माना गया है। क्योंकि इसमें शिक्षण केवल स्मृति के सहारे होता है। इसमें छात्र जो भी तथ्य, सूचनायें, नियम और सूत्र आदि जो भी सीखते है उन्हें रटकर अपनी स्मृति में संजोने का प्रयास करते हैं। न ही तो उस ज्ञान को समझने की कोशिश करते हैं, न ही उनका अर्थ ग्रहण करते हैं।

स्मृति-स्तर के शिक्षण में विचारहीनता पाई जाती है। इस स्तर पर ऐसी शिक्षण अधिगम परिस्थितियाँ विकसित की जाती है, जिससे कि छात्र पढ़ाई गई पाठ्य-वस्तु को आसानी से कण्ठस्थ कर सके। इस स्तर पर प्रत्यया स्मरण (Recall) तथा रटने (Cramming) की क्रिया पर जोर दिया जाता है। इसमें सार्थक व पाठ्य-वस्तु से सम्बन्धित विषय याद रहता है, और निरर्थक वस्तुओं को याद रखने में कठिनाई होती है। शिक्षण के स्मृति स्तर में निम्नलिखित पाठ्य-वस्तुयें आती हैं-

जैसे-कविता-पाठ, शब्दार्थ, संस्कृत के रूप, पहाड़े, गिनतियाँ, भाषा में वर्तनी, व्याकरण तथा ऐतिहासिक घटनाओं का ज्ञान। इन सभी पर शिक्षण का स्मृति-स्तर सबसे अधिक प्रभावी होता है। अतः स्मृति-स्तर को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता।

इस स्तर का अपना मूल्य है, अपना क्षेत्र है। इस स्तर के ज्ञान के बिना बोध व चिन्तन स्तर ठीक प्रकार से काम नहीं कर सकते। अतः यही स्तर अन्य स्तरों को आधार प्रदान करता है।

स्मृति-स्तर पर सभी तथ्य रटने पर आधारित होते है, अतः भूलने की प्रक्रिया इसमें बहुत अधिक सक्रिय होती है। आज कक्षा में रटी हुई सामग्री छात्रों के दैनिक जीवन में प्रयोग नहीं हो सकती। इस स्तर में सोचने व तर्क करने का कोई स्थान नहीं होता। इसमें छात्र निष्क्रिय होते हैं और कक्षा कार्य यान्त्रिक तरीके से होता है। कक्षा वातावरण औपचारिक होता है।

स्मृति-स्तर की परिभाषायें
(Defination of Memory Level)

स्मृति-स्तर की परिभाषायें निम्नलिखित है-

मौरिस एल. बिगे (M. L. Bigge) के अनुसार, "स्मृति-स्तर शिक्षण-अधिगम से अभिप्राय तथ्यों सम्बन्धी विषय-सामग्री को बालकों द्वारा स्मृति में सम्मिलित करने के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।"

(Memory level teaching- learning tasks, supposedly embrace committing factual materials to memory and nothing else.)

हरबर्ट (Herbart) को स्मृति-स्तर शिक्षण का मुख्य प्रतिपादक माना गया है। उन्होनें भी इस धारणा को मान्यता दी है कि इस स्तर पर बालक अध्यापन द्वारा तथ्यों सम्बन्धी ज्ञान ग्रहण करते हैं। अधिगमकर्ता विषय-वस्तु को चाहे वह सार्थक हो या निरर्थक, स्मरण

करता है तथा उसे अपनी स्मृति भण्डार में संचित करता है। अभिप्राय यह कि अधिगमकर्ता विषय-वस्तु को याद करता है, उसे धारण (Retain) करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उसका पुनः स्मरण (Recall) तथा पुनरूत्पादन (Reproduce) करता है।

स्मृति-स्तर के शिक्षण का प्रतिमान (Model of Memory Level of Teaching)

प्रतिमान पक्ष	स्मृति स्तर शिक्षण
1. उद्देश्य (Focus)	छात्रों में निम्नलिखित क्षमतायें विकसित करना- 1. मानसिक पक्षों का प्रशिक्षण। 2. तथ्यों का ज्ञान प्रदान करना। 3. सीखें हुए तथ्यों को याद रखना। 4. सीखे गये तथ्यों का प्रत्यास्मरण तथा उन्हें प्रस्तुत करना।
2. संरचना (Syntax)	स्मृति-स्तर की शिक्षण की शिक्षण व्यवस्था को 5 सोपानों में बाँटा गया है। जिसे हरबर्ट की पंच-पदीय प्रणाली कहा गया है- 1. प्रस्तावना या तैयारी तथा उद्देश्य कथन। (Introduction and Preparation) 2. प्रस्तुतीकरण। (Presentation) 3. तुलना व सम्बन्ध। (Comparison and Association) 4. निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण (Generalization) 5. प्रयोग तथा अभ्यास। (Application)
3. सामाजिक प्रणाली (Social system)	1. कक्षा में शिक्षक अधिक सक्रिय रहता है। 2. वह छात्रों के सामने पाठ्य-वस्तु प्रस्तुत करता है, उनकी क्रियाओं को नियन्त्रित करता है और प्रेरणा देता है। 3. छात्रों का स्थान गौण होता है। 4. छात्र चुपचाप शिक्षक को आदर्श मानते हुये उनका अनुसरण करते हैं।
4. मूल्यांकन प्रणाली (Support system)	1. मूल्यांकन लिखित व अलिखित दोनों तरह का होता है। 2. परीक्षा में रट्टा पद्धति पर जोर दिया जाता है। 3. वस्तुनिष्ठ परीक्षा में प्रत्यास्मरण तथा अभिज्ञान के पद महत्त्वपूर्ण है।

स्मृति-स्तर के मूल-तत्व
(Elements of Memory Level of Teaching)

स्मृति-स्तर के मूल-तत्व निम्नलिखित है-

1. **उद्देश्य** (Objectives) : इसमें शिक्षण का मुख्य उद्देश्य सीखने वाले को सूचनायें अथवा ज्ञान प्रदान करना। इसमें सीखने वाला रटने की विधि को अपनाता है और पूरा ज्ञान तथ्यों पर आधारित होता है। वह यान्त्रिक ढंग से ज्ञान को ग्रहण करता है। इसके उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. विद्यार्थी को तथ्यों सम्बन्धी सूचनायें प्रदान करना।
2. विद्यार्थी की स्मरण शक्ति का विकास करना।
3. अध्यापन विषय-सामग्री को बालक के ज्ञान भण्डार का भाग बनाना।
4. आवश्यकतानुसार स्मरण किये गये तथ्यों को पुनः स्मरण करना, उन्हें पहचानना और पुनरुत्पादन करना।

ब्लूम (1956) ने संज्ञानात्मक विषय सामग्री का वर्गीकरण छः भागों में किया है, जो सरल से जटिल की ओर जाती है।

1. ज्ञान (Knowledge)
2. बोध अथवा समझना (Comprehension)
3. अनुप्रयोग (Application)
4. विश्लेषण (Analysis)
5. संश्लेषण (Synthesis)
6. मूल्यांकन (Evaluation)

स्मृति-स्तर अध्यापन में ब्लूम द्वारा दिये गये उद्देश्यों में से केवल पहला अर्थात् ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य पूर्ति करता है। अध्यापन के इस स्तर पर बालक अनेक पदार्थों, घटनाओं, विचारों तथा प्रत्ययों सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हैं, उन्हें पहचानते है, स्मरण करते हैं तथा आवश्यकतानुसार पुनः स्मरण करते हैं।

एण्ड्रसन तथा क्रेथवो (Anderson and krathwohl, 2001) ने स्मृति-स्तर के शिक्षण उद्देश्यों को दो भागों में बांटा है।

1. ज्ञान विस्तार पक्ष (Knowledge or Content Dimension)
2. प्रक्रिया सम्बन्धी पक्ष (Process Related Dimension)

1. ज्ञान विस्तार पक्ष : इसमें बालकों के ज्ञान भण्डार मे वृद्धि के लिये तत्वों को सम्मिलित किया गया है जैसे-

1. प्रत्यय (Concept)
2. तथ्य (Facts)
3. संरचनायें (Structures)
4. मॉडल (Models)
5. नियम (Principles)
6. सामान्यीकरण (Generalizations)
7. पद्धितियों (Strategies)

2. प्रक्रिया पक्ष : इसमें सूचनाओं को याद करने, धारण करने तथा आवश्यकतानुसार सीखी गई विषय-सामग्री को पहचानना तथा उसके पुनरुत्पादन की प्रक्रिया सम्बन्धी उद्देश्य हैं।

स्मृति-स्तर अध्यापन में रटने अर्थात् विषय-सामग्री को याद करने पर बल दिया जाता है। इसमें बोध (understanding) का कोई योगदान नहीं होता।

2. विषय-वस्तु की प्रकृति (Nature of Subject-Matter) : इस स्तर पर शिक्षण विषय-वस्तु केन्द्रित होता है। सीखने वाले के सामने सामान्य, सरल तथा प्राथमिक प्रकार की विषय सामग्री प्रस्तुत की जाती है, जिसे वह स्मरण करता है तथा अपने मस्तिष्क में स्थायी बनाता है। सीखने वाला रटन्त विधि से सीखता है। इस अवस्था में बालक को ठोस वस्तुओं, पदार्थों (प्रत्ययों) का ज्ञान प्रदान किया जाता है जिनका कोई रूप तथा आकार होता है जो निश्चित है, जिनकी निश्चित आकृति होती है तथा जिन्हें निरीक्षण से जाना तथा समझा जा सकता है।

3. अध्यापन विधियाँ (Methods used) : स्मृति-स्तर शिक्षण विषय-वस्तु (subject matter) केन्द्रित होता है।

इसलिये यहाँ अध्यापक प्रधान (Teacher dominating) विधियों का प्रयोग किया जाता है। अत: इस शिक्षण स्तर में शिक्षक ड्रिल (अभ्यास विधि) दोहराना पुन: स्मरण, तथा प्रश्न पूछना जैसी विधियों का प्रयोग किया जाता है।

4. शिक्षक की भूमिका (Role of the Teacher) : इस शिक्षण स्तर में शिक्षक भूमिका मुख्य होती है। इसलिये शिक्षक का प्रशिक्षित, कुशल तथा सूझ-बूझ वाला होना

अत्यावश्यक होता है। यहाँ शिक्षक प्रभावी, सक्रिय तथा प्रभुत्वशाली भूमिका निभाता है तथा विद्यार्थी से उसका सीधा सम्बन्ध होता है। वह उसे सीखने के लिये निर्देश देता है, क्रिया करने के प्रोत्साहित करता है, पठन क्रिया को नियन्त्रित करता है तथा पठित विषय का मूल्यांकन करता है।

5. सीखने वाले की भूमिका (Role of Learner) : इसमें सीखने वाले की भूमिका निष्क्रिय होती है। वह केवल शिक्षक के निर्देशों (Instruction) व आदेशों का पालन करता है।

वह वहीं काम करता है जो उसका शिक्षक करने के लिये करता है। इस स्तर के शिक्षण अधिगम में विद्यार्थी को बोध सम्बन्धी अधिक क्रियायें नहीं करनी पड़ती है लेकिन अध्ययन विषय को सही ढंग से स्मरण करने तथा उसे स्मृति का अंग बनाने के लिये यह आवश्यक होता है कि बालक प्रस्तुत विषय-सामग्री में उपयुक्त साहचर्य (Association) स्थापित करे।

6. शिक्षण के साधन (Teaching Euqipments) : शिक्षा में शिक्षण उपकरण सहायक सामग्री का काम करते हैं। ये शिक्षण को रोचक और चिरस्थायी बनाते है। शिक्षण में अनेक दृश्य-श्रव्य उपकरण जैसे-चार्ट, मॉडल, चित्र, रेडियो, टेलीविज़न, टेप, रिकार्डर, कम्प्यूटर, फिल्म-स्ट्रिप्स आदि उपलब्ध होते हैं। ये साधन बालकों का ध्यान केन्द्रित करते हैं तथा उनकी जिज्ञासाओं को शान्त करते हैं। इनका प्रयोग करने पर बालक किसी भी विषय को आसानी से सीख सकते हैं।

7. अभिप्रेरणा की प्रकृति (Nature of Motivation) : इस स्तर पर सीखने वाले की अभिप्रेरणा पूरी तरह से बाहरी (extrinsic) होती है। शिक्षक स्वयं बालकों को अध्ययन के लिये प्रेरित करता है, विद्यार्थियों के सामने विषय सामग्री प्रस्तुत करता है उन्हें स्मरण करने पर बल देता है। अभिप्रेरणा के स्रोत विद्यार्थियों से बाहर रहते हैं। विद्यार्थी पाठ्य-सामग्री को रटकर याद करते है। इसलिये इस अवस्था में आन्तरिक अभिप्रेरणा का अभाव रहता है।

8. मूल्यांकन विधियां (Evaluation System) : मूल्यांकन को अध्ययन-अध्यापन का महत्त्वपूर्ण भाग माना जाता है। इसके द्वारा ही यह पता लगाया जाता है कि शिक्षण सम्बन्धी उद्देश्य कहाँ तक प्राप्त हुये है। स्मरण-शक्ति का मूल्यांकन मौखिक तथा लिखित दोनों प्रकार की परीक्षणों का प्रयोग करके किया जाता है।

इन परीक्षणों में संक्षिप्त प्रश्न-उत्तर, पुन: स्मरण प्रश्न,पहचान प्रश्न वैकल्पिक प्रश्न आदि प्रश्न होती है। जो विद्यार्थी जितने अधिक प्रश्नों के उत्तर देता है उसकी स्मृति उतनी अधिक अच्छी मानी जाती है।

स्मृति-शिक्षण का मनोवैज्ञानिक पक्ष
(Psychological Bases of Memory Level)

जीन पियाजे (Jean piaget) : संज्ञानात्मक विकास के प्रतिपादक माने जाते है। उनका मानना है कि बालकों का संज्ञानात्मक विकास, विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होता है। संज्ञानात्मक विकास की प्रमुख चार अवस्थाये होती है। जिनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार है।

1. शक्ति सिद्धान्त (Faculty Theory) : शक्ति सिद्धान्त के समर्थक मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बालकों की विभिन्न शक्तियों का विकास अध्ययन-अध्यापन की विभिन्न अवस्थाओं में किया जाना चाहिये। इनमें प्रमुख शक्तियाँ-स्मरण करना, तर्क करना, चिन्तन, कल्पना तथा सृजनात्मकता है।

शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था में बालक स्वयं अपना तथा वातावरण का प्रत्यक्ष करता है। वह वातावरण सम्बन्धी विभिन्न सूचनायें ग्रहण करता है, उन्हें धारण करता है तथा उन्हें आत्मसात करता है। उसके द्वारा प्रत्यक्ष की गई सामग्री में वस्तुएँ, पदार्थ तथा घटनाओं से जुड़े प्रत्यय तथा तत्व होते है। उनका अधिगम, पुनर्निरीक्षण तथा अभ्यास करना आवश्यक होता है ताकि वे प्रत्यय उसकी स्थायी स्मृति का भाग बन सके क्योंकि उसके इस विकास पर उच्च मानसिक शाक्तियों का अग्रिम विकास निर्भर करता है।

2. अन्तबोध-सिद्धान्त (Apperception Theory) : हरबर्ट के विचारों के समर्थक शिक्षाविद् इस बात पर बल देते है कि विकास की इस अवस्था में बालक का मन अनेक सूचनाओं को ग्रहण करने में समर्थ होता है। प्रत्ययों, तत्वों, संरचनाओं तथा मॉडलों सम्बन्धी प्राथमिक सूचनायें वह आसानी से याद कर लेता है। इस अवस्था में वह स्वयं अपने तथा वातावरण सम्बन्धी अनेक वस्तुओं के विषय में सीखता है जैसे एक छोटा बालक अनेक भाषाओं को सीखने में सक्षम होता है।

3. अनुबन्धन (Conditioning) : थार्नडाईक के सिद्धान्त के अनुसार प्राथमिक सीखना अनुबंधन द्वारा होता है। इस अवस्था में बालक उद्दीपक एवं अनुक्रिया में सम्बद्धता करना सीखता है इसलिये यह बन्धन (Bond) अधिगम की विषय-सामग्री को मस्तिष्क में स्थिर (stable) करता है। ऐसा ही प्राथमिक शिक्षण स्तर (स्मृति-स्तर) में किया जाता है।

4. पॉवलाव का क्लासिक अनुबन्धन सिद्धान्त (Pavlov Classical Conditioning Theory) : इस शिक्षण-स्तर पर बालक यान्त्रिक प्रक्रिया का प्रयोग करके प्रस्तुत उद्दीपक तथा उसकी अनुक्रिया के बीच बन्धन सीखता है। अभ्यास प्रविधि के प्रयोग के कारण तथा पुनर्बलन द्वारा विषय-सामग्री उसकी स्मृति का भाग बन जाती है।

स्मृति-स्तर शिक्षण की विशेषतायें

स्मृति-स्तर शिक्षण की विशेषतायें निम्नलिखित है।

1. स्मृति-स्तर शिक्षण में शिक्षक को प्रमुख महत्त्व दिया जाता है। यह शिक्षक केन्द्रित होता है।
2. इसमें विद्यार्थियों को गौण स्थान दिया जाता है।
3. इसमें शिक्षक व विद्यार्थियों के बीच अन्तः क्रिया नहीं होती।
4. इसमें अभिप्रेरणा का अभाव होता है।
5. इसमें बुद्धि को महत्व नहीं दिया जाता।
6. यह बोध-स्तर व चिन्तन स्तर को आधार प्रदान करता है।

स्मृति-स्तर के गुण
(Merits of Memory Level)

1. इस स्तर का शिक्षण छोटी कक्षाओं में सबसे अधिक उपयोगी होता है। कुछ प्रत्यय ऐसे होते हैं, जिन्हें केवल रटकर याद किया जाता है।

   जैसे- गणित में अंकमाला, हिन्दी या अन्य भाषा के वर्णों को याद करना
2. कुछ पाठ्य-विषयों में ऐसी पाठ्य-सामग्री होती है, जिन्हें केवल रटा जा सकता है। जैसे- विज्ञान में धातु पदार्थों के लिये अलग-अलग नाम।
3. इसमें शिक्षण को पूरी स्वतन्त्रता होती है। वह पाठ्य-सामग्री का नियोजन एवं प्रस्तुतीकरण स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकता है।
4. इस स्तर पर जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह बोध-स्तर तथा चिन्तन स्तर के लिये आधार बनने का काम करता है।

स्मृति-स्तर के दोष
(Demerits of Memory Level)

1. यह शिक्षण-अधिगम निम्नतम कोटि का होता है। इससे बच्चों का मानसिक विकास नहीं होता।

2. इसमें विद्यार्थी रटकर ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे उनके अर्थ, प्रयोग आदि से अपरिचित रहते हैं, अत: वे इस ज्ञान को वास्तविक जीवन में प्रयोग नहीं कर पाते।
3. इसमें शिक्षक व विद्यार्थियों की बीच परस्पर अन्त:क्रिया नहीं।
4. विद्यार्थी प्राय: निष्क्रिय होते हैं।
5. इसमें शिक्षक को अधिकांश क्रियायें अपने-आप करनी पड़ती है। इसलिये उस पर अनावश्यक बोझ पड़ता है।
6. इसमें प्राप्त ज्ञान स्थायी नहीं होता।

2. बोध शिक्षण-स्तर
(Understanding Level of Teaching)

शिक्षण का यह स्तर स्मृति-स्तर व चिन्तन स्तर के मध्य में आता है। बोध-स्तर को विचारशीलता का स्तर माना जाता है। यह चिन्तन स्तर की पूर्वावस्था होती है। बोध या अभिबोध का शाब्दिक अर्थ है- परिज्ञान, धारणा, ग्रहण-करना, ज्ञान होना, समझना तथा व्याख्या करना आदि। दूसरे शब्दों में बोध शब्द का अर्थ है किसी वस्तु, विषय, तत्वों व दूसरे घटकों के अर्थ जानना, विचार बनाना, धारण करना, व्याख्या करना और एक प्रत्यय अथवा तत्व से दूसरे प्रत्यय अथवा तत्व सम्बन्धी अनुमान लगाना होता है।

इस शिक्षण स्तर पर विद्यार्थी तथ्यों सम्बन्धी जानकारी ग्रहण करते हैं, वे उनके अर्थ तथा उनके बीच आपसी सम्बन्धों के विषय में सीखते हैं। वे उन तथ्यों प्रत्ययों तथा नियमों को प्रयोग करने सम्बन्धी जानकारी भी प्राप्त करते हैं।

एम. एल. बिगे (M. L. Bigge) के अनुसार, शिक्षण का बोध-स्तर विद्यार्थियों को सामान्यीकरण तथा विशेष विवरणों तथा सिद्धान्तो एवं एकात्मक तथ्यों के बीच आपसी सम्बन्धो से अवगत कराता है। इससे यह पता चलता है कि किस कार्य के लिये कौन-सा सिद्धान्त व्यवहारिक है।

(That, "seeks to acquiant the students with the relationship between generalization and the particulars, between principles and solitary facts and which shows that for what the use of which principles may be applied")

हरबर्ट (Herbat's Theory of Apperception) का अन्तबोध सिद्धान्त, हरबर्ट ने इस स्तर का समर्थन किया है। इसमें बच्चों का मानसिक विकास स्मृति-स्तर के विकास के अपेक्षा उच्च होता है। इस स्तर पर बालक विचार कर सकते हैं तर्क दे सकते हैं। उनकी कल्पना शक्ति विकसित हो जाती है। बच्चों के ज्ञान व शब्दावली में वृद्धि हो जाती है।

तत्वों का संश्लेषण तथा विश्लेषण, तुलना व सामान्यीकरण की योग्यता विकसित हो जाती है, इसलिये वे सम्बन्धों के विषय में पूर्वानुमान लगाने में निपुण हो जाती है। पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए इस अवस्था को सीखने की "Operational stage" कहा जा सकता है।

अत: शिक्षण की इस अवस्था में बालक अनेक संप्रत्ययों, तत्वों, तथ्यों और नियमों से सीखते है। वे नियमों तथा तथ्यों के बीच सम्बन्ध जानने तथा समझने लगते हैं। वे सामान्यीकरण करने तथा उसकी सहायता से कुछ हद तक पूर्वानुमान लगाने में सक्षम हो जाते हैं।

बोध-शिक्षण स्तर के चरण
(Steps of Herbartian Theory of Apperception)

हरबर्टियन (Herbartian) सिद्धान्त के आधार पर बोध-स्तर के निम्नलिखित चरण है :-

1. तैयारी एवं भूमिका (Preparation and Introduction) : नया ज्ञान देने से पहले विद्यार्थियों को पूर्व ज्ञान से जोड़ा जाता है। इससे अध्यापक को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का पता चल जाता है। इससे विद्यार्थी सीखने के लिये अभिप्रेरित हो जाते है तथा आगामी ज्ञान प्राप्त करने के लिये मानसिक रूप से तैयार हो जाते हैं। पूर्व ज्ञान के आधार पर शिक्षक प्रस्तुत की जाने वाली विषय-वस्तु की रूपरेखा तैयार करता है। वह पढ़ाये जाने वाले विषय के लिये उचित शिक्षण विधियाँ, सहायक सामग्री व उपकरणों का चयन करता है।

2. प्रस्तुति (Presentation) : इसमें पाठ्य-सामग्री को विद्यार्थियों के सामने उचित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। नये संप्रत्ययों, तत्वों और शब्दों की व्याख्या की जाती है। सहायक सामग्री के उचित प्रयोग के साथ-साथ उदाहरणों तथा व्याख्याओं का भी प्रयोग किया जाता है। अपने विषय को उत्तम रूप से प्रस्तुत करने के लिये अध्यापक निर्दशनात्मक (Illustrative) सामग्री के साथ-साथ, वाद-विवाद व्याख्या (discussion) करना, प्रमाण प्रस्तुत करना आदि विधियों का प्रयोग करता है।

3. तुलना, साहचर्य और अमूर्तिकरण (Comparison, Association and Abstraction) : पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करने के बाद पिछली सूचनाओं और वर्तमान पाठ सम्बन्धी सूचनाओं और विभिन्नताओं का पता लगाया जाता है। इससे विद्यार्थी नया ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ पूर्व ज्ञान की भी आवृत्ति करते हैं। इससे पूर्व ज्ञान और वर्तमान

ज्ञान में साहचर्य स्थापित हो जाता है। इससे एक विषय का दूसरे विषय के साथ साहचर्य स्थापित हो जाता है। इससे सीखी हुई विषय सामग्री दीर्घकालीन स्मृति का भाग बन जाती है और विद्यार्थी अमूर्तिकरण करने और निर्णय लेने में सक्षम हो जाते हैं।

4. सामान्यीकरण (Generalization) : इसमें सामान्यीकरण सम्बन्धी नियमों तथा सिद्धान्तों की रचना की जाती है। ऐसा तब होता है जब सीखने वाला अध्ययन सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन करने लगे, इकट्ठी की गई सूचनाओं में विभिन्न साहचर्यों का निर्माण करने लगे तथा तर्कयुक्त अनुमान लगाना सीख ले। बोध-स्तर में बालक शिक्षक के निर्देशन में मानसिक क्रियायें करके सामान्यीकरण करना सीखना आरम्भ कर देता है।

5. अनुप्रयोग (Application) : इसमें विद्यार्थी सामान्यीकरण नियमों का उपयोग दूसरी शिक्षण स्थितियों में सीखने, विषय-सामग्री की व्याख्या करने तथा प्रत्येक दिन की समस्याओं को समझने तथा सुलझाने में करते हैं। इस तरह यह शिक्षण-स्तर प्राप्त ज्ञान तथा उससे निर्मित नियमों के उपयोग का प्रारम्भ समझा जाता है।

6. मूल्यांकन (Evaluation) : अन्त में वांछित साधनों तथा विधियों की सहायता से विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं अथवा ज्ञान का मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिये उचित मूल्यांकन विधियों और प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

बोध शिक्षण-स्तर के मूलतत्व
(Elements of Understanding Level of Teaching)

(*i*) **उद्देश्य** (objectives) : ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों के सिद्धान्त (1956) पर आधारित शिक्षण उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. धारणा उद्देश्य (Comprehension objectives) : इस उद्देश्य में अनुवाद करना, व्याख्या करना आदि आते है।

2. अनुप्रयोग उद्देश्य (Application objectives) : इस उद्देश्य में यह देखा जाता है कि विद्यार्थियों ने प्राप्त ज्ञान अथवा सूचनाओं को दूसरी समान तथा अलग स्थितियों में प्रयोग करने की कितनी क्षमता प्राप्त की है।

ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों में संशोधित सिद्धान्त (2001) के अनुसार एण्ड्रसन तथा क्रेथवो ने इन उद्देश्यों का वर्णन इस प्रकार किया है- इस सिद्धान्त में अनुवाद उद्देश्य के स्थान पर 'जानना', 'ग्रहण करना' उद्देश्य रखा गया है। इन उद्देश्यों को दो भागों में बाँटा गया है-

(*a*) **बोध उद्देश्य** (Understanding objectives) : इस वर्ग में शिक्षण में प्रस्तुत मौखिक, लिखित और सांकेतिक सूचनाओं को समझना, धारण करना, उनकी व्याख्या करना, वर्गीकरण करना, संक्षिप्त करना तथा प्राप्त ज्ञान को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करना आदि उद्देश्य सम्मिलित किये जाते हैं।

(*b*) **अनुप्रयोग-उद्देश्य** (Application objectives) : इसमें किसी दी गई स्थिति में किसी अथवा प्रणाली का विधिवत्-प्रयोग करना सम्मिलित किया गया है। यह दो प्रकार से किया जाता है-

1. सामान्यीकरण से प्राप्त किसी नियम अथवा सिद्धान्त की प्रस्तुति।
2. सामान्यीकृत नियमों अथवा सिद्धान्तों को प्रभावपूर्ण ढंग से अन्य स्थितियों में प्रयोग करना।

(*ii*) **विषय-वस्तु** (Subject matter) : इस शिक्षण-स्तर की विषय-वस्तु व्यापक होती है। गुणात्मक व मात्रात्मक दृष्टि से यह स्मृति-शिक्षण स्तर की सामग्री से कहीं अधिक होती है। विद्यार्थी नये ज्ञान, प्रत्ययों, विषयों और कारकों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करते हैं, उन्हें समझते हैं, सीखते हैं और धारण करते हैं। इसमें विद्यार्थी पूर्व ज्ञान से अधिक सूचनायें इकट्ठी करता है। सीखे गये ज्ञान का उपयोग जीवन की वास्तविक स्थितियों में करना सीखता है।

(*iii*) **प्रयुक्त विधियाँ** (Methods used) : शिक्षण के इस स्तर पर निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है-

1. व्याख्यान विधि (Lecture Method)
2. व्याख्यान प्रदर्शन विधि (Lecture Demonstration Method)
3. वाद-विवाद विधि (Discussion Method)
4. आगमन-निगमन विधि (Inductive-Deductive Method)
5. वर्णनात्मक एवं दृष्टान्त विधि (Explanation and Examplification Method)

(*iv*) **कक्षा-कक्ष वातावरण** (Classroom Climate) : इस स्तर पर प्रस्तुत विषय-वस्तु सार्थक और आपस में सम्बन्धित होती है। इसलिये शिक्षण के इस स्तर पर कक्षा का वातावरण स्मृति शिक्षण स्तर की अपेक्षा अधिक सजीव और प्रोत्साहित होता है। बालक यहाँ अधिक सक्रिय रहता है। पढ़ने में रूचि लेता हैं। पाठ्य-सामग्री की तरफ उनका ध्यान केन्द्रित करना आसान होता है। विद्यार्थी सक्रिय रहते हैं। इसलिये अनुशासन की समस्या

अपेक्षाकृत कम रहती है। इसके अध्यापक व विद्यार्थी के बीच अन्तःक्रिया होती रहती है, इसलिये कक्षा का वातावरण संजीव, धनात्मक और खुशनुमा रहता है।

(*v*) **अभिप्रेरणा** (Motivation) : इस स्तर पर विद्यार्थी दो प्रकार से सीखते हैं-

1. शिक्षक पाठ्य सामग्री प्रस्तुत करता है तथा विद्यार्थियों को उन्हें सीखने के लिये आदेश देता है।
2. विद्यार्थियों की आन्तरिक अभिप्रेरणा शक्ति उन्हें सीखने के लिये प्रेरित करती है।

इसमें विद्यार्थियों का अभिप्रेरणा स्तर उच्च होता है। यदि शिक्षक उचित अध्यापन कौशलों तथा अपनी सूझ-बूझ का प्रयोग करें तो अभिप्रेरणा स्तर को और भी उच्च बनाया जा सकता है तथा इसे बालकों में आन्तरिक अभिप्रेरणा में रूपान्तरित किया जा सकता है।

(*vi*) **शिक्षण-उपकरण** (Teaching-equipments) : शिक्षण में शिक्षण उपकरण अध्यापक के महत्त्वपूर्ण सहायक साधन होते हैं। इनके प्रयोग से अधिगम को सरल और रोचक बनाया जा सकता है। आधुनिक समय में चार्ट, चित्र, मॉडलों के अतिरिक्त टी. वी, रेडियो, फ्लैश कार्ड तथा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण उपलब्ध है। शिक्षण में जिनका प्रयोग सफलता से किया जा सकता है। परन्तु शिक्षक को इन उपकरणों का प्रयोग पाठ्य-सामग्री और बालकों के मानसिक स्तर के अनुसार करना चाहिये।

(*vii*) **मूल्यांकन** (Evaluation) : इस स्तर पर मूल्यांकन के लिये परीक्षण विधियों और साधनों का प्रयोग किया जाता है। जिनसे बालक की क्षमताओं का परीक्षण किया जा सके और यह पता चल सके कि बालक सामान्यीकृत नियमों से प्राप्त सूझ-बूझ को दूसरी स्थितियों में प्रयोग करने में कितनी सक्षम हुये है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष
(Psychological Aspect)

बोध स्तर के निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक पक्ष है-

1. अन्तर्बोध सिद्धान्त (Apperception Theory) : इस सिद्धान्त में पांच चरण होते हैं। इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया जाता है कि इस स्तर पर बच्चों का मानस पटल विभिन्न संप्रत्ययों के बारे में जानने, पदार्थों, विषयों तथा घटनाओं सम्बन्धी ज्ञान ग्रहण करने तथा उसे आत्मसात करने के लिये पर्याप्त रूप से समर्थ होता है। विद्यार्थी विभिन्न सूचनाओं के अर्थ को समझते हैं। वे उन सूचनाओं में निहित विभिन्नताओं और समानताओं का पता लगा सकते हैं। वे सामान्यीकरण के द्वारा नियमों और सिद्धान्तों की खोज तथा उनकी व्याख्या करके उन्हें ग्रहण कर सकते हैं तथा उनका परिपालन कर सकते हैं।

तत्वों का संश्लेषण तथा विश्लेषण, तुलना व सामान्यीकरण की योग्यता विकसित हो जाती है, इसलिये वे सम्बन्धों के विषय में पूर्वानुमान लगाने में निपुण हो जाती है। पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए इस अवस्था को सीखने की "Operational stage" कहा जा सकता है।

अत: शिक्षण की इस अवस्था में बालक अनेक संप्रत्ययों, तत्वों, तथ्यों और नियमों से सीखते है। वे नियमों तथा तथ्यों के बीच सम्बन्ध जानने तथा समझने लगते हैं। वे सामान्यीकरण करने तथा उसकी सहायता से कुछ हद तक पूर्वानुमान लगाने में सक्षम हो जाते हैं।

बोध-शिक्षण स्तर के चरण
(Steps of Herbartian Theory of Apperception)

हरबर्टियन (Herbartian) सिद्धान्त के आधार पर बोध-स्तर के निम्नलिखित चरण है :-

1. तैयारी एवं भूमिका (Preparation and Introduction) : नया ज्ञान देने से पहले विद्यार्थियों को पूर्व ज्ञान से जोड़ा जाता है। इससे अध्यापक को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का पता चल जाता है। इससे विद्यार्थी सीखने के लिये अभिप्रेरित हो जाते है तथा आगामी ज्ञान प्राप्त करने के लिये मानसिक रूप से तैयार हो जाते हैं। पूर्व ज्ञान के आधार पर शिक्षक प्रस्तुत की जाने वाली विषय-वस्तु की रूपरेखा तैयार करता है। वह पढ़ाये जाने वाले विषय के लिये उचित शिक्षण विधियाँ, सहायक सामग्री व उपकरणों का चयन करता है।

2. प्रस्तुति (Presentation) : इसमें पाठ्य-सामग्री को विद्यार्थियों के सामने उचित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। नये संप्रत्ययों, तत्वों और शब्दों की व्याख्या की जाती है। सहायक सामग्री के उचित प्रयोग के साथ-साथ उदाहरणों तथा व्याख्याओं का भी प्रयोग किया जाता है। अपने विषय को उत्तम रूप से प्रस्तुत करने के लिये अध्यापक निर्दशनात्मक (Illustrative) सामग्री के साथ-साथ, वाद-विवाद व्याख्या (discussion) करना, प्रमाण प्रस्तुत करना आदि विधियों का प्रयोग करता है।

3. तुलना, साहचर्य और अमूर्तिकरण (Comparison, Association and Abstraction) : पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करने के बाद पिछली सूचनाओं और वर्तमान पाठ सम्बन्धी सूचनाओं और विभिन्नताओं का पता लगाया जाता है। इससे विद्यार्थी नया ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ पूर्व ज्ञान की भी आवृत्ति करते हैं। इससे पूर्व ज्ञान और वर्तमान

ज्ञान में साहचर्य स्थापित हो जाता है। इससे एक विषय का दूसरे विषय के साथ साहचर्य स्थापित हो जाता है। इससे सीखी हुई विषय सामग्री दीर्घकालीन स्मृति का भाग बन जाती है और विद्यार्थी अमूर्तिकरण करने और निर्णय लेने में सक्षम हो जाते हैं।

4. सामान्यीकरण (Generalization) : इसमें सामान्यीकरण सम्बन्धी नियमों तथा सिद्धान्तों की रचना की जाती है। ऐसा तब होता है जब सीखने वाला अध्ययन सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन करने लगे, इकट्ठी की गई सूचनाओं में विभिन्न साहचर्यों का निर्माण करने लगे तथा तर्कयुक्त अनुमान लगाना सीख ले। बोध-स्तर में बालक शिक्षक के निर्देशन में मानसिक क्रियायें करके सामान्यीकरण करना सीखना आरम्भ कर देता है।

5. अनुप्रयोग (Application) : इसमें विद्यार्थी सामान्यीकरण नियमों का उपयोग दूसरी शिक्षण स्थितियों में सीखने, विषय-सामग्री की व्याख्या करने तथा प्रत्येक दिन की समस्याओं को समझने तथा सुलझाने में करते हैं। इस तरह यह शिक्षण-स्तर प्राप्त ज्ञान तथा उससे निर्मित नियमों के उपयोग का प्रारम्भ समझा जाता है।

6. मूल्यांकन (Evaluation) : अन्त में वांछित साधनों तथा विधियों की सहायता से विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं अथवा ज्ञान का मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिये उचित मूल्यांकन विधियों और प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

बोध शिक्षण-स्तर के मूलतत्व
(Elements of Understanding Level of Teaching)

(*i*) **उद्देश्य** (objectives) : ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों के सिद्धान्त (1956) पर आधारित शिक्षण उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. धारणा उद्देश्य (Comprehension objectives) : इस उद्देश्य में अनुवाद करना, व्याख्या करना आदि आते है।

2. अनुप्रयोग उद्देश्य (Application objectives) : इस उद्देश्य में यह देखा जाता है कि विद्यार्थियों ने प्राप्त ज्ञान अथवा सूचनाओं को दूसरी समान तथा अलग स्थितियों में प्रयोग करने की कितनी क्षमता प्राप्त की है।

ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों में संशोधित सिद्धान्त (2001) के अनुसार एण्ड्रसन तथा क्रेथवो ने इन उद्देश्यों का वर्णन इस प्रकार किया है- इस सिद्धान्त में अनुवाद उद्देश्य के स्थान पर 'जानना', 'ग्रहण करना' उद्देश्य रखा गया है। इन उद्देश्यों को दो भागों में बाँटा गया है-

(*a*) **बोध उद्देश्य** (Understanding objectives) : इस वर्ग में शिक्षण में प्रस्तुत मौखिक, लिखित और सांकेतिक सूचनाओं को समझना, धारण करना, उनकी व्याख्या करना, वर्गीकरण करना, संक्षिप्त करना तथा प्राप्त ज्ञान को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करना आदि उद्देश्य सम्मिलित किये जाते हैं।

(*b*) **अनुप्रयोग-उद्देश्य** (Application objectives) : इसमें किसी दी गई स्थिति में किसी अथवा प्रणाली का विधिवत्-प्रयोग करना सम्मिलित किया गया है। यह दो प्रकार से किया जाता है-

1. सामान्यीकरण से प्राप्त किसी नियम अथवा सिद्धान्त की प्रस्तुति।
2. सामान्यीकृत नियमों अथवा सिद्धान्तों को प्रभावपूर्ण ढंग से अन्य स्थितियों में प्रयोग करना।

(*ii*) **विषय-वस्तु** (Subject matter) : इस शिक्षण-स्तर की विषय-वस्तु व्यापक होती है। गुणात्मक व मात्रात्मक दृष्टि से यह स्मृति-शिक्षण स्तर की सामग्री से कहीं अधिक होती है। विद्यार्थी नये ज्ञान, प्रत्ययों, विषयों और कारकों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करते हैं, उन्हें समझते हैं, सीखते हैं और धारण करते हैं। इसमें विद्यार्थी पूर्व ज्ञान से अधिक सूचनायें इकट्ठी करता है। सीखे गये ज्ञान का उपयोग जीवन की वास्तविक स्थितियों में करना सीखता है।

(*iii*) **प्रयुक्त विधियाँ** (Methods used) : शिक्षण के इस स्तर पर निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है-

1. व्याख्यान विधि (Lecture Method)
2. व्याख्यान प्रदर्शन विधि (Lecture Demonstration Method)
3. वाद-विवाद विधि (Discussion Method)
4. आगमन-निगमन विधि (Inductive-Deductive Method)
5. वर्णनात्मक एवं दृष्टान्त विधि (Explanation and Examplification Method)

(*iv*) **कक्षा-कक्ष वातावरण** (Classroom Climate) : इस स्तर पर प्रस्तुत विषय-वस्तु सार्थक और आपस में सम्बन्धित होती है। इसलिये शिक्षण के इस स्तर पर कक्षा का वातावरण स्मृति शिक्षण स्तर की अपेक्षा अधिक सजीव और प्रोत्साहित होता है। बालक यहाँ अधिक सक्रिय रहता है। पढ़ने में रूचि लेता हैं। पाठ्य-सामग्री की तरफ उनका ध्यान केन्द्रित करना आसान होता है। विद्यार्थी सक्रिय रहते हैं। इसलिये अनुशासन की समस्या

अपेक्षाकृत कम रहती है। इसके अध्यापक व विद्यार्थी के बीच अन्त:क्रिया होती रहती है, इसलिये कक्षा का वातावरण संजीव, धनात्मक और खुशनुमा रहता है।

(*v*) **अभिप्रेरणा** (Motivation) : इस स्तर पर विद्यार्थी दो प्रकार से सीखते हैं-

1. शिक्षक पाठ्य सामग्री प्रस्तुत करता है तथा विद्यार्थियों को उन्हें सीखने के लिये आदेश देता है।
2. विद्यार्थियों की आन्तरिक अभिप्रेरणा शक्ति उन्हें सीखने के लिये प्रेरित करती है।

इसमें विद्यार्थियों का अभिप्रेरणा स्तर उच्च होता है। यदि शिक्षक उचित अध्यापन कौशलों तथा अपनी सूझ-बूझ का प्रयोग करें तो अभिप्रेरणा स्तर को और भी उच्च बनाया जा सकता है तथा इसे बालकों में आन्तरिक अभिप्रेरणा में रूपान्तरित किया जा सकता है।

(*vi*) **शिक्षण-उपकरण** (Teaching-equipments) : शिक्षण में शिक्षण उपकरण अध्यापक के महत्त्वपूर्ण सहायक साधन होते हैं। इनके प्रयोग से अधिगम को सरल और रोचक बनाया जा सकता है। आधुनिक समय में चार्ट, चित्र, मॉडलों के अतिरिक्त टी. वी, रेडियो, फ्लैश कार्ड तथा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण उपलब्ध है। शिक्षण में जिनका प्रयोग सफलता से किया जा सकता है। परन्तु शिक्षक को इन उपकरणों का प्रयोग पाठ्य-सामग्री और बालकों के मानसिक स्तर के अनुसार करना चाहिये।

(*vii*) **मूल्यांकन** (Evaluation) : इस स्तर पर मूल्यांकन के लिये परीक्षण विधियों और साधनों का प्रयोग किया जाता है। जिनसे बालक की क्षमताओं का परीक्षण किया जा सके और यह पता चल सके कि बालक सामान्यीकृत नियमों से प्राप्त सूझ-बूझ को दूसरी स्थितियों में प्रयोग करने में कितनी सक्षम हुये है।

मनोवैज्ञानिक पक्ष
(Psychological Aspect)

बोध स्तर के निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक पक्ष है-

1. अन्तर्बोध सिद्धान्त (Apperception Theory) : इस सिद्धान्त में पांच चरण होते हैं। इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया जाता है कि इस स्तर पर बच्चों का मानस पटल विभिन्न संप्रत्ययों के बारे में जानने, पदार्थों, विषयों तथा घटनाओं सम्बन्धी ज्ञान ग्रहण करने तथा उसे आत्मसात करने के लिये पर्याप्त रूप से समर्थ होता है। विद्यार्थी विभिन्न सूचनाओं के अर्थ को समझते हैं। वे उन सूचनाओं में निहित विभिन्नताओं और समानताओं का पता लगा सकते हैं। वे सामान्यीकरण के द्वारा नियमों और सिद्धान्तों की खोज तथा उनकी व्याख्या करके उन्हें ग्रहण कर सकते हैं तथा उनका परिपालन कर सकते हैं।

2. गैस्टालट सूझ सिद्धान्त (Gastalt Insight Theory) : गैस्टालवादी मनोवैज्ञानिको का मानना है कि विकास की इस अवस्था में बालक सीखने में भूल एवं प्रयास की अपेक्षा सूझ विधि का अधिक प्रयोग करते है। इसमें विषय-वस्तु अथवा स्थिति अधिक बोधगम्य बन जाती है, जिससे सीखने में सरलता व सहजता रहती है। इसमें विद्यार्थी प्राप्त ज्ञान को विद्यालय से बाहर यथार्थ जीवन की स्थितियों में प्रयोग करने में सक्षम हो जाते हैं।

बोध-स्तर के शिक्षण के गुण
(Merits of Teaching of Understanding Level)

इस स्तर के गुण निम्नलिखित है-

1. इस स्तर के शिक्षण से विद्यार्थियों को स्मृति-स्तर के शिक्षण की तुलना में कहीं अधिक स्थायी ज्ञान प्राप्त होता है।
2. इसमें विद्यार्थी पाठ्य-वस्तु को रटकर नहीं, बल्कि उसे समझकर ज्ञान प्राप्त करते हैं। अत: वे इस ज्ञान का व्यावहारिक रूप में प्रयोग भी कर सकते हैं।
3. इसके द्वारा विद्यार्थी अपनी बुद्धि व विचार शक्ति का प्रयोग कहीं अधिक प्रभावी ढंग से कर सकते हैं।
4. इसमें पाठ्य-वस्तु को क्रमबद्ध व व्यवस्थित रूप से विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया जाता है और उनके पूर्वज्ञान से नवीन ज्ञान को जोड़ा जाता है।
5. इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान ही चिन्तन-स्तर के शिक्षण के लिये आधार का काम करता है।

बोध-स्तर के शिक्षण के दोष
(Demerits of Teaching Understanding Level)

1. इस स्तर के शिक्षण में मानवीय व्यवहारों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।
2. इसमें पूरी कक्षा के आकांक्षा स्तर को ऊपर उठाने का प्रयास नहीं किया जाता है।
3. इसमें विद्यार्थियों के भावात्मक और क्रियात्मक पक्षों का विकास न होकर केवल ज्ञानात्मक पक्ष का विकास होता है।
4. यह शिक्षण विषय-केन्द्रित होता है, जिससे विद्यार्थी और अध्यापक के बीच स्वाभाविक अन्त:क्रिया नहीं होती।

3. चिन्तन शिक्षण स्तर
(Reflective Level of Teaching)

यह स्तर शिक्षण अधिगम का सबसे उच्च स्तर है। इस स्तर पर बालक केवल सीखते नहीं है बल्कि वे सक्रियता से संप्रेषित ज्ञान को ग्रहण करते हैं, आत्मसात करते हैं। संदेहों को दूर करने के लिये प्रश्न पूछने या तर्क करने तक ही सीमित नहीं रहते। इस स्तर पर छात्र स्वयं प्रस्तुत पाठ्य-सामग्री सम्बन्धी चिन्तन करते हैं, मनन करते हैं और उसे ग्रहण करते हैं।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विषय में कहा जा सकता है कि यह बालकों के संज्ञानात्मक विकास की उच्चतम अवस्था है। इस संज्ञानात्मक विकास को Formal operational stage कहा जा सकता है।

चिन्तन-स्तर में बालक की सभी संज्ञानात्मक क्षमताओं के विकास पर बल दिया जाता है। इस स्तर में विद्यार्थी स्वयं तथ्यों का परीक्षण करने में सक्षम हो जाते है। वे स्वयं स्वतन्त्र रूप से परिकल्पनाओं का निर्माण करते हैं, उनका परीक्षण करते हैं तथा उनके समर्थन व विपक्ष में तथ्य तथा प्रमाण एकत्रित करते हैं। आवश्यकतानुसार वे नई परिकल्पनाओं का निर्माण करते हैं तथा उन्हें जाँचने का प्रयत्न करते हैं।

चिन्तन स्तर पर बालक अधिगम को स्मरण या रट्टा नहीं लगाते बल्कि छात्र अपनी सभी उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं व योग्यताओं का उपयोग करना सीखते है। वे प्राप्त ज्ञान को वास्तविक जीवन की स्थितियों में प्रयोग करना सीख जाते है। सीखने सम्बन्धी निर्णय उनके स्वयं के होते है और वे स्वयं अपना दिशा-निर्देशन करने योग्य बन जाते हैं।

इस प्रकार चिन्तन-स्तर बालकों को स्वयं सीखने योग्य बनाता है। उनमें समस्या समाधान की योग्यता विकसित हो जाती है। इस स्तर पर विद्यार्थी स्वयं सीखने के नये क्षेत्र ढूंढते हैं। वे नई-नई समस्याओं को ढूंढते है और उनसे सम्बन्धित परिकल्पनाओं का निर्माण करते है और इस तरह अनेक समस्याओं का हल करना तथा उनसे प्राप्त ज्ञान को जीवन में उपयोग करना सीख जाते हैं।

अत: स्मृति स्तर से प्राप्त ज्ञान बालकों में सीखने के लिये पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।

चिन्तन स्तर के मूल तत्व
(Elements of Reflective Level of Teaching)

इसके मूल तत्व निम्नलिखित है।

1. **उद्देश्य** (Objectives) : शिक्षण के इस स्तर के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. बालकों में समस्या समाधान के लिये सूझ उत्पन्न करना।

2. बालकों में तर्कपूर्ण चिन्तन का विकास करना।

3. बालकों में चिन्तन व निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि छात्रों में संश्लेषण, विश्लेषण और मूल्यांकन करने की योग्यता का विकास करना।

2. विषय-वस्तु तथा अधिगम क्रियायें (Subject Matter and Learning activities) : इस स्तर पर शिक्षण सम्बन्धी विषय-वस्तु असंरचित होती है। इस स्तर पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया अधिक लचीली तथा आवश्यकता पर आधारित होती है। इसमें शिक्षण की विषय-सामग्री पूर्व निश्चित नहीं होती और न ही उसे लागू करने के लिये पूर्ण रूप से कोई पूर्व योजना का निर्धारण किया जाता है। इसमें समस्या समाधान करने के लिये उपयुक्त साधनों का प्रयोग करके समस्या समाधान किया जाता है।

3. शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया (Teaching Learning Process) : शिक्षण-अधिगम के इस स्तर पर छात्र अपनी उच्चतर मानसिक योग्यताओं का विकास करना सीखते हैं। यहाँ शिक्षण सरल, गतिशील और लचीला होता है। इसमें पहले से निश्चित पाठ्यक्रम को तरीके से प्रस्तुत करने के स्थान पर इस अवस्था में छात्रों के सामने कुछ समस्यायें अथवा समस्या युक्त स्थितियाँ रखी जाती हैं, जिन्हें वे हल करने का प्रयास करते हैं। समस्या प्रस्तुत करने में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अध्यापक की होती है। विद्यार्थी निर्देशानुसार समस्या का हल ढूंढते हैं। उसके बाद वे समस्याओं की पहचान करके उनका समाधान करने के साधन खोजते है और समाधान कर लेते हैं।

इस प्रकार के शिक्षण में निम्नलिखित चरण हैं-

1. समस्या की पहचान (Identifying or Raising a Problem)

2. परिकल्पना का निर्माण (Formulating a Hypothesis)

3. उपयुक्त साधनों का चुनाव (Selection of Appropriate Means)

4. परिकल्पना का परीक्षण (Testing Hypothesis)

4. शिक्षण की विधियाँ (Methods Employed) : इस स्तर पर बाल केन्द्रित अध्यापन विधियों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि अनेक क्रियायें बालकों को स्वयं करनी पड़ती है। इसका उद्देश्य बालकों को सीखने के लिये प्रेरित तथा प्रोत्साहित करना और उनकी जिज्ञासाओं को शान्त करना हैं। बालकों को अपने वातावरण सम्बन्धी

अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया जाता है। इसमें समस्या समाधान के लिये खोज विधि का प्रयोग किया जाता है।

इसकी प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित है-

(*a*) समस्या-समाधान विधि।

(*b*) अनुसंधानिक परियोजनायें।

(*c*) जाँच-पड़ताल विधि।

(*d*) अन्वेषणात्मक प्रणाली।

5. कक्षाकक्ष वातावरण तथा अभिप्रेरणा (Classroom Climate and Motivation) : इस शिक्षण-स्तर में कक्षा वातावरण शिक्षण अधिगम क्रियाओं के लिये पूरी तरह अनुकूल होता है। इसमें शिक्षण सम्बन्धित सभी क्रियायें छात्रों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर आधारित होती है। इसलिये शिक्षण अधिगम क्रियाओं में उनकी पूरी भागीदारी होती है। जिसके परिणामस्वरूप आन्तरिक अभिप्रेरणा वाहरी अभिप्रेरणा का स्थान ले लेती है। इसमें छात्र पूरी तरह अधिगम प्रक्रिया से जुड़े होते हैं, इसलिये अनुशासन की समस्या होते हैं, इसलिये अनुशासन की समस्या उत्पन्न नहीं होती।

इसमें शिक्षण-अधिगम की सभी क्रियायें लचीली और गतिशील होती हैं। छात्र और अध्यापक दोनों ही पूरी तरह स्वतन्त्र होते हैं। जिसके कारण कक्षा का वातावरण लोकतन्त्रात्मक बना रहता है।

6. मूल्यांकन-प्रविधियाँ (Evaluation Devices) : इस स्तर पर निम्नलिखित ढंग से मूल्यांकन किया जाता है।

1. निबन्धात्मक और खुले-अन्त (open-ended) प्रश्न होते हैं।
2. समस्या समाधान की योग्यता का विकास।
3. तर्कात्मक और आलोचनात्मक योग्यता का परीक्षण।
4. छात्रों में सृजनात्मक चिन्तन का विकास करना।
5. विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत करके उनमें विश्लेषण और संश्लेषण करने की योग्यता का परीक्षण।
6. छात्रों में समस्याओं को पहचानना, समस्या समाधान करना, निष्कर्ष निकालना, नियमों का निर्माण करना आदि योग्यताओं का विकास करना।

अत: इस स्तर पर बालक अधिगम की सम्पूर्ण प्रक्रिया अपने-आप स्वतन्त्र रूप से करता है। शिक्षक उसे पूर्ण स्वतन्त्रता देता है। शिक्षक का सिर्फ इतना ही कार्य होता है कि वह छात्रों को दिशा-निर्देश प्रदान करे और यह देखे कि छात्र कार्य ठीक कर रहा है या नहीं। इस शिक्षण-स्तर पर अध्ययन-अध्यापन की सभी क्रियायें छात्र केन्द्रित होती है।

चिन्तन शिक्षण-स्तर के मनोवैज्ञानिक पक्ष (Psychological Bases of Reflective level of Teaching)

निम्नलिखित सिद्धान्त चिन्तन अधिगम स्तर को मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं-

1. कर्ट लेविन का अधिगम का क्षेत्र सिद्धान्त।
2. कोहलर और कॉफका द्वारा प्रतिपादिक सूझ द्वारा सीखने का सिद्धान्त।
3. वर्दीमर का उत्पादन चिन्तन सिद्धान्त।
4. गैस्टाल्टवादियों द्वारा प्रतिपादित सीखने के आधार तथा संगठन के नियम।

चिन्तन शिक्षण स्तर की विशेषतायें (Characteristics of Reflective-Level of Teaching)

इस स्तर की विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

1. इस स्तर पर बालकों में उच्च संज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास होता हैं।
2. इसमें छात्र पूरी तरह स्वतन्त्र होता है। यह बाल केन्द्रित उपागम है।
3. इसमें छात्रों में समस्या समाधान की योग्यता का विकास होता है।
4. इसमें छात्रों का सर्वांगीण विकास होता है।
5. इसमें कक्षा में लोकतन्त्रात्मक वातावरण होता है।

चिन्तन शिक्षण स्तर के गुण (Merits of Reflective level of Teaching)

इस शिक्षण स्तर के निम्नलिखित गुण है।

1. इस स्तर पर शिक्षण अधिगम छात्र केन्द्रित होता है।
2. यह स्तर स्मृति-स्तर और बोध स्तर की तुलना में अधिक उपयोगी और तर्कयुक्त होता है।
3. इस स्तर में छात्र अपनी चिन्तन शक्ति द्वारा नई समस्याओं की समाधान स्वयं कर सकते है।

4. इसमें अध्यापक और छात्र की बीच अन्त: क्रिया होती है।
5. इसमें छात्रों में सृजनात्मक योग्यताओं का विकास होता है।

चिन्तन शिक्षण स्तर के दोष
(Demerits of Reflective level of Teaching)

इस शिक्षण स्तर के निम्नलिखित दोष है।

1. यह उच्च स्तर की कक्षा व विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है। छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये उपयोगी नहीं है।
2. इसमें पाठ्य-वस्तु व विषय-वस्तु क्रमबद्ध नहीं होती।
3. इसमें कोई निश्चित योजना नहीं होती।
4. छात्र अधिक स्वतन्त्र होती है।
5. अध्यापक का महत्त्व ज्यादा नहीं होता।

3

शिक्षण के सिद्धान्त
(Theories of Teaching)

हमने सीखने के सिद्धान्तों और शिक्षा प्रदान करने में उनका क्या महत्त्व है, इन पर बल दिया है। सीखने की सिद्धान्तों में स्पष्ट किया गया है कि एक शिक्षक अपने शिक्षण में सीखने के सिद्धान्तों का प्रयोग किस प्रकार करता है। परन्तु सीखने और शिक्षण के आपसी सम्बन्धों की कहीं भी विशेष रूप से व्याख्या नहीं की गई है। प्रस्तुत अध्याय में हम शिक्षण के सिद्धान्त, शिक्षण प्रतिकृतियों और अभिकल्पों का वर्णन करेंगे।

शिक्षण उतना ही प्राचीन है जितनी कि मानव जाति, फिर भी आज मान्य रूप से कोई भी शिक्षण विधि नहीं है। शिक्षण का केन्द्रविन्दु सीखने में सुविधा लाना है। जहाँ शिक्षण होगा वहाँ सीखना अवश्य होगा। शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों में परिवर्तन लाया जा सकता है। शिक्षण द्वारा समाजहित में जो वांछित परिवर्तन होते हैं वे विद्यार्थियों में लाये जा सकते है। इन परिवर्तनों को ही सीखना कहा जाता है। शिक्षा का सम्बन्ध सीखने के मनोवैज्ञानिक रूप से समझा जाता है। इसी कारण अनेक मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि सीखने के सिद्धान्त ही शिक्षण के सिद्धान्त की आधारशिला होनी चाहिये। परन्तु सीखने के सिद्धान्त की कक्षा शिक्षण में प्रयोग करने की अनेक सीमायें हं। सीखना एक जटिल प्रक्रिया है, इस पर कोई निश्चित मत नहीं है। दूसरा, सीखने के सिद्धान्त पशुओं, जैसे- चूहे आदि पर प्रयोग करके बनाये गये हैं। मानव पर प्रयोग प्रयोगशाला के सीमित दायरे तक सीखने के उद्देश्यों को लेकर जैसे स्मरण शक्ति आदि पर ही किये गये है। इनका कक्षा में प्रयोग करना बहुत कठिन काम है।

सन् 1963 में जेम्स ब्रूनर (James Bruner) ने शायद सबसे पहले शिक्षण सिद्धान्त शब्द का प्रयोग उस अर्थ में किया था जिस अर्थ में आज प्रयोग होता है।

पेटरसन (Patterson) के अनुसार सन् 1965 में यह शब्द - "नौवें करीक्यूलम रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ दि एसोसिएशन फॉर सुपरविजन एण्ड करीक्यूलम डेवलपमेन्ट।" (Ninth Curriculum Research Institute of the Association for Supervision and Curriculum Development) के शीर्षक में प्रयोग हुआ।

उस वर्ष में इस एसोसिएशन ने एक कमीशन शिक्षण सिद्धान्त के लिये नियुक्त किया। इस कमीशन ने एक रिपोर्ट सन् 1968 में शिक्षण-सिद्धान्त के लिये कसौटी क्या हो, इस पर प्रकाशित की। 12 वर्षों के समय में (1968 से 1980 तक) संसार भर में

शिक्षण सिद्धान्त पर बहुत विचार किया। इस पर महत्त्वपूर्ण विकास इंग्लैण्ड और अमेरिका में किया गया। भारत में भी उन व्यक्तियों द्वारा, जो इन देशों से प्रशिक्षित होकर आये थे ध्यान दिया गया। किन्तु बहुत - कुछ इस ओर विकास शिक्षण तकनीकी पर बल देने के कारण हुआ। शिक्षण में तकनीकी के प्रयोग के लिये एक सैद्धान्तिक रूपरेखा की आवश्यकता थी। इस प्रकार की रूपरेखा बनाने के लिये ध्यान शिक्षण के सिद्धान्तों पर केन्द्रित किया गया।

शिक्षण सिद्धान्त की आवश्यकता (Need for Theory of Teaching)

शिक्षण सीखने के सिद्धान्त से सरल रूप से सम्बन्धित नहीं है। शिक्षण के लिये सीखने के सिद्धान्त की आवश्यकता महसूस होती है फिर भी यह पर्याप्त नहीं है।

जेम्स ब्रूनर के अनुसार- "सीखने के सिद्धान्त को शिक्षण के लिये पथ प्रदर्शक मानना त्रुटिपूर्ण होगा।"

वे मानते है कि शिक्षण अभ्यास सीधे तौर से सीखने के सिद्धान्त से नहीं निकाले जा सकते। इसे एक शिक्षण सिद्धान्त से प्राप्त करना चाहिए।

शिक्षण सिद्धान्त की आवश्यकता का वर्णन निम्न तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है :

1. शिक्षण के लिये एक सिद्धान्त की आवश्यकता शिक्षण के जो व्यवस्थित आधार माने जाते हैं, उनको संगठित और समन्वित करने के लिये है। यह सिद्धान्त नियमों को व्यवस्थित करने का एक ढाँचा प्रदान करता है। यह विशिष्ट शिक्षण अभ्यास के लिये औचित्य प्रदान करता है।
2. एक सिद्धान्त नवीन विधियों तथा अभ्यासों के मूल्यांकन और उनके चुनाव का आधार प्रदान करता है। यह शिक्षण की योजना बनाने, संगठित करने तथा मूल्यांकन करने के लिये एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है।
3. यह उन अनुसंधानों और खोजों के क्षेत्र को इंगित करता है जो उपयोगी नवीन विधियों के विकास की ओर हमें ले जाती है।
4. यह अध्यापकों के प्रशिक्षण में सुविधा लाता है और प्रशिक्षण के लिये एक संगठन प्रदान करता है।
5. एक शिक्षण-सिद्धान्त शिक्षण तथा सीखने में सम्बन्ध की व्याख्या करता है तथा उनमें समान खण्डों की पहचान करता है।
6. एल. एल. गेज के अनुसार, शिक्षण के सिद्धान्त हमारी शिक्षण सम्बन्धी समझ, पूर्वानुमान और नियन्त्रण को बढ़ाने के लिये उपयोग किये जा सकते है।

शिक्षण सिद्धान्त में उन सभी तत्वों को शामिल करना चाहिये और ध्यान में रखना चाहिये जो कुछ हम मानव के सम्बन्ध में जैविक और मनोवैज्ञानिक रूप से जानते हो। मनोविज्ञान, प्राणिशास्त्र, मानव विज्ञान और समाजशास्त्र सबको शिक्षण का सिद्धान्त बनाने में महत्त्व देना चाहिये। परन्तु इन सभी क्षेत्रों में हमारा ज्ञान अधुरा है, इन सभी क्षेत्रों में कोई भी एकमत नहीं हैं। परन्तु वर्तमान में हमारे पास पर्याप्त ज्ञान है जिसका उपयोग करके हम एक शिक्षण सिद्धान्त का प्रयोग कर सकते हैं।

सिद्धान्त की प्रकृति
(The Nature of Theory)

सिद्धान्त ज्ञान को संगठित और समन्वित करने का एक प्रयास है ताकि प्रश्न 'क्यों' का उत्तर दिया जा सके। एक सिद्धान्त में तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है, अर्थ प्रदान किया जाता है, नियमों और विधियों के रूप में तथ्यों और ज्ञान को जो एक क्षेत्र के होते हैं, उनको कथित करता है।

प्रतिरूप (Model), रूपावली (Paradigm) और सिद्धान्त (Theory) में अन्तर :-

गेज (Gage) के अनुसार- रूपावली एक मॉडल या प्रतिमान है जो कि चिन्तन के ऐसे मार्ग को निर्धारित करने के लिये उपयोगी है जो कि एक सिद्धान्त को विकसित करने में सहायक हो।

एक सिद्धान्त एक व्यवस्था को प्रस्तुत करता है जिसमें चरों के बीच अन्त:क्रिया का वर्णन होता है। एक मॉडल का मूल्यांकन उसकी उपयोगिता के आधार पर किया जाता है।

शिक्षण का मॉडल सीखने के सिद्धान्त पर आधारित होता है, मॉडल पहले बनाया जाता है। यह मॉडल शिक्षण सिद्धान्त को आधार प्रदान करता है।

सिलवरमैन के अनुसार- "एक शिक्षण सिद्धान्त के विकास का प्रारम्भ, जो कुछ सीखने के बारे में प्रयोगशाला तथा कक्षा-कक्ष में जाना हुआ होता है, उससे एक मॉडल को अपनाकर जो सीखने के सिद्धान्त से निकाला गया है करना चाहिये।"

हिलगार्ड और बावर : तीन मॉडलों का वर्णन करते हैं जो उन तीन सिद्धान्तों पर निर्भर है जो उनको प्रस्तावित करते हैं। यह तीनों मॉडल एक प्रकार की समस्याओं से सम्बन्ध नहीं रखते। जो एक मॉडल को प्रस्तावित करते है वह बाकी दो मॉडलों के बारे में कुछ नहीं कहते। ये तीनों सिद्धान्त गेने, ब्रूनर और ऐटकिन्सन के है।

शिक्षण सम्बन्धी सिद्धान्त
(Teaching Theory)

शिक्षण-सम्बन्धी सिद्धान्त सीखने के सिद्धान्त के पूरक के रूप में है। शिक्षा एक स्वतन्त्र अध्ययन का क्षेत्र है। इसलिये न केवल सीखने के सिद्धान्तों पर आश्रित रहना चाहिये बल्कि सम्बन्धी सिद्धान्त बनाये जाने चाहिये।

1. करलिंगर के अनुसार शिक्षण सिद्धान्त की परिभाषा : "एक शिक्षण सिद्धान्त परस्पर सम्बन्धित रचनाओं, परिभाषाओं, उपसंज्ञाओं की शृंखला है, जो शिक्षक के सम्बन्ध में, चल राशियों के बीच में सम्बन्धों को इस उद्देश्य से व्यक्त करके कि शिक्षण की व्याख्या हो जाये और इसका पूर्वानुमान हो जाये। एक व्यवस्थित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।"

2. ब्रूनर के अनुसार : "शिक्षण सम्बन्धी सिद्धान्त शिक्षण देने की सामान्य विधियों की व्याख्या करते हैं।"

अब तक शिक्षण-सिद्धान्त का निर्धारण एक स्वीकृत संस्थान के रूप में नहीं हो पाया है जो कि प्रयोग, विवेचन तथा सिद्धान्त में अदल-बदल करके होता है। इस कारण हम शिक्षण सम्बन्धी एक सिद्धान्त का वर्णन नहीं कर सकते। अनेक सिद्धान्तों का वर्णन किया जा सकता है।

हम शिक्षण सिद्धान्तों को तीन भागों में बाँट सकते हैं :

1. **औपचारिक शिक्षण सिद्धान्त (Formal Theory of Teaching)**
2. **वर्णनात्मक शिक्षण सिद्धान्त (Descriptive Theory of Teaching)**
3. **प्रामाणिक शिक्षण सिद्धान्त (Normative Theory of Teaching)**

इन तीनों का वर्णन निम्न प्रकार है :

1. औपचारिक शिक्षण सिद्धान्त (Formal Theory of Teaching)

यह सिद्धान्त तत्त्वविज्ञान (Metaphysics) और ज्ञानवाद (Epistemology) की उपसंज्ञाओं पर आधारित है। इसे शिक्षण सिद्धान्त में सबसे पहले प्रतिपादित किया गया। औपचारिक शिक्षण-सिद्धान्त वर्ग में चार शिक्षण-सिद्धान्त उपवर्गों का वर्णन किया जा सकता है।

1. विचारोत्पादक शिक्षण का सिद्धान्त (Maieutic Theory of Teaching) : इसके जन्मदाता सुकरात है। यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि सब ज्ञान बालक के अन्दर है और शिक्षक का काम केवल उसे बाहर लाना है। इसके लिये शिक्षक को प्रश्न पूछने की विधि अपनानी चाहिये। प्रश्नों द्वारा बालक के अन्दर जो जिज्ञासा और ज्ञान है उसे बाहर लाया जा सकता है।

2. सम्प्रेषण शिक्षण का सिद्धान्त (Communication Theory of Teaching) : इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हरबर्ट (Herbat) ने किया है। इसमें बच्चे के मस्तिष्क को कोरा कागज माना गया है। जिस पर शिक्षण अपने अच्छे संप्रेषण द्वारा अच्छे विचार अंकित

कर सकता है। शिक्षक के पास सम्पूर्ण ज्ञान होता है और इस ज्ञान को बालक सिखाता है। ये सब वह व्याख्या करके, प्रदर्शन करके और कमरे में कुछ क्रियायें करके कर सकता है। इसमें छात्रों को शिक्षण की मुख्य विधियाँ दिखायी और सिखायी जाती है।

3. संचककरण शिक्षण सिद्धान्त (The moulding Theory of Teaching) : इस सिद्धान्त के प्रतिपाद डीवी (Dewey) है। इस सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थियों में शिक्षण द्वारा वांछित आकृति में ढाला जा सकता है। मानव के व्यक्तित्व का निर्माण उसके आस-पास के वातावरण में होता है। इस बालक को उत्तम वातावरण में शिक्षण देना चाहिये। छात्रों को इस प्रकार प्रेरणा और उत्तेजक देने चाहिये जिससे उनमें अच्छी आदतों का विकास हो।

4. परस्पर खोजबीन सिद्धान्त (Mutual Inquiry Theory) : यह सिद्धान्त विद्यार्थी और अध्यापक की परस्पर खोज पर बल देता है। यह समस्या- समाधान विधि को महत्त्व देता है। इस विधि में शिक्षक और विद्यार्थी दोनों भाग लेते है। शिक्षक को यह पता होना चाहिये कि उसे क्या पढ़ाना है और उसे खोज विधि का प्रयोग कैसे करना है ? इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक छात्र में खोज विधि द्वारा नया ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता होती है।

2. वर्णनात्मक शिक्षण सिद्धान्त
(Descriptive Theory of Teaching)

यह शिक्षण सिद्धान्त परीक्षणों से प्राप्त परिणामों और निरीक्षणों द्वारा प्राप्त तत्वों पर आधारित है। इस शिक्षण का उद्देश्य शिक्षण सम्बन्धित प्रभावशीलता का पूर्वानुमान लगाना है। गार्डन और ब्रूनर ने इस सिद्धान्त पर बल दिया है।

ब्रूनर का कहना है कि शिक्षण सिद्धान्त निर्देशात्मक (Prescriptive) होता है।

इसमें ज्ञान और कौशलों को प्राप्त करने के लिये नियमों को प्रस्तावित किया जाता है। परिणामों के मापन और मूल्यांकन के लिये अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है। यह प्रामाणिक (Normative) भी होता है, इस रूप में यह उन उद्देश्यों को निश्चित करता है जिन्हें प्राप्त करना है और उनको प्राप्त करने की दशाओं को स्पष्ट करता है।

ब्रूनर शिक्षण-सिद्धान्त के चार विशेषताओं की ओर संकेत करता है। ये निम्नलिखित है :

1. सीखने की उन्मुखता (Predisposition to Learn) : इस शिक्षण सिद्धान्त में ऐसे अनुभवों और पाठ्यवस्तु को शामिल करना चाहिये जो बालक को किसी विद्यालय में दाखिला लेते समय सीखने के योग्य तैयार कर सके।

2. ज्ञान की संरचना (Structure of Knowledge) : इस शिक्षण-सिद्धान्त में शिक्षण के एसे भागों को स्पष्ट करना चाहिये जिनमें ज्ञान के भण्डार की संरचना इस प्रकार की जाये कि विद्यार्थी उसे तुरन्त समझ ले।

3. क्रमशीलता (Sequence) : इस शिक्षण सिद्धान्त में पाठ्यवस्तु को प्रभावशाली क्रमशीलता के रूप में प्रस्तुत की जाती है।

4. पुष्टिकरण (Reinforcement) : एक शिक्षण सिद्धान्त को पुरस्कार की प्रकृति और समय के अवकाश के बाद उन्हें दिया जाना चाहिये और इसे भी इंगित किया जाना चाहिये।

ब्रूनर का मानना है कि एक ज्ञान के क्षेत्र की संरचना को अच्छी तरह समझने पर हम बालक को छोटी आयु में ही प्रगत प्रत्यय (Advanced Concepts) का शिक्षण दिया जा सकता है। इसमें कोई भी विषय प्रभावशाली ढंग से कुछ बौद्धिक ईमानदारी के साथ किसी भी बालक को उसके विकास के किसी भी स्तर पर पढ़ाया जा सकता है।

Any subject can be taught effectively in some Intellectually honest from to any child at any stage of development.

ब्रूनर के अनुसार, एक शिक्षण सिद्धान्त में तीन बातों का ध्यान रखना चाहिये :

1. ज्ञान प्राप्तकर्त्ता के रूप में व्यक्ति की प्रकृति।
2. ज्ञान की प्रकृति
3. ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया की प्रकृति।

शिक्षण सिद्धान्त के पक्ष : शिक्षण सिद्धान्त में निम्नलिखित पक्षों को शामिल किया गया है :

1. सीखने वाले की वस्तुओं के साथ कार्य करने की कुशलता पर तथा विषय का प्रत्यक्षीकरण करने तथा समझने की योग्यता पर बल दिया गया हो। विद्यार्थी को सीखने में यह अपनाना चाहिये कि जो ज्ञान उसने प्राप्त किया है, उसे समस्या समाधान में प्रयोग कर सके।
2. विषय सरल से कठिन की ओर होना चाहिये। ब्रूनर के अनुसार विषय विधि निर्माण सम्बन्धी, प्रतिमा सम्वन्धी और सांकेतिक सम्बन्धी की श्रेणी में होना चाहिये।
3. ब्रूनर ने सीखने में वाह्य और आन्तरिक प्रेरणा को महत्त्व दिया है। किन्तु आन्तरिक प्रेरणा को अधिक महत्त्व दिया है। आन्तरिक प्रेरणा से समस्या समाधान करने पर सन्तोष प्राप्त होता है। सीखने में रूचि जागृत होती है।

4. इसमें सीखने की क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाता है।

5. विचारों और मतों की यथार्थता की जाँच की जाती है।

3. प्रामाणिक शिक्षण सिद्धान्त (Normative Theory of Teaching)

मानव को प्रयोगात्मक स्थितियों में नियन्त्रण में रखना कठिन है। इसलिये प्रामाणिक शिक्षण सिद्धान्त का विकास आवश्यक हो गया है। यह सिद्धान्त शिक्षण की चल राशियों में सम्बन्ध की व्याख्या वास्तविक शिक्षण की दशायें जो कक्षा के कमरें में होती है, उनका निरीक्षण करके प्रस्तुत करता है। इस वर्ग में चार शिक्षण-सिद्धान्त के उपवर्ग है।

1. ज्ञानात्मक शिक्षण सिद्धान्त (Cognitive Theory of Teaching) : इस सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक एन. एल. गेज है। उन्होंने शिक्षण का विश्लेषण किया है। गेज का कहना है कि एक शिक्षण-सिद्धान्त शिक्षा का उद्देश्य प्राप्त करने में पर्याप्त नहीं है। शिक्षण के अनेक सिद्धान्त है। शिक्षण का विश्लेषण चार प्रकार से किया जा सकता है।

(i) शिक्षक क्रिया के प्रकार (Types of Teaching activity) : एक शिक्षक को शिक्षण देने में कई प्रकार की भूमिका निभानी पड़ती है। उसे दार्शनिक, परामर्शदाता, निर्देशक, प्रदर्शनकर्त्ता, पाठ्यक्रम संयोजक आदि की भूमिका निभानी पड़ती है।

(ii) शिक्षण उद्देश्यों के प्रकार (Types of educational objectives) : इसमें अनेक प्रकार के उद्देश्यों का वर्णन किया जाता है। ब्लूम ने तीन प्रकार के उद्देश्यों का वर्णन किया है :

1. ज्ञानात्मक
2. भावात्मक
3. क्रियात्मक

(iii) सीखने के सिद्धान्तों के प्रकार (Types of Learning Theories) : शिक्षण अनेक सीखने के सिद्धान्तों के आधार पर दिया जाता है। जैसे- दार्शनिक सीखने के सिद्धान्त, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त, पुष्टिकरण आदि का सिद्धान्त।

(iv) सीखने के अवयवों के प्रकार (Types of Components of Learning) : नील मीलर ने सीखने के चार अवयवों का सुझाव दिया है- अन्तर्नोद, संकेत, प्रतिक्रिया और पुरस्कार। प्रत्येक अवयव के लिये विभिन्न प्रकार की शैक्षिक क्रियाओं की आवश्यकता होती है।

एक शिक्षण सिद्धान्त का मुख्य कार्य ग्रहण करने अथवा समझने को बढ़ावा देना है। गेज के अनुसार- ठीक प्रकार से बनाये हुये प्रत्यय और नियम, जिनकी संरचना तार्किक हो वही विभिन्न विषयों में शिक्षण द्वारा उत्पन्न करेगें।

तर्कशास्त्र के नियम, ज्ञान सम्बन्धी तथा प्रत्यक्षीकरण के नियम ही शैक्षिक प्रक्रिया को एक सुविधाजनक दृष्टिकोण देते हैं।

2. शिक्षक व्यवहार सिद्धान्त (Theory of Teacher Behaviour) : डी.जी. रायन ने शिक्षक व्यवहार का प्रत्यय प्रस्तुत करके एक शिक्षक व्यवहार के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है।

म्यूक्स तथा स्मिथ के अनुसार शिक्षक व्यवहार की परिभाषा-

"शिक्षक व्यवहार में उन सभी कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जो शिक्षक विशिष्ट तरीके से कक्षा के कमरे में करता है ताकि सीखना प्रवृत्त किया जा सके।"

("Teacher behaviour consists of those acts that teacher performs typically in the classroom in order to induce learning.")

रायन के अनुसार, शिक्षक व्यवहार सामाजिक व्यवहार है। शिक्षक अपना कार्य एक समूह में करता है। कक्षा में अन्त:क्रिया होती है, जिसमें छात्र और अध्यापक दोनों भाग लेते हैं। अन्त:क्रिया शाब्दिक और अशाब्दिक दोनों प्रकार की होती है। अत: शिक्षक व्यवहार का विश्लेषण जो शब्द वह कक्षा में प्रयोग करता है और जिस प्रकार का वह हाव-भाव अपनाता है और जिस प्रकार से विद्यार्थी उसके शाब्दिक और अशाब्दिक व्यवहार पर प्रतिक्रिया करते हैं, इन पर केन्द्रित होता है।

शिक्षक की सभी क्रियायें सामाजिक स्थिति में होती हैं, यह उस सांस्कृतिक परिवेश में होती है, जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी दोनों होते हैं। उनका व्यवहार प्रभावशाली और अप्रभावशाली दोनों तरह का होता है। इसका निर्णय उसका सांस्कृतिक मूल्य क्या है और उसके उद्देश्य क्या है, इनके आधार पर किया जा सकता है।

रायन के अनुसार- "शिक्षक व्यवहार एक आपेक्षिक धारणा है।"

3. मनोवैज्ञानिक शिक्षक सिद्धान्त (Psychological Teaching Theory) : यह सिद्धान्त शिक्षक द्वारा की जाने वाली कुछ क्रियाओं पर केन्द्रित होता है। ये क्रियायें इस प्रकार होती है - शिक्षण कार्य का विश्लेषण, सीखने के उद्देश्यों का निर्धारण, प्रवेश के समय के व्यवहार की पहचान और शिक्षण विधि का चुनाव। शिक्षक अपने अनुभवों द्वारा शिक्षण कार्य का चुनाव करता है।

4. सामान्य शिक्षण सिद्धान्त (General Theory of Teaching) : इसके प्रतिपाद एस. सी. टी. क्लार्क है। यह सिद्धान्त इस मान्यता को प्रस्तुत करता है कि शिक्षण एक

प्रक्रिया है जो कि विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये प्रयोग की जाती है। शिक्षण क्रियायें अलग-अलग शैक्षिक स्तरों पर अलग-अलग उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये अलग हो सकती है।

शिक्षण सिद्धान्त और सीखने के सिद्धान्त में अन्तर

शिक्षण सिद्धान्त और सीखने के सिद्धान्त में निम्नलिखित अन्तर है :

1. शिक्षण सिद्धान्त में शिक्षण में किस विधि का प्रयोग किया जाये यह बताया जाता है और सीखने के सिद्धान्त में सीखने की प्रकृति की व्याख्या की जाती है।
2. शिक्षण सिद्धान्त में शिक्षक और विद्यार्थी के आपस में सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है। सीखने के सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया जाता है कि किस प्रकार के उत्तेजक से क्या प्रतिक्रिया होती है।
3. शिक्षण सिद्धान्त सामाजिक तत्व पर आधारित होते हैं। सीखने का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक इकाई है, जिसके द्वारा कोई भी प्राणी ध्यान केन्द्रित कर सकता है।
4. शिक्षण सिद्धान्त में शिक्षण कैसे प्रभावशाली हो ? इस बात को प्राथमिकता दी जाती है। इसमें विद्यार्थी के विकास को महत्त्व दिया जाता है। सीखने के सिद्धान्त में सीखने की प्रकृति और उसकी व्याख्या को महत्त्व दिया जाता है।
5. शिक्षण सिद्धान्त सीमित होता है। शिक्षण का उद्देश्य एक सीमा तक होता है। सीखने के सिद्धान्त में मानव व्यवहार की व्यापक रूप से व्याख्या की जाती है।
6. सीखने के सिद्धान्त का अध्ययन प्रयोगशाला में किया जा सकता है। जबकि शिक्षण सिद्धान्त में कक्षा कक्ष ही प्रयोगशाला होती है।

इकाई – II
(Unit – II)

4. शिक्षण के प्रतिमान
   (Models of Teaching)
5. शिक्षण की नीतियाँ
   (Strategies of Teaching)
6. दल शिक्षण/टोली शिक्षण/समूह शिक्षण
   (Team Teaching)
7. फ्लैण्डर्स अन्त: क्रिया विश्लेषण प्रणाली
   (Flander's Interaction Analysis System)
8. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी
   (Information and Communication Technology or ICT)

4

शिक्षण के प्रतिमान (Models of Teaching)

प्रतिमान (Model)

प्रतिमान (Model) शब्द को अलग-अलग तरीकों से प्रयोग किया जाता है। जैसे- एक अध्यापक कक्षा में छात्रों के लिये प्रतिमान होता है अर्थात् वह उनके लिये एक अनुकरणीय आदर्श होता है। किसी इमारत या वस्तु का वैसा ही नमूना भी प्रतिमान होता है। जैसे कुतुबमीनार, लाल किला, ताज महल, किसी इमारत या किसी डैम का प्रतिमान।

प्रतिमान (Model) एक ऐसा आधार है, जो सामान्य मनुष्य को वांछित उद्देश्य प्राप्त करने का रास्ता दिखाता है।

(Thus a model is the basis for finding out the correct path in order to attain some desired end.)

सामान्य आंकड़ों (Data) और किसी काम के छोटे रूप में प्रतिनिधित्व को प्रतिमान (Model) कहा जाता है। यह छोटा रूप कार्य अथवा आकृति को समझने में सहायता देता है।

(Models in general are miniature representatives that summarise data or phenomenon and thus act as an aid to comprehension.)

किसी भवन के प्रतिमान (Model) से उस भवन की आकृति को समझने में सहायता मिलती है क्योंकि वह वास्तविक भवन के अलग-अलग अंगों तथा उनके आनुपातिक सम्बन्धों के अनुरूप होता है।

प्रतिमान (Model) अनेक प्रकार के होते हैं :

1. स्थूल प्रतिमान (Physical Model) : स्थूल प्रतिमान में संरचना और कार्यविधि को दर्शाया जाता है। संरचना में "वस्तु कैसी दिखाई देती है।" कार्य विधि में कोई वस्तु कैसे कार्य करती है। इन्हें दर्शाया जाता है।

2. संप्रत्ययात्मक-प्रतिमान (Conceptual Models) : इसमें संप्रत्यय को समझने के लिये शाब्दिक प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है।

3. गणितीय प्रतिमान (Mathematical Model) : गणितीय प्रतिमान अन्य प्रतिमानों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म होते हैं। यह जटिल कार्य स्थिति को गणितीय अभिव्यक्ति के नियमित क्रम में संक्षिप्त कर देता है।

4. रेखाचित्र प्रतिमान (Graphic Model) : ये प्रतिमान रेखाचित्रों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। जैसे किसी भवन या बांध का रेखाचित्र।

प्रतिमान (Model) शब्द को परिभाषित करते हुये कूम्ब (Coombs and Associates) ने लिखा है :

"Model is an abstraction of the world .... a model of the world which is tested by comparing its consequences to the observed data."

एच. सी. वायल्ड के अनुसार, "प्रतिमान किसी आदर्श के अनुरूप व्यवहार को ढालने की प्रक्रिया को कहा जाता है।"

("To confirm in behaviour, action and to direct one's to action according to some particular design or Idea is called model.")

शिक्षण प्रतिमान
(Teaching Model)

एक समय था जब शिक्षा क्षेत्र में सीखने के सिद्धान्तों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। बाद में शोध और अनुभवों के आधार पर पता चला कि सीखने के सिद्धान्त शिक्षण समस्याओं को सुलझाने में समर्थ नहीं है। वर्तमान में शिक्षाशास्त्री और मनोवैज्ञानिक, तकनीकी के सिद्धान्तों का प्रयोग करते हुये शिक्षण की प्रकृति को समझने का प्रयास कर रहे है। परिणामस्वरूप शिक्षण के सिद्धान्तों का विकास हुआ। इस क्षेत्र में **क्रानवैक** (Cronback) और गेने (Gagne) का नाम प्रमुख है।

वर्तमान समय तक शिक्षण के क्षेत्र में ऐसा कोई भी शिक्षण सिद्धान्त नहीं आया है, जो स्वयं में पूर्ण हो और जिसे सर्वमान्य सिद्धान्तों की श्रेणी में रखा जा सके।

शिक्षण प्रतिमान (Models of Teaching) ऐसे प्रयास अथवा व्यवस्थाएँ हैं जो हमें शिक्षण सिद्धान्तों की ओर ले जाते है। कुछ लोग इन्हें अपूर्ण शिक्षण सिद्धान्त कहते हैं। वास्तव में ये प्रतिमान शिक्षण सिद्धान्तों के निर्माण के लिये प्राथमिक सामग्री (Basic or Raul Material) तथा वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं।

शिक्षण प्रतिमानों की अवधारणा
(Concept of Teaching Models)

शिक्षण प्रतिमान (Models of Teaching)

शिक्षण प्रतिमान, शिक्षण सिद्धान्त विकसित करने की ओर पहला कदम है। ये शिक्षक सिद्धान्तों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। ये स्वयं सिद्ध कल्पनायें होती हैं, जिनका प्रयोग शिक्षक अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिये करता है।

परिभाषायें (Definition) :

1. हायमन के अनुसार- "शिक्षण प्रतिमान शिक्षण के बारे में सोचने विचारने की एक रीति है, जो वस्तुओं में विद्यमान गुणों को परखने के लिये आधार प्रदान करती है। प्रतिमान किसी वस्तु को बाँटने तथा व्यवस्थित करके तार्किक रूप से प्रस्तुत करने की विधि है।"

   (The model is a way to talk and think about Instruction in which certain facts be organized, classified and Interpreted.)

2. **पॉल इगन** एवं अन्य विद्वानों के अनुसार (According to Paul Eggan and other)- शिक्षण-प्रतिमान रीति-अनुसार बनाई गई शिक्षण व्यूह-रचनायें हैं, जो विशिष्ट शिक्षण-लक्ष्यों को पूरा करने के लिये तैयार की जाती है।

   ("Teaching models are prescriptive teaching strategies desgined to accomplish particular teaching goals.")

शिक्षण-प्रतिमान की विशेषतायें
(Characteristics of Models of Teaching)

शिक्षण-प्रतिमान की विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. शिक्षण नीतियां (Teaching-strategies) : शिक्षण-प्रतिमान शिक्षण की नीतियों अथवा उपागमों (Approaches) को प्रस्तुत करते हैं। ये बताते है कि शिक्षण कैसा होना चाहिये।

2. निर्देशक-विन्दु (Guidelines) : इसमें शैक्षिक-क्रियाओं और पर्यावरण के निर्माण के लिये निर्देशक-बिन्दु प्रस्तुत किये जाते हैं।

3. उपचारात्मक (Prescriptive) : इसमें आयोजन, कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन में अध्यापक के दायित्वों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार यह उपचारात्मक है।

4. लक्ष्यों की प्राप्ति (Realisation of objectives) : ये शिक्षा-सम्बन्धित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

5. वैज्ञानिक प्रक्रिया (Scientific procedure) : यह पूरी तरह वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसमें सभी कार्य विधिवत् होते हैं। तथ्य अस्त-व्यस्त नहीं होते बल्कि स्पष्ट होते हैं।

6. पर्यावरण का स्पष्टीकरण (Specification of environment) : इसमें स्पष्ट किया जाता है कि किन पर्यावरण स्थितियों में शिक्षा ग्रहण करेगें और किस पर्यावरण स्थिति विद्यार्थी की अनुक्रिया का अवलोकन किया जाये।

7. अधिगम परिणाम का विशिष्टिकरण (Specification of learning outcome) : इसमें यह स्पष्ट किया जाता है कि विद्यार्थी सीखने के बाद क्या करेगें। शिक्षण-प्रतिमान अधिगम परिणामों को विशेष रूप से प्रस्तुत करते हैं।

8. अनुदेशनात्मक सामग्री (Instructional material) : यह अध्यापक की अनुदेश की सामग्री के चयन और पाठ्यक्रम निर्माण में सहायता करता है।

अन्य विशेषतायें-

1. शैक्षिक प्रतिमान शैक्षिक वातावरण पैदा करने की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डालते हैं।
2. शैक्षिक-प्रतिमान अपनी मान्यताओं के आधार पर अधिगम अनुभवों की व्यवस्था करते हैं।
3. शैक्षिक-प्रतिमान छात्र और शिक्षक के बीच अन्त:क्रिया (Interaction) को निर्देशित करते हैं।
4. शैक्षिक-प्रतिमान द्वारा शिक्षण-प्रक्रिया में सुधार लाया जा सकता है।
5. ये छात्रों की रूचि का विनियोग करते हैं।
6. इनके द्वारा छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सकता है।
7. ये पूर्ण शिक्षण-प्रक्रिया में सुधार लाने में सक्षम है।
8. शिक्षण प्रतिमान छात्रों की रूचि, स्तर तथा उनकी अन्य विशेषताओं का प्रयोग करते हैं।
9. शिक्षण प्रतिमान मूल्यांकन के लिये मानदंड या कसौटी प्रस्तुत करते है।
10. शिक्षण प्रतिमान शिक्षण को एक कला के रूप में विकसित करने में सहायक होते हैं।

शिक्षण-प्रतिमान की मान्यतायें
(Assumptions of Teaching Models)

शिक्षण-प्रतिमान की मुख्य मान्यतायें निम्नलिखित है-

1. शिक्षण-प्रतिमान प्रभावशाली रूप से सीखने के लिये उपयुक्त वातावरण निर्माण करने का एक प्रमुख साधन है।
2. शिक्षण-प्रतिमान सीखने के अनुभवों के लिये वास्तविक तथा व्यवहारिक रूपरेख (Outline) देते हैं।

3. प्रत्येक प्रतिमान, शिक्षण की सफलता के लिये अनेक शिक्षण नीतियों, विधियों तथा युक्तियों का प्रयोग करते हैं।
4. प्रत्येक प्रतिमान शिक्षक और छात्रों के बीच अन्तःक्रिया बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील रहता है और शिक्षण-प्रक्रिया को सक्रिय बनाता है।

शिक्षण-प्रतिमानों के स्त्रोत (Sources of Teaching Models)

शिक्षण-प्रतिमान के स्त्रोतों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार है :

1. सामाजिक अन्तःक्रिया स्त्रोत (Social Interaction sources) : इस वर्ग के शिक्षण-प्रतिमान व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों को महत्त्व देता है। ये सामाजिक सम्बन्ध शिक्षा को आधार मानते हैं।

2. सूचना सम्पादन स्त्रोत (Information processing sources) : विद्यार्थी की सूचना सम्पादन क्षमता भी शिक्षण-प्रतिमान का महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। सूचना सम्पादन क्षमता का अर्थ है- विद्यार्थियों द्वारा उत्तेजक-अभिप्रेरणा (stimuli) का प्रयोग करने, आंकड़ो (Data) को इकट्ठा करने, समस्याओं का अनुभव करने तथा उनका समाधान करने की क्षमता।

3. वैयक्तिक स्त्रोत (Personal sources) : इसमें व्यक्ति के वैयक्तिक एवं भावात्मक जीवन को आधार बनाना है।

4. व्यवहार संशोधन स्त्रोत (Behaviour modification source) : यह स्त्रोत बी. एफ. स्कीनर द्वारा प्रतिपादित सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त (Operant Conditioning Theory) पर आधारित है। अधिकांश शिक्षण-नीतियों में इसका प्रयोग किया जाता है।

शिक्षण प्रतिमान के तत्व (Elements of Teaching Model)

शिक्षण-प्रतिमान के तत्व निम्नलिखित प्रकार है।

1. लक्ष्य या उद्देश्य (Focus) : यह शिक्षण प्रतिमान का केन्द्रीय तत्व है। प्रत्येक शिक्षण-प्रतिमान का एक निश्चित उद्देश्य अवश्य होता है, जिसे उस प्रतिमान का केन्द्र-बिन्दु (Focus) कहा जाता है। ये केन्द्र-बिन्दु शिक्षण के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों से प्रभावित होते हैं और उसी प्रकार की क्षमताओं और योग्यताओं के लिये प्रयत्नशील रहते हैं।

2. संरचना (Syntax) : संरचना का अर्थ है शिक्षण प्रतिमान के वे बिन्दु जो शिक्षण विभिन्न अवस्थाओं (Phases) में निर्धारित लक्ष्यों या उद्देश्यों के अनुसार केन्द्रित क्रियायें उत्पन्न करते हैं। इसमें प्रतिमान के कार्य की संरचना का उल्लेख होता है। इसमें शिक्षण के समूचे कार्यक्रम के गठन में आवश्यक चरणों की संरचना का समावेश होता है। यह शिक्षण का प्रस्तुतितत्व है।

3. सामाजिक प्रणाली (Social system) : यह विद्यार्थी और शिक्षक के सम्बन्ध को दर्शाता है। यह शिक्षक और विद्यार्थी की भूमिका को स्पष्ट करता है। कक्षा के अन्दर और कक्षा के बाहर दोनों के बीच स्थित सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। सभी प्रतिमानों में अध्यापक की भूमिका समान नहीं होती। जैसे- एक प्रतिमान में अध्यापक की भूमिका लोकतान्त्रिक होती है। वह निर्देशन देता है और विद्यार्थियों के सहयोग से शिक्षण करता है। दूसरे प्रतिमान में वह स्वयं केन्द्रीय भूमिका निभाता है। वह शिक्षण स्वयं आयोजित करता है तथा सभी क्रियाओं पर नियन्त्रण रखता है।

4. प्रतिक्रिया के सिद्धान्त (Principal of reaction) : यह तत्व विद्यार्थियों की अनुक्रियाओं के प्रति अध्यापक की प्रतिक्रिया से सम्बन्धित है। कुछ प्रतिमान अध्यापक को ऐसे सिद्धान्त प्रदान करते हैं जिनके द्वारा वह विद्यार्थी की क्रिया के प्रति अपनी प्रतिक्रिया का निर्देशन करता है। ये सिद्धान्त अध्यापक और विद्यार्थियों की अन्त:क्रिया में सहायक होते हैं।

5. सहायक प्रणाली (Support system) : सहायक प्रणाली का सम्बन्ध उन सुविधाओं के साथ है जिनके द्वारा अध्यापक और विद्यार्थी शिक्षण नीति को पूर्णता की ओर ले जाते हैं। यह तत्व लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक स्थितियों की व्याख्या के लिये प्रयोग किये जाते हैं। ये सामान्यत: मानवीय-कौशल, योग्यताओं और तकनीकी सुविधाओं से अलग अन्य आवश्यकताओं की भी व्याख्या करते हैं। सहायक प्रणाली वांछित कक्षीय व्यवहार अथवा वातावरण का निर्माण करके प्रतिमान की सफलता में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

6. प्रयोग (Application) : प्रत्येक शिक्षण प्रतिमान में 'प्रयोग' का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इस तत्व के अभाव में शिक्षण प्रभावशाली नहीं होता। यह 'तत्व' विद्यार्थी द्वारा सीखे गये ज्ञान को अन्य परिस्थितियों में प्रयोग करने की योग्यता प्रदान करता है।

शिक्षण-प्रतिमानों की बुनियादी धारणायें
(Basic Assumptions of Teaching Models)

शिक्षण प्रतिमान निम्नलिखित बुनियादी धारणाओं के आधार पर विकसित किये जाते हैं :

1. उचित पर्यावरण (Appropriate environment) : शिक्षण का अर्थ है- सीखने के लिये उचित पर्यावरण का निर्माण करना। शिक्षण पर्यावरण के अलग-अलग तत्व एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होते हैं। किसी एक उपागम (Approach) को सभी विद्यार्थियों पर सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकता, इसलिए ऐसे पर्यावरण के निर्माण की आवश्यकता होती है, जिसमें सभी विद्यार्थियों के लिये शिक्षण को सुविधाजनक बनाया जा सके।

2. अन्त:क्रिया (Interaction) : पर्यावरण के अन्तर्गत विषय-वस्तु, कौशल, अनुदेशनात्मक भूमिका, सामाजिक सम्बन्ध, क्रियाओं के प्रकार, भौतिक सुविधाओं आदि को लिया जाता है और ये सभी तत्व मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। ये सभी मिलकर आपस में अन्त:क्रिया करते हैं और छात्र और शिक्षक के व्यवहार पर कुछ प्रतिबंध लगा देते हैं।

3. अलग-अलग परिणाम (Different outcomes) : इन तत्वों के अलग-अलग संयोगों के कारण अलग-अलग प्रकार के पर्यावरण का निर्माण होता है और उनके परिणाम भी अलग-अलग होते हैं। शिक्षण-प्रतिमान उचित वातावरण का निर्माण करके वास्तविक व्यवहार परिणामों के लिये वांछित अधिगम अनुभवों की व्यवस्था करते हैं।

4. लक्ष्यों की प्राप्ति (Achievements of objectives) : शिक्षण तत्वों को अलग-अलग रूपों में संगठित करके अलग-अलग प्रकार के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

5. पर्यावरण का विशिष्टीकरण (Specification of environment) : शिक्षण-प्रतिमान कक्षीय शिक्षण-अधिगम के लिये विशेष पर्यावरण के निर्माण के लिये संकेत प्रदान करते हैं।

6. कोई प्रतिमान सम्पूर्ण नहीं (No perfect model) : कोई भी शिक्षण प्रतिमान अपने-आप में पूर्ण नहीं होता। हमें अपने आप को किसी एक प्रतिमान तक सीमित नहीं रखना चाहिये, चाहे वह कितना भी अच्छा और आकर्षक क्यों न हो।

7. अलग-अलग प्रकार से सीखना (Different types of learning) : सीखना या अधिगम अलग-अलग प्रकार का होता है और उनके लिये अलग-अलग प्रकार के अनुदेशन की आवश्यकता होती है। इसलिये प्रतिमान के अनेक प्रकार होते हैं।

8. अलग-अलग प्रकार के विद्यार्थी (Different types of student) : विद्यार्थी और उनकी सीखने की शैली अलग-अलग प्रकार की होती है ? अत: उन्हीं के अनुरूप शिक्षण प्रतिमान भी अलग-अलग तरह के होते हैं।

शिक्षण प्रतिमानों का महत्त्व या लाभ
(Importance or Advantages of Teaching Models)

1. विशेष लक्ष्यों की प्राप्ति (Achievement of specific objectives) : अलग-अलग विषयों में विशेष लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये विभिन्न शिक्षण-प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है।

2. प्रभावशाली शिक्षण (Effective Teaching) : शिक्षण-प्रतिमानों के प्रयोग से शिक्षण अधिक प्रभावशाली और उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सकता है।

3. शिक्षण एवं अधिगम सम्बन्ध (Teaching and learning relationship) : शिक्षण-प्रतिमान द्वारा शिक्षण और अधिगम में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

4. शोध कार्य (Research work) : शिक्षण-प्रतिमान शिक्षण की प्रकृति को जानने के लिये शोध-कार्य में सहायता देते हैं।

5. शिक्षण-सिद्धान्तों का निर्माण (Formulation of theories of teaching) : शिक्षण-प्रतिमान शिक्षण की परिकल्पना के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। शिक्षण-सिद्धान्तों के निर्माण में इनका प्रयोग उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

6. मनोवैज्ञानिक शिक्षण (Psychological Teaching) : शिक्षण में मनोवैज्ञानिक शक्तियों के प्रयोग के लिये नये शिक्षण-प्रतिमानों का आविष्कार किया जा सकता है।

महत्त्वपूर्ण शिक्षण प्रतिमान (Important Teaching Models)

1. ग्लेजर का बुनियादी शिक्षण-प्रतिमान (Glaser's Basic Teaching Model)

'बुनियादी शिक्षण प्रतिमान' का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक शिक्षण-प्रतिमानों के साथ है। इसका विकास 1962 में "रॉबर्ट ग्लेजर" द्वारा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर किया। यह शिक्षण प्रक्रिया में निर्देशन देता है। यह ऐसा सामान्य कथन है जिसके आधार पर अलग-अलग प्रतिमान तैयार किये जाते हैं। इस प्रकार इसे प्रतिमान कहा जाता है क्योंकि अनुदेशन में इसका प्रयोग अनेक प्रकार के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

बुनियादी शिक्षण प्रतिमान की अवधारणायें और तर्काधार (Assumption and Rationale of Basic Teaching Model) : ग्लेजर का 'बुनियादी शिक्षण प्रतिमान' इस आधार पर विकसित किया गया है कि प्रत्येक पाठ से विद्यार्थी को कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य प्राप्त करना होता है। अनुदेश प्रक्रिया द्वारा शिक्षक उसके प्रारम्भिक व्यवहार (Entry Behaviour) से नये ज्ञान को प्राप्त करने तक निर्देशन करता है। शिक्षण का मुख्य उद्देश्य छात्र के व्यवहार में जल्द ही वांछित परिवर्तन करना होता है। प्रतिमान के अलग-अलग चरणों द्वारा समुचित ताल-मेल शिक्षण को संगठित और उपयोगी बना देता है।

बुनियादी शिक्षण प्रतिमान के अवयव (Components of Basic Teaching Model) : ग्लेजर ने सम्पूर्ण शिक्षण-प्रक्रिया को चार बुनियादी तत्वों/अवयवों या भागों में बाँटा गया है।

ये चार तत्व निम्नलिखित है :

1. अनुदेशनात्मक लक्ष्य (Instructional Objectives)
2. पूर्वज्ञान या प्रारम्भिक व्यवहार (Entering Behaviour)
3. अनुदेशनात्मक प्रक्रियायें (Instructional Procedures)
4. निष्पादन मूल्यांकन (Performance Assessment)

1. अनुदेशनात्मक लक्ष्य (Instructional objectives) : ये वे लक्ष्य हैं जिन्हें विद्यार्थियों को अनुदेशन के एक भाग को समाप्त करने के बाद प्राप्त करना होता है। अनुदेशन के लक्ष्य व्यवहार को लेकर बनाये जाते हैं। व्यवहार विद्यार्थियों की विशेष क्रियाओं द्वारा निर्धारित किया जाता है। इन लक्ष्यों को ही निर्धारित करके शिक्षण कार्य किया जाता है। अन्त में विद्यार्थी के व्यवहार में वांछित सुधार दिखाई देने लगते है। इस प्रकार विद्यार्थी निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के योग्य हो जाता है।

2. प्रारम्भिक व्यवहार (Entering Behaviour) : अनुदेशन प्रारम्भ करने से पहले विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान अथवा प्रारम्भिक व्यवहार को जानना आवश्यक होता है। प्रारम्भिक व्यवहार शिक्षण-कार्यक्रम के निर्माण की पहली आवश्यकता है। इसमें विद्यार्थी का पूर्व-ज्ञान, बौद्धिक योग्यता, अधिगम योग्यता, अधिगम शैली और अभिप्रेरक स्थिति शामिल होते हैं। विद्यार्थी के प्रारम्भिक व्यवहार से शिक्षण-प्रक्रिया आरम्भ होती है। शिक्षण प्रारम्भ करने से पहले विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान और उनकी विशेषताओं को जानना बहुत आवश्यक है। जैसे- विद्यार्थियों को गुणा का पाठ करवाने से पहले विद्यार्थियों का जोड़ सम्बन्धी पूर्व ज्ञान जानना बहुत जरूरी है। यही उनका प्रारम्भिक व्यवहार है।

3. अनुदेशनात्मक प्रक्रियायें (Instructional Procedures) : अनुदेशन प्रक्रियायें बुनियादी प्रतिमान का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। इसमें शिक्षण-विधियां, शिक्षण-नीतियां तथा अध्यापक और विद्यार्थियों की अन्त:क्रियायें शामिल की जाती है। अनुदेशन प्रक्रियाओं में भाषण, व्याख्या, प्रश्न-पूछना, उदाहरण देना, शिक्षण-सहायक सामग्री का प्रयोग करना आदि को शामिल किया जाता है। ये प्रयोग लक्ष्यों और विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान पर आधारित होते हैं। विभिन्न विषयों के शिक्षण के लिये अलग-अलग अनुदेशन प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है।

4. निष्पादन मूल्यांकन (Performance Assessment) : इस चरण में विद्यार्थियों की उपलब्धि का मूल्यांकन किया जाता है। इसमें विद्यार्थियों का परीक्षण (Test) और निरीक्षण (Observation) किया जाता है। उन्हीं के आधार पर पता लगाया जाता है कि विद्यार्थियों ने अनुदेशन के लक्ष्यों को कहाँ तक प्राप्त किया है। इसमें विद्यार्थियों से प्रश्न

पूछकर उनका पृष्ठपोषण (Feedback) प्राप्त किया जाता है। इस चरण में अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही पृष्ठपोषण (Feedback) प्राप्त करने अपनी कमियों को जानकर उनमें सुधार कर सकते हैं।

ग्लेजर 'बुनियादी शिक्षण प्रतिमान' के बुनियादी तत्व (Glaser's Basic Teaching Model in Terms of Fundamental Elements)

इसके तत्व निम्नलिखित है :

1. उद्देश्य (Focus) : ग्लेजर के 'बुनियादी शिक्षण प्रतिमान' को समूची शिक्षण प्रक्रिया के चार बुनियादी तत्वों में स्पष्ट किया गया है :

1. अनुदेशन के लक्ष्य (Instructional Objectives)
2. प्रारम्भिक व्यवहार (Entering Behaviour)
3. अनुदेशनात्मक प्रक्रियायें (Instructional Procedures)
4. निष्पादन मूल्यांकन (Performance Assessment)

2. संरचना (Syntax) : प्रतिमान की संरचना उसके कार्य का भी वर्णन करती है। प्रतिमान की संरचना निम्नलिखित रूप से निर्धारित की गई है :

1. लक्ष्य निश्चित करना
2. प्रारम्भिक व्यवहार का निश्चय होना।
3. अनुदेशन कार्य करना।
4. अन्तिम व्यवहार निर्धारित करना।

3. प्रतिक्रिया का सिद्धान्त (Principles of reaction) : यह तत्व विद्यार्थियों की अनुक्रियाओं के प्रति अध्यापक की प्रतिक्रिया के साथ सम्बन्धित है।

4. सामाजिक प्रणाली (Social system) : इसमें अध्यापक की प्रधानता होती है। यह कक्षीय वातावरण को दर्शाता है। इसमें अध्यापक लक्ष्यों को निर्धारित करता है शिक्षण नीति का निर्णय करता है, मूल्यांकन की तकनीकों का निर्णय करता है और उन्हें क्रियान्वित करता है। अध्यापक की सभी क्रियायें विद्यार्थियों के अनुकूल होती है। विद्यार्थी अध्यापक की सभी बातों को ग्रहण करते हैं।

5. सहायक प्रणाली (Support system) : ग्लेजर के 'बुनियादी शिक्षण प्रतिमान' में लक्ष्यों तथा विद्यार्थियों के पूर्वज्ञान के आधार पर उचित शिक्षण नीतियां निर्धारित की जाती है। इसमें विद्यार्थियों के प्रारम्भिक व्यवहार और अन्तिम व्यवहार की जांच के लिये

उचित मूल्यांकन विधियां प्रदान की जाती है। उचित शिक्षण नीतियों के प्रयोग के लिये वांछित शिक्षण-अधिगम पर्यावरण और स्थितियां प्रदान करता है।

6. प्रयोग (Application) : अलग-अलग विषयों के शिक्षण तथा सभी स्तरों के विद्यार्थियों के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसमें विभिन्न शिक्षण उपागमों और नीतियों को शामिल किया जा सकता है। इसमें अतिरिक्त कार्य की जांच से प्रत्येक तत्व के लिये पृष्ठपोषण (Feedback) की व्यवस्था की जा सकती है। इसके द्वारा शिक्षण-प्रक्रिया में सुधार किया जा सकता है।

ग्लेजर के 'प्रतिमान' से स्पष्ट होता है कि शिक्षण में कई निर्णय होते हैं और कई अभ्यास कार्य करने होते हैं। इसमें अध्यापक और विद्यार्थी में वैयक्तिक सम्पर्क की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। यह की कार्यकुशलता और योग्यता पर अधिक बल देता है।

2. रिचर्ड सचमैन पूछताछ प्रशिक्षण प्रतिमान
(Richard Suchman's Inquiry Training Model)

इस प्रतिमान के प्रवर्तक 'रिचर्ड सचमैन' है। यह प्रतिमान बालक के वैयक्तिक विकास और मानसिक क्षमताओं का विकास करता है। यह प्रतिमान वैज्ञानिक विधियों पर आधारित होता है जो छात्रों को कुशलता से पृच्छा या पूछताछ (Scholarly Inquiry) के लिये प्रशिक्षित करता है। इसमें छात्रों को पूछताछ की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है, जिससे वे अनुशासित तरीके से प्रश्न पूछने के लिये प्रेरित होते हैं। इस प्रकार की पूछताछ से छात्र विषय सम्बन्धी नवीन आयामों की खोज करते हैं। इस प्रतिमान का विकास '1962' में हुआ था। "सचमैन" का विश्वास था कि बालक स्वभाव से जिज्ञासु होते हैं तथा वे अपनी जिज्ञासा की सन्तुष्टि के लिये पूछताछ (Inquiry) में आनन्द प्राप्त करते हैं। पूछताछ प्रक्रिया से बच्चों में पूछताछ कौशल का विकास होता है।

पूछताछ प्रशिक्षण प्रतिमान की बुनियादी मान्यतायें
(Basic Assumptions of Inquiry Model)

इसकी बुनियादी मान्यतायें निम्नलिखित है :

1. अस्थायी ज्ञान (Tentative knowledge) : इसमें सम्पूर्ण ज्ञान अस्थायी होता है। इसमें पहले सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाता है और उसके प्रयोग के बाद उसे रद्द कर दिया जाता है। उस सिद्धान्त के जगह अन्य सिद्धान्त ले लिया जाता है।

2. एक उत्तर नहीं (No one answer) : इसमें किसी बात का एक उत्तर नहीं होता। एक ही समस्या पर अलग-अलग व्याख्यायें लागू की जा सकती है।

3. प्रभावशाली अधिगम (Effective learning) : जब छात्र स्वतन्त्र रूप से पूछताछ प्रक्रिया में भाग लेते हैं तो अच्छी प्रकार सीख सकता है।

4. जिज्ञासु और उत्सुक (Curious and eager) : जब छात्रों कोई समस्या आती है तो वे उसे जाँचने के लिये जिज्ञासु और उत्सुक प्रवृत्ति अपनाते हैं।

5. नई नीतियों का प्रत्यक्ष शिक्षण (Direct Teaching of new strategies) इसमें पुरानी नीतियों को नई नीतियों से जोड़कर प्रत्यक्ष शिक्षण किया जा सकता है।

पूछताछ प्रशिक्षण के बुनियादी तत्व (Fundamental Elements of Inquiry Model)

इसके प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित है :

1. उद्देश्य (Focus) : इस प्रतिमान का मुख्य उद्देश्य छात्रों में ज्ञानात्मक कौशलों का विकास करना है। छात्र पूछताछ के द्वारा प्रत्ययों की तार्किक ढंग से व्याख्या करता है। इसके उपयोग द्वारा छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा होता है। छात्रों में जिज्ञासा और अभिरूचियों का विकास होता है, जिससे छात्र जटिल परिस्थितियों में समस्याओं का समाधान करने के लिये प्रेरित होते हैं।

सचमैन के अनुसार- "पूछताछ प्रशिक्षण प्रतिमान का लक्ष्य छात्रों में खोज एवं आंकड़ों के विश्लेषण में कौशल विकसित करना है जिससे वे स्वयं घटनाओं की व्याख्या कर सके तथा उनमें विभिन्न तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्ध खोज सकें एवं सत्यता का पता लगा सके।"

2. संरचना (Structure) : इस प्रतिमान की संरचना की पाँच अवस्थायें होती हैं-

1. समस्या का प्रस्तुतिकरण करना : इसमें छात्र शिक्षक के निर्देशन में समस्या का चयन करते हैं।

2. समस्या सम्बन्धी प्रयोग करना : इसमें छात्र समस्या से सम्बन्धित प्रश्न अध्यापक से पूछते हैं। इनका उत्तर शिक्षक हाँ या नहीं में देता है। ये प्रश्न कम से कम आधे घण्टे तक पूछे जाते हैं। छात्रों द्वारा प्रश्न तब तक पूछे जाते हैं जब तक वे समस्या-समाधान तक नहीं पहुँच जाते। इसमें छात्र शिक्षक से सीधे घटना के घटित होने का कारण और समस्या का हल सीधे रूप से नहीं पूछ सकते। शिक्षक छात्रों को निर्देश देता है कि वे एक समय पर, जितने चाहे प्रश्न पूछ सकते हैं और पूछताछ के समय अपने सहपाठियों से विचार-विमर्श कर सकते हैं।

3. छात्रों व शिक्षकों के समस्या समाधान के लिये प्रयास : इसमें छात्र परीक्षण करके नये तत्वों से परिचित होने के लिये आंकड़ों को इकट्ठा करते हैं, परिकल्पनाओं

(Hypothesis) बनाते हैं और उन्हीं के आधार पर कारण-कार्य सम्बन्धों (Cause-effect Relationship) की परीक्षा करता है।

4. सूचनाओं का संगठन : आँकड़ों को इकट्ठा करते समय सूचनाओं को संगठित किया जाता है। शिक्षक छात्रों से एकत्रित आंकड़ों से परिणाम निकलवाता है और उन परिणामों की व्याख्या करता है।

5. पूछताछ प्रक्रिया का विश्लेषण : इसमें छात्रों को पूछताछ प्रक्रिया का विश्लेषण करने के लिये कहा जाता है। यह निर्णय लिया जाता है कि आवश्यक सूचनायें प्राप्त हुई है या नहीं। शिक्षक पूर्ण प्रक्रिया का मूल्यांकन करता है और उपयुक्त निर्णय लेकर निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करता है।

3. सामाजिक प्रणाली (Social system) : शिक्षक इस प्रतिमान में नेतृत्व प्रदान करता है, छात्रों को पूछताछ के लिये प्रेरित करता है और प्राप्त निष्कर्षों के परीक्षण के लिये अवसर देता है। इसमें छात्र व शिक्षक दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक व छात्रों के बीच आपसी सहयोग होता है।

4. सहायक प्रणाली (Support system) : इस प्रतिमान में मूल्यांकन के लिये विशेष रूप से प्रयोगात्मक परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता है। इससे पता चलता है कि छात्र समस्या समाधान द्वारा अपना कार्य कितने और किस सीमा तक प्रभावशाली तरीके से करता है।

5. प्रयोग (Application) : इसे प्राकृतिक विज्ञान के प्रशिक्षण के लिये विकसित किया गया था। परन्तु अब इसका प्रयोग सभी विषयों के लिये किया जाने लगा। इसके द्वारा छात्रों में रचनात्मकता विकसित किया जा सकता है।

विशेषतायें-

इसकी निम्नलिखित विशेषतायें हैं :

1. यह वैज्ञानिक अध्ययनों में अधिक उपयोगी होता है।
2. इससे छात्रों में प्रश्न-पूछने की प्रवृत्ति का विकास होता है।
3. इसके द्वारा छात्रों को स्पष्ट और व्यवहारिक ज्ञान दिया जा सकता है।
4. छात्रों में जिज्ञासु प्रवृत्ति का विकास होता है।
5. प्रत्येक शैक्षिक परिस्थिति में इस प्रतिमान का प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रतिमान का प्रयोग भौतिक शिक्षण के लिये किया गया था। लेकिन वर्तमान में इस प्रतिमान का प्रयोग अन्य विषयों के शिक्षण में भी किया जाने लगा। यह प्रतिमान सभी

विषयों में उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका प्रयोग समस्यात्मक परिस्थितियों में किया जाता है। यह प्रतिमान छात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में उपयोगी सिद्ध हुआ है।

3. ब्रूनर का संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान
(Bruner's Concept Attainment Model or C.A.M.)

"संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान" सूचना सम्पदान प्रतिमानों (Information Processing Models) के वर्ग में आता है। इस प्रतिमान का विकास '1956' में जे. एस. ब्रूनर (J.S. Bruner), जे. गुड्रो (J. Goodrow) तथा जार्ज आस्टिन (Geogre Austine) द्वारा किया गया था। इसे सामान्यत: ब्रूनर का संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान (Bruner's Concept Attainment Model) कहा जाता है। यह प्रतिमान विद्यार्थियों को संप्रत्ययों की शिक्षा देने के लिये प्रयोग किया जाता है। इस प्रतिमान का प्रयोग नवीन प्रत्ययों (Concept) का स्पष्टीकरण और व्याख्या करने के लिये प्रभावशाली तरीके से किया जाता है।

इसमें दो या अधिक वस्तुओं के बीच समानता तथा असमानता का बोध कराते हुये, विभिन्न प्रकार के माध्यमों से तथ्यों का एकीकरण करते हुये प्रक्रिया को पूर्ण किया जाता है।

इस प्रतिमान का उद्देश्य मुख्यत: छात्रों में आगमन तर्क की योग्यता का विकास करना तथा छात्रों में संप्रत्ययों को विकसित करना हैं।

ब्रूनर तथा उनके सहयोगियों की यह धारणा है कि मानव जिस वातावरण में रहता है, उसमें इतनी विविधतायें और जटिलतायें होती है कि मनुष्य वर्गीकरण के बिना इसे समझ नहीं सकता। प्रत्येक मनुष्य अपने वातावरण में पाई जाने वाली वस्तुओं को समझने का प्रयास करता है तथा वस्तुओं का वर्गीकरण करता है। वस्तुओं के इस प्रकार के वर्गीकरण के कारण उनमें संप्रत्यय विकसित होते हैं। ये संप्रत्यय स्वाभाविक रूप से विकसित होते हैं। सही संप्रत्ययों के विकास के लिये प्रशिक्षण आवश्यक होता है। यह प्रतिमान संप्रत्यय विकसित करने का अच्छा साधन माना जाता है।

संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान की बुनियादी मान्यतायें
(Basic Assumptions of Concept Attainment Model)

संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान की बुनियादी मान्यतायें निम्नलिखित है-

1. संप्रत्यय निर्माण की क्षमता (Capacity of concept formation) : इसके द्वारा व्यक्ति में संप्रत्यय निर्माण करने की क्षमता विकसित होती है। हमारे पर्यावरण में अनेक वस्तुओं का समावेश होता है। यदि हम उन वस्तुओं में भेद न कर सके, उन्हें अलग-अलग भागों में बाँट न सके और संप्रत्ययों का निर्माण न कर सकें तो इससे पर्यावरण में

समायोजन नहीं होगा। इस संप्रत्यय द्वारा व्यक्ति पर्यावरण के साथ समायोजित होकर संप्रत्यय निर्माण कर सकता है।

2. कठिनाईयों को कम करना (Reducing complexities) : वस्तुओं का वर्गीकरण करने से पर्यावरण की जटिलतायें कम हो जाती है।

3. संप्रत्यय निर्धारित करना (Determining the concept) : संप्रत्यय उपलब्धि में संप्रत्यय पहले ही निश्चित कर लिये जाते है। इसके बाद केवल घटकों को ही निश्चित करना होता है।

4. समान नीतियां (Same strategies) : संप्रत्यय निर्माण अथवा वर्गीकरण में समान नीतियाँ होती है। उन्हें एक ही विचार प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। चाहे वर्गों की सामग्री में सामग्री भिन्नता क्यों ही न हो।

5. सामान्य विशेषतायें : संप्रत्यय निर्माण में वातावरण की सामान्य विशेषताओं अथवा गुणों का पहले से ही निर्धारण कर लिया जाता है।

संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान के तत्व (Elements of Concept Attainment Model)

संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान के तत्व निम्नलिखित है–

1. उद्देश्य (Focus) : इस प्रतिमान का मुख्य उद्देश्य छात्रों में आगमन तर्क (Inductive Reasoning) शक्ति का विकास करना है। यह मनोवैज्ञानिक है। इसमें छात्र अलग-अलग वस्तुओं, घटनाओं और व्यक्तियों को वर्गीकृत कर सकते हैं। उन्हें उनके चिंतन के आधार पर ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।

ब्रूनर तथा उसके सहयोगियों ने निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित किया :

1. छात्रों को संप्रत्ययों की प्रकृति के विषय में ज्ञान देना ताकि वे वस्तुओं को उनके गुणों और विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत कर सकें।
2. छात्रों को इस योग्य बनाना कि उनमें सही संप्रत्ययों का निर्माण हो।
3. छात्रों में विशिष्ट संप्रत्ययों का विकास करना।
4. छात्रों में चिन्तन क्षमताओं का विकास करना।

2. संरचना (Syntax) : संरचना में कौशलों का विकास चार चरणों में किया जाता है :

(i) आंकड़ों का संकलन : छात्रों के सामने किसी घटना या व्यक्ति से सम्बन्धित क प्रकार के आंकड़ें प्रस्तुत किये जाते है। छात्र इन आंकड़ों की सहायता से अनेक प्रत्ययों का बिकास करते है। इसमें छात्रों को अनेक सूचनायें प्रदान की जाती है।

(ii) नीति विश्लेषण : इसमें 'सामान्य से विशिष्ट' सूत्र के द्वारा छात्र प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करते हैं।

(iii) प्रस्तुतीकरण : इसमें छात्र अपनी आयु और अनुभव के आधार पर प्रत्ययों का विश्लेषण करते हैं और इस विश्लेषण को लिखित रूप में प्रस्तुत करते हैं।

(iv) अभ्यास : इसमें छात्रों द्वारा सीखे हुये प्रत्ययों का उपयोग, अभ्यास, व्याख्या करना आदि शामिल होते हैं।

3. सामाजिक प्रणाली (Social system) : इसमें अध्यापक छात्रों को प्रेरित करते हैं और उनका मार्गदर्शन करते हैं। शिक्षक का इस प्रतिमान में सबसे प्रमुख स्थान है क्योंकि वही छात्रों के सामने आंकड़े प्रस्तुत करता है, योजना बनवाता है और छात्रों को निर्देश देता है। अध्यापक का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को प्रत्यय निर्माण में सहायता देना।

4. सहायक/मूल्यांकन प्रणाली (Support system) : इसमें निबन्धात्मक और वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की सहायता ली जाती है। इनमें मूल्यांकन, सुधार तथा परिवर्तन के द्वारा नवीन प्रत्ययों के विषय में सूचना दी जाती है।

5. प्रयोग (Application) : यह 'आगमनात्मक विधि' से संप्रत्ययों की शिक्षा देने में बहुत उपयोगी है। इसके द्वारा कठिन विषयों के कठिन संप्रत्ययों को आसानी से सीखा जा सकता है। कक्षा में भाषा और गणित के शिक्षण के लिये इनका प्रयोग अत्यंत उपयोगी है। इसके द्वारा गणित के बुनियादी संप्रत्यय कुशलतापूर्वक सीखे जा सकते हैं। यह भाषा शिक्षण, व्याकरण और शब्द-रचनाओं में भी बहुत उपयोगी है। दूरदर्शन शिक्षण में इस प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है।

संप्रत्यय उपलब्धि प्रतिमान की विशेषतायें
(Characteristics of Concept Attainment Model)

1. उदाहरणों के आधार पर जब प्रत्ययों को सीखने और समझने का प्रयास किया जाता है तो तब यह प्रतिमान अधिक उपयोगी होता है।
2. सामान्यीकरण को बढ़ाने के लिये, तथ्यों का ज्ञान देने के लिये, 'क्यों' का उत्तर देने के लिये और कारण बताने के लिये इस प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है।
3. इसमें गणित और विज्ञान के सिद्धान्तों को आसानी से व्यक्त किया जा सकता है।
4. भाषा शिक्षण अधिक उपयोगी है।
5. जिन विषयों में प्रत्यय निर्माण के अधिक अवसर होते हैं, वहां यह प्रतिमान अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

इस प्रतिमान का प्रयोग सभी विषयों के शिक्षण में सफल पाया गया है। यह प्रतिमान सभी स्तरों पर उपयोगी सिद्ध हुआ है। छोटे बच्चों के लिये यह प्रतिमान अधिक उपयोगी है। इसमें सरल उदाहरणों का प्रयोग करके बच्चों को आसानी से विषय को समझाया जा सकता है। परन्तु नवीन ज्ञान देने के लिये इसका प्रयोग नहीं होता।

4. ब्लूम का स्वामित्मक अधिगम प्रतिमान (Bloom's Mastery Learning Model)

मास्टरी अधिगम प्रतमान का निर्माण जॉन बी. कैरोल और बी. एस. ब्लूम (John B. Carroll and B.S. Bloom) ने किया। मास्टरी अधिगम स्कूल विषयों में निंष्पादन (Performance) का संतोषजनक स्तर प्राप्त करने में सहायता करता है। मास्टरी अधिगम विकसित करने और पाठ्यक्रम के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये इस प्रतिमान का उपयोग किया जाता है। इस प्रतिमान में निम्नलिखित शामिल है-

1. कक्षा-शिक्षण (Classroom Teaching)
2. पुनर्बलन प्रविधियां (Reinforcement Techniques)
3. उपचारात्मक अनुदेशन (Remedial Instruction)
4. व्यक्तिगत अधिगम युक्तियाँ (Individual learning devices)

मास्टरी अधिगम अभिरूचि (Aptitude) के अर्थ पर आधारित है। जिस व्यक्ति में जितनी अधिक अभिरूचि होगी, उतना अधिक उसका अधिगम होगा और उसे अधिक सीखेगा।

मास्टरी अधिगम प्रतिमान समूह आधारित अनुदेशन है। इसके बाद उपचारात्मक प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। कमजोर छात्रों को अतिरिक्त समय दिया जाता है।

स्वामित्मक अधिगम प्रतिमान तत्व (Elements of Mastery Learning Model)

1. केन्द्रबिन्दु (Focus) : ब्लूम के मास्टरी अधिगम प्रतिमान का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को उनकी गति, विषय में रूचि और पूर्व-ज्ञान के अनुरूप विषय में मास्टरी प्रदान करना। इस प्रतिमान का मुख्य उद्देश्य स्कूल विषयों में निष्पादन (performance) का संतोषजनक स्तर प्राप्त करना।

ब्लूम व उसके साथी यह निश्चित नहीं कर पाये कि मास्टरी अधिगम आम कक्षा में आसानी से और साधारण तरीके से प्रयोग में लाया जा सकता है या नहीं। उनका विश्वास है कि मास्टरी अधिगम को पारम्परिक समूह अनुदेशन प्रक्रियायें (Traditional Group Instructions) में संशोधन करके इसे लागू किया जा सकता है। प्रत्ययात्मक मूल्यांकन

(Formative Evaluation) के परिमाणों के अनुसार यह सुनिश्चित करता है कि कुछ विद्यार्थियों के पास अधिक समय होता है और वे अधिक उपयुक्त अनुदेशन प्राप्त करते हैं।

2. संरचना (Syntax) : यह व्यक्तिगत अनुदेशनात्मक कार्यक्रम है। इसमें पाठ्य-विवरण के सारांश को महत्त्व दिया जाता है। प्रणाली विश्लेषण प्रक्रियाओं द्वारा पाठ्य-विवरण के सारांश को अधिक विकसित करने के लिये इसका विकास किया गया है। ऐसे कार्यक्रम के निम्नलिखित सोपान है-

(*i*) **लक्ष्य :** योजना बनाने वाला विद्यार्थी के विश्वासों और लक्ष्यों के बारे में सोचता है।

(*ii*) **अधिगम प्रक्रिया :** अधिगम प्रक्रिया और विद्यार्थी सम्बन्धित वातावरण पर ध्यान दिया जाता है।

(*iii*) **व्यवहारत्मक लक्ष्यों का संगठन :** व्यवहारात्मक लक्ष्यों को योजनाबद्ध तरीके से संगठित किया जाता है।

(*iv*) **सामग्री का विकास :** अधिगम सामग्री को अधिक विकसित किया जाता है।

(*v*) **कारकों की समीपता :** इसमें छात्र, अध्यापक और विषय-वस्तु आदि महत्वपूर्ण कारकों को समीप लाया जाता है।

(*vi*) **छात्र की प्रगति :** उचित पृष्ठपोषण (feed back) और संगठित प्रणाली द्वारा छात्रों की प्रगति को ध्यान में रखा जा सकता है।

3. सामाजिक प्रणाली (Social system) : शिक्षण प्रतिमान की सामाजिक प्रणाली हमें छात्रों और अध्यापकों के बीच अनुदेशन के बारे में सूचित करती है। इसमें अध्यापक व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुये विषय पर मास्टरी प्राप्त करने में छात्रों की सहायता करता है। वह यह कार्य विषय-वस्तु को छोटी इकाइयों में बाँटकर कर सकता है। वह अपने छात्रों की सफलता और असफलता दोनों के लिये उत्तरदायी होता है।

4. सहायक प्रणाली (Support system) : इस प्रतिमान में निदानात्मक परीक्षणों पर बल दिया जाता है। यदि लक्ष्य स्पष्ट हो और शिक्षण निर्धारित स्तरों के अनुकूल हो तो मास्टरी अधिगम को उचित ढंग से कार्यान्वित किया जा सकता है। इसमें प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा ही मूल्यांकन किया जाना चाहिये। मूल्यांकन की प्रत्येक इकाई में निदानात्मक परीक्षण होते हैं। ताकि छात्रों की प्राप्ति को आंका जा सके।

मास्टरी अधिगम प्रतिमान की उपयोगिता (Utility of Mastery Learning Model)

मास्टरी अधिगम प्रतिमान की उपयोगितायें निम्नलिखित है-

1. प्रत्येक व्यक्ति इसके प्रयोग से अपनी स्वयं की गति से सीख सकता है और कार्य कर सकता है।
2. स्वयं पहल (Self-Initiation) के विकास में यह प्रतिमान सहायक है।
3. समस्या समाधान के विकास में यह अत्यन्त सहायक है।
4. इसके द्वारा आत्म-मूल्यांकन (Self-Evaluation) किया जा सकता है।
5. यह अधिगम या सीखने के लिये प्रोत्साहित करता है।
6. यह प्रतिमान धीमी गति से सीखने वालों में आत्मविश्वास पैदा करता है।
7. यह प्रतिमान स्कूल-विषयों में निष्पादन (Performance) में संतोषजनक स्तर प्राप्त करने में सहायता करता है।

शिक्षण-प्रतिमानों का उपयोग एवं महत्त्व (Importance and Utility of Teaching Models)

शिक्षण प्रतिमान, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन प्रतिमानों का महत्त्व निम्नलिखित प्रकार है-

1. इन प्रतिमानों द्वारा शिक्षण व्यवस्था को उन्नत स्तर का बनाया जा सकता है।
2. इनके द्वारा कक्षा-शिक्षण में सुधार लाया जा सकता है और विद्यार्थियों के लिये उचित वातावरण का निर्माण करके उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन किया जा सकता है।
3. अलग-अलग विषयों के लिये उनकी आवश्यकतानुसार अलग-अलग प्रतिमानों का प्रयोग किया जा सकता है।
4. शिक्षण-प्रतिमानों के आधार पर अलग-अलग शिक्षण सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया जा सकता है।
5. शिक्षा की मूल्यांकन प्रणाली का विकास किया जा सकता है।
6. शिक्षा-प्रतिमान छात्रों के ज्ञानात्मक, व्यावहारिक और व्यक्तिगत विकास की सम्भावनाओं को जन्म देते हैं।
7. शिक्षण-प्रतिमान शिक्षक को शिक्षण प्रक्रिया में अनुसंधान के लिये विशाल और नये क्षेत्र प्रदान करते हैं।
8. शिक्षण के क्षेत्र में विशिष्टीकरण की प्रक्रिया को बल देते हैं।
9. इनके द्वारा शिक्षण में परिवर्तन और सुधार लाकर शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

5

शिक्षण की नीतियाँ
(Strategies of Teaching)

शैक्षिक तकनीकी परम्परागत शिक्षण कला के विचार को वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है। इन शैक्षिक प्रभावों को अलग-अलग प्रकार की नीतियों विधियों और युक्तियों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। इन विधियों और नीतियों द्वारा शिक्षण को विकसित करके शिक्षण-प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इस प्रकार यह शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये हमेशा अग्रसर रहती हैं।

शिक्षण नीतियों के अर्थ, परिभाषा और विशेषतायें (Teaching Strategies, Meaning, Definitions and Characteristics)

अर्थ (Meaning) : शिक्षण नीतियाँ दो शब्दों से मिलकर बना है-शिक्षण + नीतियाँ (Teaching and strategies) शिक्षण एक अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया है, जो कक्षा में वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये शिक्षक और छात्र द्वारा सम्पन्न की जाती है। नीतियों का अर्थ है- योजना, कौशल, नीति या चतुराई।

कॉलिन इंगलिश जैम शब्द कोश (The Collin English Gem Dictionary 1988) के अनुसार "नीति का अभिप्राय युद्ध कला तथा युद्ध कौशल से है।"

इसको अधिकतर युद्ध में सेना को उचित स्थान पर खड़े करने की तथा लड़ने की कला के सन्दर्भ में प्रयोग किया जाता है।

युद्ध विज्ञान की 'नीति' शब्द को शैक्षिक तकनीकि में लिया गया है। यहाँ नीतियों का अर्थ है ऐसी कौशलपूर्ण व्यवस्था जिन्हें कक्षागत परिस्थितियों में शिक्षक अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये तथा छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने के लिये करता है।

परिभाषायें (Definitions) :

शिक्षण-नीतियों की परिभाषायें निम्नलिखित हैं-

1. स्ट्रेसर के अनुसार (According to strasser) : "शिक्षण नीतियाँ वे योजनायें होती हैं। जिसमें शिक्षण के उद्देश्यों, छात्रों का व्यवहार परिवर्तन, पाठ्य-वस्तु, कार्य-विश्लेषण, अधिगम-अनुभव और छात्रों के पृष्ठभूमि आदि को महत्त्व दिया जाता है।"

("Teaching strategy is that plan which lays special emphasise on teaching objectives, behavioural changes, content, task, analysis, learning experiences and back ground factors of students.")

2. स्टोन्स तथा मॉरिस के अनुसार (According to stones and morris) : "शिक्षण नीति पाठ की एक सामान्य योजना है, जिसमें वांछित व्यवहार परिवर्तन की संरचना अनुदेशन के उद्देश्यों के रूप में शामिल होते हैं। साथ ही इसमें युक्तियों की योजनायें भी तैयार की जाती है।"

("Teaching strategy is a generalized plan for a lesson which includes desired learner behaviour in terms of goals, Instructions and an outline of planned tactics necessary to Implement strategy.")

3. डेविस के अनुसार (According to Davies) : "नीतियाँ शिक्षण की व्यापक विधियाँ हैं।"

("Strategies are broad methods of teaching.")

शिक्षण आरम्भ करने से पहले ही शिक्षक कक्षा के लिये उपयुक्त शिक्षण नीतियों का चयन कर लेता है। शिक्षण नीतियों में अनेक कारक होते है, जो शिक्षण-प्रक्रिया को सशक्त बनाते हैं और शिक्षण की प्रभावशीलता को बढ़ाते हैं।

शिक्षण नीतियों की विशेषतायें
(Characteristics of Teaching Strategies)

शिक्षण नीतियों की विशेषतायें निम्नलिखित है-

1. शिक्षण नीतियाँ, शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होती हैं।
2. छात्रों के व्यवहार परिवर्तन में इनका मुख्य रूप से योगदान होता है।
3. ये शिक्षक की कार्यक्षमता को बढ़ाती हैं और उनके शिक्षण कौशल का विकास होता हैं।
4. ये शिक्षण प्रक्रिया को सार्थक और क्रमबद्ध बनाती है।
5. ये शिक्षण व शिक्षक के कार्य का विश्लेषण और उनकी संरचना अच्छी प्रकार करते हैं।
6. ये शिक्षक की शिक्षण में रूचि को बढ़ाती हैं।
7. शिक्षण-नीतियों में शिक्षा-दर्शन, अधिगम-सिद्धान्त, पृष्ठपोषण आदि तत्व शामिल होते हैं।
8. इनके द्वारा बुद्धि और स्पष्ट-चिन्तन के प्रत्यय का विकास होता हैं।
9. ये शिक्षण-नीतियों को उन्नत बनाती है और वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है।
10. शिक्षण-नीतियों में शिक्षक अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकता है।

विभिन्न प्रकार की शिक्षण-नीतियाँ
(Various Types of Teaching Strategies)

शिक्षण में अनेक प्रकार की शिक्षण नीतियों का प्रयोग किया जाता है। ये शिक्षण नीतियाँ शिक्षण को अधिक रूचिकर बनाते। हम आगे कुछ शिक्षण नीतियों के विषय में पढेगें।

1. अनुरूपण या अनुरूपित शिक्षण (Simulation and Simulated Teaching) : अनुरूपण या अनुरूपित एक प्रकार की शिक्षक प्रशिक्षण विधि हैं। इस विधि का प्रयोग शिक्षक व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये किया जाता है। इस प्रकार के शिक्षण के लिये अनेक नामों का प्रयोग किया जाता है। जैसे-रोल प्लेइंग (Role Playing), पायलट ट्रैनिंग (Pilot Training), कृत्रिम प्रशिक्षण (Artificial Training), प्रयोगशाला विधि (Laboratory Method), अनुकरणीय सामाजिक कौशल प्रशिक्षण (Simulated Social Skill Training) आदि।

अनुकरण शिक्षण का प्रयोग कक्षा-शिक्षण के अभ्यास से पहले किया जाता है। छात्राध्यापक इस विधि द्वारा शिक्षक और विद्यार्थियों दोनों का कार्य करता है। कक्षा में एक छात्र अध्यापक बनता है और शेष सभी छात्र विद्यार्थियों की भूमिका निभाते हैं। इस विधि में भी सूक्ष्म-शिक्षण की तरह छोटे प्रकरण (small topic) पर शिक्षण किया जाता है। इसमें भी शिक्षण समय 10 या 15 मिनट होता है। इस शिक्षण के बाद विषय पर वाद-विवाद होता है। इसके बाद अन्य छात्र अपनी-अपनी बारी से अध्यापक की भूमिका निभाते हैं। 10 या 15 मिनट का शिक्षण और वाद-विवाद छात्राध्यापक के लिये पृष्ठपोषण (feed back) का काम करते हैं। अनुरूपित शिक्षण में व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं तथा कक्षीय प्रबन्ध को अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। सन् 1968 में क्रूकशैंक (Cruickshank) ने इस विधि का विकास किया।

परिभाषायें (Definition)

1. थॉमस एवम् डीमर का विचार (View of Thomas and Deemer) : यथार्थ के बिना यथार्थ का सार प्राप्त करना 'अनुरूपित शिक्षण' है।

(To simulate is to obtain the essence of, without the reality)

2. फिंक का विचार (Fink's view) : अनुरूपित शिक्षण यथार्थ का नियंत्रित निरूपण है।

(Simulation is the controlled representation of reality)

3. वैबस्टर शब्द कोश (Webster's Dictionary) : वैबस्टर के नये अन्तर्राट्रीय शब्द कोश में simulation की परिभाषा इस प्रकार दी गई है।

"आभास देना" (Giving the appearance or effect of have characteristics of)

4. टैनसे का विचार (Tansey's view) : "अनुरूपित शिक्षण में वे सभी क्रियायें शामिल होती है, जो कृत्रिम पर्यावरण का निर्माण करती हैं या उनमें भाग लेने वालों को कृत्रिम अनुभव प्रदान करती हैं।"

"Simulation is the all-inclusive term which contains those activities which produce artificial environments or which provide artificial experiences for the participants."

अनुरूपित शिक्षण को अभिनय विधि या भूमिका निर्वाह (Role-Palying) विधि कहा जाता है। यह विधि अधिगम अनुभव प्रयोगशाला की स्थितियों के समान अनुरूपित स्थिति में गठित किया जाता है। अनुरूपित शिक्षण संवेदनशीलता के प्रशिक्षण, सामाजिक-नाटक भूमिका-निर्वाह तथा मनो-नाटक (Psycho-drama) का आधार है।

अनुरूपण शिक्षण के प्रकार (Types of Simulation)

हॉरमन के अनुसार अनुरूपण शिक्षण के निम्नलिखित प्रकार है-

1. पहचान अनुरूपण (Identity simulation) : इसमें पहचान सम्बन्धी यथार्थवत् शिक्षण में मॉडल के रूप में वास्तविक स्थिति का प्रयोग किया जाता है।

2. प्रतिरूपित अनुकरण (Replication simulation) : इसमें शिक्षण के क्रियात्मक मॉडल को उसके सामान्य वातावरण में प्रयोग किया जाता है।

3. प्रयोगशालीय अनुरूपण (Laboratory simulation) : यह अनुरूपण शिक्षण प्रयोगशाला में प्रयोग किया जाता है और उसमें वास्तविक विधि के तत्वों को प्रकट किया जाता है।

4. कम्प्यूटर अनुरूपण (Computer simulation) : इसमें अनुरूपण शिक्षण का प्रयोग कम्प्यूटर द्वारा किया जाता है।

5. विश्लेषणात्मक अनुरूपण (Analytical simulation) : इसमें विश्लेषणात्मक साधनों द्वारा समाधान प्राप्त करने के लिये गणितीय-मॉडलों का प्रयोग किया जाता है।

अनुरूपित शिक्षण की मान्यतायें (Assumptions of simulation Teaching)

अनुरूपित शिक्षण की मान्यतायें निम्नलिखित है-

1. अध्यापक व्यवहार में सुधार (Teacher behaviour is modifiable) : पृष्ठपोषण (feedback) द्वारा अध्यापक व्यवहार में सुधार किया जा सकता है।

2. अध्यापक व्यवहार के नमूने आवश्यक है (Patterns of teacher behaviour are essential) : दूसरी मुख्य मान्यता के अनुसार निपुण शिक्षण के लिये अध्यापक व्यवहार के कुछ प्रतिमान (model) प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक है। निरीक्षक ऐसे व्यवहार प्रतिमान को पहचानता है और अध्यापक उनका अभ्यास करता है।

3. अध्यापक व्यवहार की अपनी व्यवहार संरचना (Teacher behaviour has taxonomy) : अध्यापक-व्यवहार की अपनी व्यवहार-संरचना (Taxonomy) है। कार्ल ओपनशॉ (karl openshave) और अन्य विद्वानों ने अध्यापक व्यवहार की संरचना को अनुरूपित तकनीक द्वारा इस प्रकार विकसित किया है-

1. स्रोत आयाम (Source dimension)
2. निर्देशन आयाम (Direction dimension)
3. कार्य आयाम (Function dimension)
4. चिन्ह आयाम (Sign dimension)

4. सामाजिक कौशलों का विकास (Social skills are developed) : अन्तिम मान्यता अनुसार समूह में अनुकरण तथा अभ्यास द्वारा सामाजिक कौशलों को विकसित किया जा सकता है। समूह में सभी सदस्यों को शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये व्यवहार पर नियन्त्रण रखना और उसे विकसित करने के अवसर मिलते हैं।

अनुरूपित शिक्षण के लाभ
(Advantages of Simulated Teaching)

1. शिक्षण समस्याओं का विश्लेषण (Analysis of Teaching Problems) : इसमें अध्यापक और छात्र दोनों को शिक्षण समस्याओं का अध्ययन, समाधान और विश्लेषण करने के अवसर प्राप्त होते हैं।

2. अभिप्रेरणा (Motivation) : इसके द्वारा छात्रों में अभिप्रेरणा उत्पन्न होती है। अभिप्रेरणा द्वारा व्यक्ति अनेक समस्याओं को स्वयं हल कर सकता है। अभिप्रेरणा द्वारा विषय में नवीनता आ जाती है। विषय से सम्बन्धित कठिनाईओं को आसानी से हल किया जा सकता है।

3. शिक्षण में आत्मविश्वास (Confidence in Teaching) : अनुरूपित शिक्षण द्वारा अध्यापक के शिक्षण कार्य में आत्मविश्वास पैदा होता है। अध्यापक द्वारा स्वयं के व्यक्तित्व को सुधारने के अनेक अवसर प्राप्त होते हैं।

4. रोचक (Intersting) : अनुरूपित शिक्षण विद्यार्थियों के लिये रोचक और आनन्दपूर्ण होता है।

5. **कक्षीय व्यवहार का अनुसरण** (Acquisition of class room manners) : यह विद्यार्थियों की कक्षीय व्यवहार का अनुसरण करने में सहायता करता है। यह विद्यार्थियों को सामाजिक कौशल के विकास में सहायता करता है।

6. **निर्णय लेने की योग्यता** (Ability to make decision) : इस योग्यता द्वारा छात्रों में जटिल परिस्थितियों का सामना करके समस्याओं को हल करने की योग्यता उत्पन्न होती है। जिससे छात्रों में स्वयं निर्णय लेने की योग्यता का विकास होता है।

7. **सूक्ष्म शिक्षण से उत्तम अनुरूपण** (Better simulation with micro teaching) : यह विधि सूक्ष्म शिक्षण विधि से अधिक रोचक और प्रभावशाली तरीके के कार्य करती है। इस प्रकार दोनों में गहन सम्बन्ध होता हैं।

8. **छात्र-अध्यापक के अनेक भूमिकायें** (Different roles of student-teacher) : इसमें छात्र-अध्यापक दोनों ही अनेक प्रकार की भूमिकायें निभाते हैं। जैसे- छात्र-अध्यापक एक अध्यापक, छात्र और निरीक्षक सभी की भूमिका निभाता है।

अनुरूपित शिक्षण की समस्यायें व दोष
(Limitations/Defects of Simulation)

1. अनुरूपित शिक्षण द्वारा अध्यापकों को प्रशिक्षण देने में अधिक समय लगता है।
2. यह विधि छोटे बच्चों के लिये उपयोगी नहीं हैं।
3. निरीक्षक के भूमिका निभाते हुये छात्र कई बार गलत रिकार्डिंग कर लेते हैं।
4. अध्यापक द्वारा कई बार गलत आंकड़ों का संग्रह कर लिया जाता है।
5. अनुरूपित शिक्षण को प्रयोग में लाने के लिये अधिक तैयारी की आवश्यकता होती हैं।

भाषण विधि
(Lecture Method)

भाषण विधि शिक्षक-केन्द्रित विधि है। अर्थात् 'बोल कर पढ़ाना' ही भाषण विधि है। इस विधि का प्रयोग सभी स्तर के बालकों व सभी कक्षाओं में किया जा सकता है। परन्तु इस विधि की सफलता और असफलता शिक्षक के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। यह विधि माध्यमिक व महाविद्यालय स्तर पर अधिक उपयोगी होती है।

जेमज एम. ली. (James. M. Lee) के अनुसार, "अभिभाषण ऐसी शिक्षण विधि है जिसमें अध्यापक किसी विशेष विषय पर ध्यानपूर्वक पूर्व नियोजित वक्तव्य देता है।"

(The lecture is a pedagogical method whereby the teacher formally delivers a carefully planned expository address on some particular topic or problem.)

भाषण विधि की विशेषतायें
(Characteristics of Lecture Method)

भाषण विधि की विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. विद्यार्थियों को प्रेरित करना (To motivate the students) : अध्यापक का कक्षा में पहला कार्य विद्यार्थियों को विषय के लिये प्रेरित करना। विषय के साथ सम्बन्धित घटनाओं, तथ्यों, आन्दोलनों या किसी प्रसिद्ध महापुरूष की उपलब्धि को सरल तरीके से व्यक्त करके विद्यार्थियों को प्रेरित करना इससे विद्यार्थियों में रूचि उत्पन्न होगी तथा उन्हें प्रेरणा मिलेगी।

2. धारणाओं को स्पष्ट करना (To clarify the concepts) : विद्यार्थियों को विषय से सम्बन्धित तथ्यों, धारणाओं, अर्थ और उनका महत्त्व स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि उनके सम्बन्ध में विद्यार्थियों के सामने तथ्यों और धारणों को स्पष्ट न किया जाये तो विद्यार्थी उन्हें बिना समझे पुस्तक से याद कर लेगें और उनके प्रति अनुचित धारणा बना लेगें। अत: शिक्षकों को ऐसी धारणाओं को स्पष्ट करने के लिये भाषण विधि का प्रयोग करना चाहिये।

3. अतिरिक्त विषय वस्तु प्रदान करना (To provide extra material) : पाठ्य-पुस्तकों में विषय-वस्तु से सम्बन्धित सम्पूर्ण सामग्री नहीं होती। भाषण-विधि द्वारा विद्यार्थियों के सामने विषय-वस्तु से सम्बन्धित जानकारी विस्तृत रूप से दी जा सकती है।

4. गृहकार्य या परियोजना कार्य देना (To give homework or assignments) : विद्यार्थियों को गृहकार्य या परियोजना कार्य देने से पहले भाषण-विधि द्वारा विषय को अच्छी प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

भाषण विधि के लाभ
(Advantages of Lecture Method)

1. प्रतिभाशाली छात्रों के लिये लाभदाय (Beneficial for Intelligent Students) : भाषण विधि द्वारा पाठ्य-पुस्तकों से अतिरिक्त ज्ञान भी दिया जाता है। यह विधि शिक्षक केन्द्रित होती है। अत: यह विधि प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिये अधिक उपयोगी है।

2. समय तथा धन की बचत (Time and money saving) : इसमें समय और धन दोनों की बचत होती है। क्योंकि एक ही समय में एक ही स्थान पर बिना किसी शिक्षण सामग्री और प्रयोगशाला के बिना प्रयोग द्वारा भाषण दिया जा सकता है।

3. उपविषय को रोचक बनाना (To make sub-topic Intersting) : जो शब्द अध्यापक द्वारा अपने भाषण में प्रयोग किये जाते हैं। वे अधिक प्रभावशाली होते हैं। शिक्षक को विद्यार्थियों के चेहरे के हाव-भाव द्वारा ज्ञात हो जाता है कि वे विषय में रूचि

ले रहे हैं या नहीं। यदि विद्यार्थी भाषण के दौरान सुस्त दिखाई दे रहे है तो अध्यापक बीच-बीच में हास्य-विनोद का प्रयोग करता है। क्योंकि इसमें अध्यापक और छात्र आमने-सामने होते हैं।

4. शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच सीधा सम्बन्ध (Direct contact between the teacher and students) : इसमें शिक्षक विद्यार्थियों के बीच सीधा सम्बन्ध होता है। इसमें विद्यार्थी चेतन रहते है। जिसके कारण वे अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

5. एकाग्रता (Concentration) : इसमें विद्यार्थियों एकाग्र शक्ति का विकास होता है। शिक्षक द्वारा भाषण देने पर छात्र उसे ध्यानपूर्वक सुनते हैं क्योंकि उन्हें पता होता हैं कि यदि वे भाषण की कोई महत्त्वपूर्ण बात भूल गये तो वे उपविषय को अच्छी प्रकार समझ नहीं पायेगें।

6. सामयिक विषय के लिये लाभदायक (Useful to current affairs) : सामाजिक विषय में सामयिक या वर्तमान विषय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सामयिक मामले प्रत्यक्ष रूप से समाज से जुड़े होते हैं और यह विषय समाज के साथ गहरा सम्बन्ध रखता है। इसलिये सामयिक विषयों के अध्ययन के लिये भाषण विधि बहुत उपयोगी होती है।

भाषण विधि की हानियाँ
(Disadvantages of Lecture Method)

1. इस विधि में शिक्षकों पर अतिरिक्त भार होता है।
2. इस विधि का अधिक प्रयोग हानिकारक हो सकता है।
3. इसमें अधिगम अच्छी प्रकार नहीं हो सकता। क्योंकि इसमें छात्र केवल सुनते हैं।
4. सभी अध्यापक प्रभावशाली ढंग से भाषण नहीं दे सकते।
5. यह विधि पूरी तरह नीरस तथा रूढ़िवादी है।
6. यह विधि केवल उच्चस्तर के विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त होती है। छोटी कक्षाओं में इसका प्रयोग निरर्थक होता है।
7. इसमें विद्यार्थियों पूरी तरह निष्क्रिय होते हैं।
8. यह विधि शिक्षक प्रधान है।
9. यँह विधि अमनोवैज्ञानिक है।

अत: भाषण विधि के विषय में कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण विधि नहीं है। परन्तु फिर भी वर्तमान में इसका प्रयोग अच्छी प्रकार हो रहा है। शिक्षक अपनी हास्य-कथाओं, उदाहरणों और अच्छी तैयारी से इसे रोचक बना सकता है।

प्रदर्शन नीति
(Demonstration Strategy)

कक्षा में शिक्षक जब भी विद्यार्थियों को किन्हीं नवीन तथ्यों, सिद्धान्तों अथवा ज्ञान का शिक्षण प्रदान करता है तो केवल पुस्तकीय अथवा सैद्धान्तिक ज्ञान ही प्रदान नहीं करता बल्कि छात्र उस ज्ञान को सरलता और शीघ्रता से ग्रहण कर ले यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शिक्षक अनेक प्रकार के हाव-भाव गतिविधियों, क्रियाओं परीक्षणों, शिक्षण-सामग्री और दृश्यात्मक चित्रों को भी प्रस्तुत करने का प्रयास करता हैं इसके लिये वह अनेक उपकरणों को और शिक्षण सामग्री का भी प्रयोग करता है। वह विषय की व्याख्या करता है, उदाहरण सहित समझाता है, पुनरावृत्ति करता है और प्रश्न पूछता है। ये सभी तकनीके प्रदर्शन विधि है। इस विधि में सम्पूर्ण विषय सामग्री को छोटे-छोटे भागों में बाँटा जाता है और इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि मंद गति सीखने वाले बालक भी इसका लाभ प्राप्त कर सके।

प्रदर्शन की आवश्यकता और महत्त्व
(Need and Importance of Demonstration)

वर्तमान समय में कोई भी विषय या पाठ्यक्रम और शिक्षण-अधिगम का ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ इसके उपयोगिता या महत्त्व न हो।

1. गणित विषय को गणित शिक्षक इस विधि का प्रयोग करके उसे सरल बना सकता है। गणित शिक्षक मापों, कोणों, रचनाओं और आकृतियों को क्रियात्मक रूप से प्रस्तुत कर सकता है।
2. सामाजिक-विज्ञान के शिक्षक के लिये भी यह विधि बहुत उपयोगी है। इस विधि द्वारा अनेक सरकारी मंत्रालयों, विभागों, नगर-पालिका, पंचायत और संसद चुनावों को प्रदर्शित किया जा सकता है।
3. भूगोल विषय में पाठ पढ़ाते समय सूखा, भूचाल, ज्वालामुखी, सौरमंडल, ऋतु-परिवर्तन, ग्रह-उपग्रहो की चाल आदि प्रक्रियाओं को प्रदर्शन विधि द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।
4. व्याकरण विषय और एकांकी आदि पढ़ाते समय भी इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।
5. विज्ञान, संगीत, खेल-कूद आदि प्रायोगिक विषय भी इस विधि द्वारा आसानी से पढ़ाये जा सकते हैं।

प्रदर्शन नीति के गुण
(Merits of Demonstration Strategy)

1. इस विधि का प्रयोग सभी विषयों को पढ़ाने में किया जा सकता है।
2. इस विधि द्वारा विद्यार्थियों में विषय के प्रति रूचि बनाई जा सकती है।
3. इस विधि द्वारा ज्ञान स्थायी रहता है।
4. इस विधि द्वारा विद्यार्थियों में तर्क-शक्ति, कल्पना शक्ति, चिन्तन शक्ति और रचनात्मकता का विकास होता है।
5. इस विधि द्वारा शिक्षक वांछित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं।
6. इसमें विद्यार्थी आसानी और शीघ्रता से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

प्रदर्शन नीति के दोष
(Limitations of Demonstration)

1. इस विधि में अनेक साधनों और उपकरणों की आवश्यकता होती है।
2. इसमें विद्यार्थियों को समुचित वातावरण नहीं मिलता।
3. इस विधि में यदि उचित तरीके से काम न किया जाये तो इसमें समय और धन दोनों नष्ट हो जाते हैं।
4. भारत में इस विधि के प्रयोग के लिये कुशल शिक्षकों का अभाव हैं।
5. यह विधि छात्र केन्द्रित न होकर शिक्षक केन्द्रित है।
6. बड़ी कक्षाओं के अनुपयोगी है।
7. इसमें निरीक्षण का अभाव होता है, जिससे यह नहीं, पता चलता कि छात्र व शिक्षक ने कितनी उपलब्धि प्राप्त की हैं।

6

दल शिक्षण/टोली शिक्षण/समूह शिक्षण (Team Teaching)

वर्तमान समय में समूह शिक्षण अत्यधिक लोकप्रिय है। दल शिक्षण विधि का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। "हावर्ड विश्वविद्यालय" ने सवसे पहले इस विधि का प्रयोग किया। समूह शिक्षण विधि का प्रयोग द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सेना को प्रशिक्षण देने के लिये किया गया था।

अर्थ (Meaning) : समूह शिक्षण का अर्थ है दो या दो से अधिक अध्यापकों द्वारा कक्षा में शिक्षण प्रदान करना है। इसमें अनुभवी शिक्षकों का समूह एक ही समय में एक ही कक्षा में जाता है और एक-दूसरे के सहयोग से शिक्षण किया जाता है। एक अंध्यापक संयोजक के रूप में कार्य करता है, एक शिक्षण प्रकरण विषय पर व्याख्या देता है, एक प्रयोगशाला में प्रयोग की व्यवस्था क़रता है और एक प्रकरण समझाने के लिये दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग करता है। इस प्रत्येक अध्यापक़ शिक्षण कार्य में समन्वय स्थापित करने में योजनाओं का निर्माण करता है। इस विधि द्वारा प्रभावशाली शिक्षण किया जा सकता है। समूह शिक्षण का मुख्य उद्देश्य अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाना है।

डेविड वारविक (David Warwic) के अनुसार- "दल-शिक्षण व्यवस्था का एक स्वरूप है, जिसमें कई शिक्षक अपने स्त्रोतों, अभिरूचियों और दक्षताओं का एकत्रित करते हैं और छात्रों की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षकों की एक टोली द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।" वे विद्यालय की सुविधाओं का समुचित उपयोग करते हैं।

समूह शिक्षण की विशेषतायें (Characteristics of Team Teaching)

टोली शिक्षण या समूह शिक्षण की विशेषतायें निम्नलिखित हैं :

1. समूह शिक्षण में शिक्षण का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है।
2. समूह शिक्षण में दो या दो से अधिक अध्यापक एक कक्षा में छात्रों को अनुदेशन दे सकते हैं।
3. इसमें शिक्षण/अनुदेशन पूर्व नियोजित होता है।
4. विषय-वस्तु को अधिक स्पष्ट करने के लिये दृश्य-श्रव्य सामग्रियों का अधिक प्रयोग किया जाता है।

5. यह पूर्णतः औपचारिकता पर आधारित है।
6. समूह शिक्षण में अध्यापकों में सहयोग की भावना का विकास होता है।
7. इसमें अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
8. प्रत्येक अध्यापक व्यक्तिगत और सामूहिक उत्तरदायित्व निभाने पड़ते हैं।
9. इसमें विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये शिक्षण किया जाता है।
10. समूह शिक्षण में योजना, व्यवस्था तथा मूल्यांकन पक्षों का निर्धारण सामूहिक रूप से किया जाता है।

समूह शिक्षण के प्रकार
(Types of Team Teaching)

समूह शिक्षण का व्यवस्था के आधार पर वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जा सकता है।

1. एक ही विभाग के शिक्षकों का दल।
2. एक ही संस्था के अलग-अलग विभागों के शिक्षकों का दल।
3. विभिन्न संस्थाओं के ही विषय के शिक्षकों का दल।

समूह/दल शिक्षण के उद्देश्य
(Objectives of Team Teaching)

समूह शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. शिक्षण प्रक्रियाओं में गुणात्मक सुधार लाना।
2. शिक्षक की योग्यताओं और अनुभवों का समूचित प्रयोग।
3. शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाना।
4. छात्रों की रूचियों और व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर विषय-वस्तु का वर्गीकरण।
5. समुचित वातावरण का निर्माण करना।
6. शिक्षण में शैक्षिक तकनीकों और दृश्य-श्रव्य सामग्रियों का भरपूर प्रयोग।
7. शिक्षण और अनुदेशन प्रक्रिया में लचीलापन पैदा करना।

समूह शिक्षण के लाभ
(Merits of Team-Teaching)

1. समूह शिक्षण में प्रभावशाली और गुणात्मक शिक्षण प्रदान किया जाता है।
2. इसमें अध्यापक अपनी व्यवसायिक कुशलताओं को विकसित कर सकता है।

3. इसमें अनुशासनहीनता की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।
4. समूह शिक्षण में उच्च सामाजिक गुणों का विकास होता है।
5. इसमें प्रतियोगिता की भावना का विकास होता है।
6. इसमें सामूहिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।
7. इसमें छात्रों को चर्चा करने के उचित अवसर प्राप्त होते हैं।
8. समूह शिक्षण द्वारा मानव सम्बन्धों का विकास होता है।
9. समूह शिक्षण में नियोजित रूप से शिक्षण किया जाता है।
10. समूह शिक्षण में वाद-विवाद को प्रमुख स्थान दिया जाता है, जिससे छात्रों व अध्यापकों को नवीन ज्ञान प्राप्त होता है।
11. इसमें छात्रों व अध्यापकों में निकट सम्बन्ध स्थापित होते हैं।
12. प्रेरणादायक विषय कक्षा में उत्तम प्रकार से पढ़ाया जा सकता है।

टोली शिक्षण की समस्यायें
(Demerits of Team Teaching)

1. समूह शिक्षण में विद्यालय में अतिरिक्त व्यवस्थाओं और अधिक धन की आवश्यकता होती है।
2. समूह शिक्षण में परस्पर सहयोग और सहकारिता की आवश्यकता होती है। परन्तु सभी में इस भावना का पाना जरूरी नहीं होता।
3. इसमें पूर्व नियोजन की आवश्यकता होती है। यदि एक भी अध्यापक योजना बनाकर नहीं आता तो शिक्षण संभव नहीं हो सकता।
4. समूह शिक्षण में सामंजस्य का अभाव होता है।
5. व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण समूह शिक्षण में कठिनाइयां आती है।
6. समूह शिक्षण में स्वतन्त्र शिक्षण संभव नहीं है।
7. इसमें व्यवस्था के दौरान विद्यालय प्रबंधकों को अधिक आर्थिक बोझ पड़ता है।

मस्तिष्क उद्वेलन
(Brain Storming)

मस्तिष्क उद्वेलन एक सामूहिक रचनात्मक तकनीक है, जिसका प्रयोग किसी भी समस्या के समाधान के लिये बड़ी संख्या में विचार उत्पन्न करने के लिये किया जाता है। इस विधि को 1953 में "एलेक्सफेकने ऑसबोर्न" (A.F. Osborn) द्वारा लिखित पुस्तक

"अप्लाइड इमेजिनेशन" (Applied Imagination) द्वारा प्रसिद्ध किया गया। ऑसबोर्न का मानना था कि मस्तिष्क उद्वेलन विधि के साथ समूहों की सृजनात्मकता को दोगुना किया जा सकता है।

मस्तिष्क उद्वेलन का अर्थ
(Meaning of Brainstorming)

मस्तिष्क उद्वेलन, अध्यापक द्वारा अध्यापन के लिये प्रयोग की जाने वाली योग्यता या साधन है, जो छात्रों की भागीदारी को बढ़ाता है जब वह किसी विषय पर अपने व्यक्तिगत विचारों को प्रकट कर रहा होता है। इसमें छात्रों द्वारा दिये गये विचारों का मूल्यांकन नहीं होता।

इसमें व्यक्ति के मस्तिष्क या विचारों का शुद्धिकरण या उनका मंथन किया जाता है। इसमें नये विचारों का उद्भव होता है। अलग-अलग परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग पक्षों पर विचार और ध्यान केन्द्रित किया जाता है। परिणामस्वरूप नये विचारों का उद्भव और सृजन होता है।

मानसिक उद्वेलन प्रक्रिया पूर्णत: एक बौद्धिक गतिविधि है, जहाँ पर विविध विचारों (Divergent thinking) मुख्य केन्द्र होता है।

मस्तिष्क उद्वेलन की विशेषतायें
(Characteristics of Brainstorming)

1. यह एक बौद्धिक क्रिया है।
2. यह व्यक्ति के मन और मस्तिष्क से सम्बन्धित है।
3. अधिक संख्या में छात्र भाग लेते हैं।
4. प्रत्येक छात्र विषय पर अपने स्वयं के विचार व्यक्त करता है।
5. कोई भी विचार गलत या सही नहीं होता।
6. इसमें अनेक विचारों का समावेश होता है।
7. छात्रों के विचार श्यामपट्ट पर लिखे जाते हैं।

मस्तिष्क उद्वेलन की मूल मान्यतायें
(Basic Assumption of Brainstroming)

मस्तिक उद्योलन की चार मूलभूत नियम अथवा मान्यतायें हैं :

1. संख्या पर केन्द्रित (Focus on quantity) : इस नियम में अलग-अलग विचारों को उत्पन्न करके बढ़ाया जाता है। इसमें समस्या-समाधान की ओर आगे बढ़ा जा सकता

है। मान्यतानुसार जितनी ज्यादा संख्या में विचार उत्पन्न होगें, समस्या का उतना ही प्रभावी समाधान निकलने के अवसर ज्यादा होंगे।

2. आलोचना को दबाये रखना (Withold criticism) : इसमें उत्पन्न विचारों तुरंत आलोचना नहीं की जा सकती। सभी प्रतिभागी विचारों को आगे बढ़ाते हैं और आलोचना की प्रक्रिया के बाद आने वाले "आलोचनात्मक स्तर" के लिये बचाकर रखते हैं। इससे विभिन्न प्रतिभागी अप्रचलित विचारों को प्रकट करने के लिये स्वतन्त्र महसूस करते हैं।

3. अप्रचलित विचारों का स्वागत करना (Welcome unusual ideas) : विचारों की लम्बी सूची प्राप्त करने के लिये अप्रचलित विचारों का स्वागत किया जाता है। धारणाओं को एक तरफ रखकर नये दृष्टिकोण से देखने पर इस प्रकार के विचार उत्पन्न हो सकते हैं। सोचने के ऐसे नये तरीके बेहतर समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं।

4. मिश्रण कर विचारो को उत्तम बनाना (Combine and Improve ideas) : इसमें अनेक विचारों को एकत्रित करके एक अच्छा उपाय बनाया जाता है। इसमें सह-सम्बन्ध द्वारा अच्छे विचार बनाये जा सकते हैं।

मानसिक/मस्तिष्क उद्योलन सत्र तैयार करने की प्रक्रिया (Process of Preparing for a Brainstroming Process)

मानसिक/मस्तिष्क उद्योलन प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिये निम्नलिखित प्रकार से आगे बढ़ा जा सकता है :

1. समस्या स्थापित करना (Set the problem) : मस्तिष्क उद्योलन प्रक्रिया आरंभ करने से पहले समस्या को परिभाषित किया जाता है। समस्या स्पष्ट होना चाहिये, अधिक बड़ी नहीं होना चाहिये और एक विशेष प्रश्न के अन्तर्गत आ जानी चाहिये। जैसे- कम्प्यूटर और मोबाइल में कौन-सी सेवायें वर्तमान में उपलब्ध नहीं है ? लेकिन उसकी आवश्यकता महसूस हो रही है। समस्या बड़ी हो तो उसे छोटे-छोटे भागों में बाँट देना चाहिये।

2. पृष्ठभूमि पत्र तैयार करना (Create a background memo) : पृष्ठभूमि पत्र विद्यार्थियों के लिये सूचनात्मक होता है। यह पृष्ठभूमि पत्र विद्यार्थियों को पहले से ही बाँटे जा सकते हैं ताकि समस्या के बारे में पहले से ही सोचा जा सके। इसमें सत्र के समय, तिथि, स्थान व समस्या के विषय में सूचना होती है। समस्या को एक प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और विचारों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

3. प्रतिभागियों का चयन (Selection of participants) : अध्यापक द्वारा एक मस्तिष्क उद्योलन पैनल तैयार किया जाता है। इसमें सभी विद्यार्थियों और उनके विचारों को नोट करने वाला भी होता है। सदस्यों की संख्या में विभिन्नता होती है परन्तु निम्नलिखित संरचना आदर्श सिद्ध होती है :

1. परियोजना से सम्बन्धित अनिवार्य सदस्य।
2. बाहर से आमन्त्रित सदस्य जो समस्या की समझ रखते हो।
3. एक विचार एकत्रित करने वाला जो सुझाये गये विचारों को रिकार्ड कर सके।

4. प्रश्नों की सूची बनाना (Create a list of questions) : मस्तिष्क उद्योलन सत्र के दौरान सृजनात्मकता में कमी आ सकती है, इस समय अध्यापक को सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने के लिये उत्तर को आगे बढ़ाने वाले प्रश्न तैयार रखने चाहिये।

मस्तिष्क उद्योलन सेशन (सत्र) को प्रयोग करने के सामान्य नियम (General Rules for Conducting Brainstorming Session)

मस्तिष्क उद्योलन सत्र प्रयोग करने के नियम निम्नलिखित है :

1. मस्तिष्क उद्योलन प्रक्रिया आरंभ करने पूर्व व्यक्ति को मानसिक रूप से शांत होना चाहिये।
2. सहयोगी वातावरण का निर्माण करना चाहिये।
3. मन पूरी तरह स्वतन्त्र होना चाहिये।
4. सेशन शुरू करने से पहले ही नियम बता देने चाहिये।
5. कम समय में सेशन रखें। (20 मिनट)
6. शांतिपूर्वक विचारों का सृजन।
7. अलग-अलग ध्वनियों का प्रयोग होना चाहिये।

मस्तिष्क उद्योलन के लाभ

(Advantages of Brainstorming)

मस्तिष्क उद्योलन विद्यार्थियों के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसके लाभ निम्नलिखित है :

1. मानसिक उद्योलन विचारों की उत्पत्ति का शक्तिशाली साधन है।
2. इसमें किसी भी विषय या समस्या का उपविषय प्रयोग किया जा सकता है।
3. इसमें नये-नये विचारों की उत्पत्ति होती है।

4. यह छात्रों में आलोचनात्मक शक्ति का विकास करता है।
5. यह छात्रों में कल्पनात्मक शक्ति का विकास करता है।
6. इससे छात्रों में आत्मविश्वास और स्वाभिमान का विकास होता है।
7. अभिभावको और संयोजको के लिये यह अभिप्रेरणा का काम करता है।
8. इसमें विद्यार्थी में समूह में काम करते हैं, जिससे उनमें सहयोग की भावना विकसित होती है।
9. रट्टा पद्धति का इसमें कोई स्थान नहीं।

मानसिक/मस्तिष्क उद्योलन की सीमायें (Limitations of Brainstorming)

1. सत्र के दौरान सभी विद्यार्थी एक जैसी रूचि और तत्परता नहीं दिखाते।
2. इसमें सामूहिक शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने में बाधा आती है। इसका कारण सभी विद्यार्थियों का समूह में मानसिक स्तर अलग-अलग होता है।
3. कई बार विद्यार्थी अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त नहीं कर पाते।
4. सत्र के दौरान सभी प्रतिभागियों के विचार या मत पर असहमति होने पर निष्कर्ष नहीं निकलता।
5. इसमें विद्यार्थियों की समय और शक्ति दोनों नष्ट हो जाती है।

7

फ्लैण्डर्स अन्त: क्रिया विश्लेषण प्रणाली (Flander's Interaction Analysis System)

परिचय (Introduction)

शिक्षण-प्रक्रिया के समय एक अध्यापक एक नेता, नियोजक और संचालक की भूमिका निभाता है। वह छात्रों को अधिगम अनुभव प्रदान करता है। कक्षीय क्रियाओं को संचालित व नियन्त्रित करता है। छात्रों को कक्षा गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिये प्रेरित करता है और अन्त में सभी क्रियाओं का मूल्यांकन करता है। कक्षा का वातावरण शिक्षक व्यवहार पर निर्भर करता है। एक शिक्षक की क्षमता और कार्यकुशलता का अनुमान उस शिक्षण की प्रभावपूर्ण गतिविधियों से लगाया जा सकता है। शिक्षक का शिक्षण कितना प्रभावपूर्ण था इसका मूल्यांकन कक्षा व्यवहार और विद्यार्थियों के साथ होने वाली अन्त: क्रिया द्वारा किया जा सकता है। अत: अध्यापक कक्षा व्यवहार अथवा कक्षा अन्त : क्रिया के सुव्यवस्थित और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण द्वारा कक्षा में शिक्षण और अधिगम के रूप में जो कुछ भी होता है, उसका विश्वसनीय मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है। कक्षा-व्यावहार और कक्षा अन्त: क्रिया का इस प्रकार का विश्लेषण ही अन्त: क्रिया विश्लेषण के नाम से जाना जाता है।

अन्त: क्रिया विश्लेषण से अभिप्राय है जिसमें कक्षा-कक्ष में घटने वाली घटनाओं का वस्तुनिष्ठ और व्यवस्थित निरीक्षण करने की व्यवस्था होती है। जिसे अध्यापक के कक्षा-व्यवहार और कक्षा-कक्ष में चल रही अन्त : क्रिया प्रक्रिया का समुचित अध्ययन करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है। इससे अध्यापक को अपने शिक्षण को अधिक प्रभावशाली और उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिये अपने व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने और अपने विद्यार्थियों के साथ होने वाली अन्त:क्रिया में आवश्यक सुधार करने के कार्य में पूरी-पूरी सहायता मिलती है।

शिक्षक व्यवहार की परिभाषा

1. मैक नरजैंसी तथा कार्नर-1981 (M.C. Nergency and Carner-1981) : "शैक्षिक-व्यवहार, शिक्षक की विशेषताओं तथा उसे ऐसे वातावरण का कार्य है, जो शिक्षण-कार्य के लिये आवश्यक है।"

2. रेयान्स (Ryans) : "शिक्षक-व्यवहार उन व्यक्तियों के व्यवहार अथवा क्रियाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो वे करते हैं तथा जिन क्रियाओं की आशा,

शिक्षकों से की जाती है-विशेषत: ऐसी क्रियायें जो अधिगम के लिये निर्देशन अथवा मार्ग दर्शन के साथ सम्बन्धित हो।"

शिक्षक-व्यवहार की विशेषतायें
(Main Characteristics of Teaching Behaviour)

शिक्षक व्यवहार की विशेषतायें निम्नलिखित है :-

1. शिक्षक-व्यवहार को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।
2. शिक्षक व्यवहार का निरीक्षण और विश्लेषण किया जा सकता है।
3. इसका मापन किया जा सकता है।
4. शिक्षक व्यवहार शाब्दिक और अशाब्दिक होता है।
5. शिक्षक-व्यवहार को अनेक वर्गों में बांटा जा सकता है। इसके द्वारा यह पता चलता है कि शिक्षक का व्यवहार कैसा और किस प्रकार का है।
6. अनावश्यक और प्रभावहीन व्यवहार को संशोधित किया जा सकता है।
7. यह शिक्षक के गुणों-अवगुणों, योग्यताओं और सांस्कृतिक-सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रतिबिम्ब होता है।

अत: शिक्षक का व्यवहार कभी भी एक समान नहीं होता। उसके व्यक्तिगत कारणों, परिस्थितियों, अवस्थाओं और विशेषताओं के कारण उसके शैक्षिक व्यवहार में परिवर्तन आता है।

अन्तर्क्रिया विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Interaction Analysis)

अन्त: क्रिया शब्द का अर्थ है विचारों का आदान-प्रदान करना व विचारों के आदान-प्रदान प्रक्रिया का विश्लेषण करना। अन्त: कक्षीय अन्त: क्रिया विश्लेषण का अर्थ है-कक्षीय व्यवहार का विश्लेषण करना।

अन्त: क्रिया विश्लेषण से अभिप्राय उस तकनीक से है, जिसमें कक्षा में घटित होने वाली घटनाओं का वस्तुनिष्ठ निरीण करने की व्यवस्था होती है। इसे शिक्षक के कक्षीय व्यवहार तथा कक्षा में चल रही अन्त: क्रिया का समग्र रूप से अध्ययन करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है। शिक्षक की सभी क्रियाओं का अध्ययन सुगमतापूर्वक किया जाता है, जिससे शिक्षक के कक्षीय व्यवहार का परीक्षण किया जाता है।

ओबेर (Ober) के अनुसार- "निरीक्षण प्रणाली वह उपयोगी साधन है, जिसके द्वारा अधिगम-परिस्थितियों के परिवर्तनशील कारकों की अन्तर्क्रिया की पहचान, वर्गीकरण, मापन तथा अध्ययन किया जाता है।"

अतः अन्तः क्रिया विश्लेषण का अर्थ कक्षा में घटित होने वाली प्रत्येक घटना का व्यवस्थित और सुव्यवस्थित तरीके से निरीक्षण करने की व्यवस्था करना तथा प्रत्येक घटना का विश्लेषण करना। यह एक विशेष शोध-प्रक्रिया है। इसे कक्षा में होने वाली प्रत्येक घटना के अध्ययन की वैज्ञानिक विधि भी कहा जा सकता है। इसकी सहायता से कक्षा की सभी क्रियाओं तथा व्यवहारों का निरीक्षण किया जा सकता है।

कक्षीय अन्तः क्रिया विश्लेषण की प्रणालियाँ

कक्षीय अन्तः क्रिया विश्लेषण प्रणाली को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

1. चिह्न पद्धति (Sign System)
2. वर्ग पद्धति (Category System)

1. चिह्न पद्धति (Sign System) : इसमें शिक्षक-व्यवहार की एक सूचि बना ली जाती है। निरीक्षक द्वारा उस व्यवहार को चिह्नांकित किया जाता है, जिसका प्रदर्शन शिक्षक कक्षा में करता है। कोई व्यवहार कितनी बार दोहराया गया है, निरीक्षक द्वारा उस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। अतः इस विश्लेषण में शिक्षक को वांधित अथवा अवांधित व्यवहारों को बढ़ाने अथवा कम करने से सम्बन्धित परामर्श देना सम्भव नही होता।

जैसे-ब्लूम (B.S.Bloom) तथा सैंडर्स (Sanders) ने चिह्न पद्धति के लिये सात स्तर प्रदान किये थे, जिनका प्रयोग कक्षा निरीक्षण में किया जाता है। जो हैं- विशेष तथ्य, विधियों तथा साधनों का ज्ञान, व्याख्य, प्रयोग विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन।

2. वर्ग पद्धति (Category System) : इस पद्धति में अलग-अलग व्यवहारों को दो विभिन्न इकाइयों, में बाँटा जाता है। इन इकाइयों को वर्गों में बाँटा जाता है। इन वर्गों को सूची बना ली जाती है। निरीक्षक देखता है कि 2-3 सैकेंड के बाद कक्षा में घटित होने वाला व्यवहार किस वर्ग में आता है। इसका रिकोर्ड तैयार कर लिया जाता है। वर्गों की लिख लिया जाता है। फिर इसका विश्लेषण किया जाता है। जैसे-

फ्लैंडर्स (Flanders Ned. A) की अन्तर्क्रिया विश्लेषण प्रणाली इसकी प्रसिद्ध विधि है।

अन्तर्क्रिया विश्लेषण का उद्देश्य (Objectives of Classroom Interaction Analysis)

इसके उद्देश्य निम्नलिखित है:-

1. निरीक्षण द्वारा शिक्षक-व्यवहार का अध्ययन करना।
2. शिक्षण व अधिगम कार्यक्रम के दोषों की पहचान करना और उसके बाद उपचारात्मक विधि द्वारा सुझाव देना।
3. शिक्षक व्यवहार के लिये योजना बनाना।
4. शिक्षक व्यवहार को सुधारने के लिये आवश्यक विधियों और आवश्यकताओं की योजना बनाना।

कक्षीय अन्तर्क्रिया विश्लेषण प्रणाली की क्रियायें (Activities of Classroom Interaction Analysis)

इस प्रणाली में दो प्रकार की क्रियायें होती है:-

1. कूट संकेतन (Encoding)
2. संकेतवाचन (Decoding)

कूट संकेतन में कक्षा की घटनाओं को सार्थक रूप से अभिलिखित करने में सहायता प्राप्त होती है।

संकेतवाचन इसके विपरीत होती है। इसमें अभिलिखित सूचनाओं का विश्लेषण किया जाता है ताकि शैक्षिक व्यवहार तथा कक्षीय अन्तर्क्रिया के स्वरूप का समूचा अध्ययन और विश्लेषण किया जा सके।

फ्लैंडर की अन्तर्क्रिया विश्लेषण प्रणाली (Flander System of Interaction Analysis)

नैड. ए. फ्लैंडर (Ned.A. Flender) ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर मिनेसोटा विश्वविद्यालय-अमेरिका में 1955 से 1960 के बीच इस विधि का विकास किया। यह विधि कक्षा के शाब्दिक व्यवहार (Verbal behaviour) तथा कक्षीय संप्रेषण के लिये प्रयोग लायी जाती है। फ्लैंडर का मानना था कि कक्षा का शाब्दिक व्यवहार संपूर्ण कक्षीय व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता है। इस विधि द्वारा 3 सैंकड अथवा इससे भी कम समय में घटित होने वाली कक्षीय घटना का निरीक्षण सुव्यवस्थित ढंग से किया जाता है। यह एक वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक विधि है।

अन्तर्क्रिया विश्लेषण की दस वर्गीय प्रक्रिया (The Ten Categories System of Interaction Analysis)

फ्लैंडर ने शिक्षक तथा विद्यार्थियों के कक्षीय व्यवहारों को दस भागों में विभाजित किया गया है। इसके आगे तीन मुख्य खण्ड बनाये गये है :-

1. शिक्षक कथन (Teacher Talk)
2. विद्यार्थी कथन (Pupil Talk)
3. मौन (Silence)

शिक्षक कथन से सम्बन्धित प्रथम खण्ड में सात वर्ग रखे गए है। कक्षा में शिक्षक कथन, विद्यार्थियों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। प्रथम चार वर्गों का सम्बन्ध अप्रत्यक्ष प्रभाव (Direct Influence) के साथ है।

दूसरा प्रमुख खण्ड विद्यार्थियों के कथन का है। इसे दो भागों में बाँटा गया है। तीसरा खण्ड मौन अथवा विभ्रांति का है, जिसमें केवल एक वर्ग है। कक्षीय व्यवहार का कोई भी ऐसा पक्ष जो प्रथम तथा द्वितीय खण्ड में न आता हो, इस वर्ग में आता है।

फ्लैण्डर्स अन्तः क्रिया विश्लेषण श्रेणियाँ (Flander's Interaction Analysis Categories)

(A) शिक्षक वार्ता (Teacher Talk)

***(a)* अप्रत्यक्ष प्रभाव** (Indirect Influence)

1. भावनाओं को स्वीकार करना (Accepts Feelings) : छात्रों की भावनाओं (नकारात्मक या स्वीकारात्मक) को स्वीकार करने से सम्बन्धित व्यवहार इस श्रेणी में आते हैं।

2. प्रशंसा या प्रोत्साहन देना (Praises or Encourages) : इस श्रेणी में शिक्षक का वह व्यवहार आता है, जिनके द्वारा छात्रों के कार्य की प्रशंसा अथवा प्रोत्साहन दिया जाता है।

3. छात्रों के विचारों को स्वीकारना या उनका प्रयोग करना (Accepts or Uses Ideas of Students) : इस श्रेणी में शिक्षक का वह व्यवहार आता है, जिसके द्वारा वह छात्रों के विचारों को स्वीकार करता है, उन्हें विकसित करता है।

4. प्रश्न पूछना (Asks Questions) : इस श्रेणी में अध्यापक द्वारा छात्रों से विषय-वस्तु से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं।

(*b*) **प्रत्यक्ष प्रभाव** (Direct Influence)

5. व्याख्यान देना (Lecturing)

6. निर्देश देना (Giving directions)

7. **आलोचना करना या अधिकारा जताना** (Criticising or Justifying authority) : इसमें छात्रों को ताड़ना, उनके बुरे व्यवहार और गलत कार्य की आलोचना करना तथा कोई एक अमुक कार्य, शिक्षक द्वारा क्यों किया जा रहा है यह समझना आदि शिक्षक व्यवहार इस श्रेणी में आते हैं।

(B) छात्र वार्ता (Pupil Talk)

8. **छात्र अनुक्रिया** (Pupil Talk Response) : इसमें छात्र, शिक्षक के प्रश्नों या व्यवहारों के फलस्वरूप अपनी अनुक्रिया व्यक्त करते हैं।

9. **छात्र स्वोपक्रम या पहल करना** (Pupil Talk Initiations) : ऐसा व्यवहार जिसमें छात्र अपनी इच्छा से बोलते हैं अथवा जिसे छात्र स्वयं प्रारम्भ करते हैं।

(C) मौन (Silence)

10. **मौन या अस्त-व्यस्तता :** इस श्रेणी में कक्षा में मौन वातावरण बन जाता है अथवा अस्त-व्यस्तता का वातावरण होता है जिसमें निरीक्षक को समझ न आ सके क्या चल रहा है।

फ्लैण्डर्स की अन्त: क्रिया विश्लेषण तकनीक को कैसे प्रयोग किया जाये ? (How to Use Flander's Interaction Analysis Technique ?)

इस तकनीक का तीन सोपानों में प्रयोग किया जाता है :-

1. कक्षा में घटित घटनाओं का निरीक्षण एवं अभिलेखन।
2. अन्त: क्रिया मैट्रिक्स की रचना
3. अन्त: मैट्रिक्स की व्याख्या।

1. कक्षा में घटित घटनाओं का निरीक्षण एवं अभिलेखन (Observation or Recording of Classroom events)

इसमें निरीक्षणकर्त्ता को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये :-

1. निरीक्षणकर्त्ता को कक्षा में ऐसा स्थान चुनना चाहिये जहाँ से वह कक्षा-कक्ष की सभी गतिविधियों को देख और सुन सके।

2. निरीक्षणकर्त्ता को अभिलेखन (Recording) कला में प्रवीणता अर्जित करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस कार्य को Encoding की संज्ञा दी जाती है।

Encoding के लिये निरीक्षणकर्त्ता को निम्न बाते अपेक्षित है:-

1. विभिन्न श्रेणियों में समाविष्ट व्यवहारों का पूरा ज्ञान होना चाहिये।
2. प्रत्येक तीन सैकेण्ड में घटित व्यवहार को आलेख पत्र (Data Sheet) पर लिखते रहना चाहिये।
3. एनकोडिंग प्रक्रिया को शीघ्रता से सम्पन्न की जाती है। एक मिनट में 20 और 25 निरीक्षणों का अंकन किया जाता है।
4. श्रेणी क्रमांक का अंकन एक ही कॉलम में एक के बाद एक क्रम में जिस तरह व्यवहार घटित हो रहा है, वैसे ही करने का प्रयत्न करना चाहिये।
5. विशेष कक्षा घटनाओं तथा व्यवहारों के घटित होने से सम्बन्धित सूक्ष्म या संक्षिप्त संकेत नोट करते रहना चाहिये।

कुछ आधारभूत नियम (Certain Ground Rules)

नियमों का वर्णन निम्न प्रकार है:-

1. नियम (Rule 1) : जब यह निश्चित करने में करने में कठिनाई अनुभव हो कि कौन-सा व्यवहार निश्चित रूप से किस श्रेणी में आना चाहिये तो उस घटना या व्यवहार को 5वीं श्रेणी से अधिक दूर की श्रेणियों में अंकित किया जाना चाहिये। जैसे तीन और चार के बीच में चुनाव करने में 3 और 8 के बीच चुनाव करने में 9 का चुनाव किया जाना चाहिये।

2. नियम (Rule 2) : यदि एक शिक्षक का व्यवहार अपने मूल रूप में निरन्तर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष चल रहा है तो उसके विपरीत श्रेणी में अंकन तभी करना चाहिये जब निरीक्षणकर्त्ता को यह पूरी विश्वास हो जाये कि शिक्षक के व्यवहार में इस तरह का परिवर्तन आया है।

3. नियम (Rule 2) : इसमें शिक्षक की इच्छाओं को स्थान नहीं देना चाहिये।

4. नियम (Rule 4) : यदि तीन सैकेण्ड में एक से अधिक श्रेणियों के व्यवहार घटित होते है तब उस श्रेणी के क्रमांकों का अंकन करना चाहिये।

5. **नियम** (Rule 5) : यदि मौन (Silence) तीन सैकेण्ड से अधिक समय तक रहता है तो व्यवहार श्रेणी क्रमांक 10 अंकित किया जाना चाहिये।

6. **नियम** (Rule 6) : शिक्षक द्वारा किया गया ऐसा हास-परिहास जिससे छात्र की भावनाओं को ठेस पहुँचती है, उसके लिये श्रेणी क्रमांक 7 अंकित किया जाता है।

7. **नियम** (Rule 6) : किसी एक छात्र द्वारा संकीर्ण (Narrow) प्रश्न का सम्भावित उत्तर दिया जाता है तो उसे श्रेणी 8 में अंकित किया जाता है।

2. अन्त : क्रिया मैट्रिक्स की रचना (Construction of Interaction Matrix)

अभिलेखन (Recording) या एनकोडिंग का कार्य करने के बाद निरीक्षणकर्ता को प्राप्त श्रेणी क्रमांकों (Code numbers) के द्वारा अन्त: क्रिया मैट्रिक्स की रचना का कार्य करना होता है। इस मैट्रिक्स में 10 पक्तियाँ (Rows) तथा 10 स्तम्भ (Columns) होते है।

आलेख पत्र (Record Sheet) के सभी श्रेणी क्रमांको (Category Number) को मैट्रिक्स में अंकित किया जाता है। प्रत्येक श्रेणी को क्रमिक युग्म (Sequence Pairs) के रूप में अंकित किया जाता है। इस रूप में इसे दो बार युग्म बनाने के काम में लाया जाता है। एक बार अपने पहले से क्रमांक (Number) के साथ और दूसरी बार अपने से बाद के क्रमांक के साथ। इस कार्य को सम्भव बनाने के लिये मैट्रिक्स बनाने से पूर्व आलेख पत्र के प्रारम्भ और अन्त दोनों में ही श्रेणी 10 अंकित कर ली जाती है ताकि प्रारम्भ और अन्त के युग्म बनाये जा सके। मैट्रिक्स की पंक्तियाँ (Rows), युग्म (Pairs) के पहले क्रमांक को दर्शाती हैं जबकि स्तम्भ (Columns) उसके दूसरे क्रमांक को।

अब हम मैट्रिक्स बनाने की इस प्रक्रिया को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेगें:-

माना एक निरीक्षक ने आलेख पत्र पर श्रेणी क्रमांक का अंकन 3, 5, 4, 10, 6, 2, 6, 1, 8, 3 किया। इस रिकॉर्ड से पहले और बाद में 10 अंकित करके यदि युग्म बनाने का प्रयत्न किया जाये तो उसका रूप निम्न प्रकार होगा :-

तालिका
श्रेणी क्रमांको का युग्म बनाना
(Pairing of The Series)

निरीक्षण श्रेणी क्रम (Original Series)		युग्म (Pairs)	
	10	10	1
3	3	3	2
5	5	5	3
4	4	4	4
10	10	10	5
6	6	6	6
2	2	2	7
6	6	6	8
1	1	1	9
8	8	8	10
3	3	3	11
	10	10	
(1)	(2)	(3)	

युग्म बनाने के लिए श्रेणीक्रम
(Series for Pairing)

अन्त : क्रिया मैट्रिक्स तालिका
(Interaction Matrix Table)

Category	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	Total
1								/			1
2						/					1
3					/					/	2
4										/	1
5				/							1
6	/	/									2
7											0
8			/								1
9											0
10			/			/					2
Total	1	1	2	1	1	2	0	1	0	2	11

मैट्रिक्स तालिका के अंकन की व्याख्या (Explanation About)

प्रथम क्रम युग्म (Sequence Pair) 10, 3 के लिये दसवीं पंक्ति (Row) तथा ... स्तम्भ (Column) को मिलाने वाले कोष्ठ (Cell) में आवृत्ति अंकित की गई है। ... युग्म 3, 5 को तीसरी पंक्ति तथा पाँचवें स्तम्भ को मिलाने वाले कोष्ठ (Cell) में Ta... किया गया है। इसी प्रकार युम्मों की आवृत्तियाँ अंकित की गई है।

मैट्रिक्स की रचना ठीक हुई है या नहीं इसकी जाँच के लिये यह पता करना होगा कि पंक्तियों और स्तम्भों की आवृत्तियों के अलग-अलग योग का कुल योग दोनों ओर से गणन करने पर एक ही हो। आवृत्तियों का यह कुल योग श्रेणी क्रमांक की कुल संख्या (दोनों 10 अतिरिक्त सहित) से एक कम होगा। इस उदाहरण में यहाँ कुल 12 श्रेणी क्रमांक हैं। इसलिये आवृत्तियों का योग 12 - 1 = 11 होना चाहिये जो यहाँ है। अतः मैट्रिक्स की रचना ठीक है।

3. अन्त: क्रिया मैट्रिक्स की व्याख्या (Explanation of Interaction Matrix)

इस कार्य को डिकोडिंग (Decoding) कहा जाता है। इसमें अन्त: क्रिया मैट्रिक्स की व्याख्या करके शिक्षक व्यवहार तथा कक्षा अन्त: क्रिया का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया जाता है। यह विश्लेषण दो प्रकार से होता है:-

1. संख्यात्मक/परिमाणात्मक (Quantitative)
2. गुणात्मक (Qualitative)

इसी प्रकार मैट्रिक्स की व्याख्या संख्यात्मक और गुणात्मक दो रूपों द्वारा की जा सकती है।

शिक्षण व्यवहार का परिमाणात्मक विश्लेषण (Quantitative Analysis of Teacher Behaviour)

इस विश्लेषण में चार विधियों का प्रयोग किया जाता है :-

1. अन्त: क्रिया श्रेणी-विधि (Methods of Interaction Categories)
2. अन्त : क्रिया क्षेत्र-विधि (Methods of Areas of Interaction)
3. व्यवहार अनुपात-विधि (Methods of Behaviour Ratios)
4. अन्त : क्रिया चर विधि (Methods of Interaction Variables)

1. अन्त: क्रिया-श्रेणी विधि (Method of Interaction Categories) : यह अन्त: क्रिया मैट्रिक्स की व्याख्या करने की समुचित व सरल विधि है। अलग-अलग

श्रेणियों के आवृत्ति योग तथा कुल योह को ध्यान में रखकर प्रत्येक श्रेणी के आवृत्ति योग का प्रतिशत मूल्य जानने का प्रयत्न किया जाता है। एक अध्यापक ने एक विशेष श्रेणी व्यवहार का अन्य श्रेणी व्यवहारों की तुलना में कितना कम या अधिक प्रयोग अपने शिक्षण में किया है, यह जानने का प्रयत्न इस विश्लेषण में किया जाता है। जैसे-यदि श्रेणी व्यवहार के शिक्षण के दौरान एक बार ही आवृत्ति हुई है। व्यवहार आवृत्तियों का कुल योग 11 है। अत: अपेक्षित प्रतिशत $\frac{1}{11} \times 100 = 9{\cdot}09$ (लगभग) होगा। इसी प्रकार द्वितीय श्रेणी के लिये यह प्रतिशत $\frac{1}{11} \times 100 = 9{\cdot}09$ होगा। इन सभी प्रतिशतों की तालिकाबद्ध करने से उचित निष्कर्ष निकाले में काफी सहायता मिलती है:-

व्याख्या के लिये श्रेणियों का आवृत्ति का प्रतिशत
(Percentage of the Categories Frequency for Explanation)

स्तम्भ (Columns)	1st	2nd	3rd	4th	5th	6th	7th	8th	9th	10th	Total
प्रतिशत (Percentages)	9.09	9.09	18.18	9.09	9.09	18.18	0	9.09	0	18.18	99.99

अन्त : क्रिया क्षेत्र विधि
(Method of Areas of Interaction)

अन्त : क्रिया मैट्रिक्स की उचित व्याख्या के लिये मैट्रिक्स को विभिन्न क्षेत्रों (Area) में विभाजित कर विश्लेषण करने का प्रयत्न किया जाता है। इस कार्य के लिये Encoding प्रक्रिया से प्राप्त अन्त: क्रिया मैट्रिक्स को फ्लैण्डर्स के अनुसार (Flander's 1963) 10 क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, सुविधा के लिये इनका नाम A, B, C, D, E, F, G, H, I और J रखकर हम इन क्षेत्रों का नीचे वर्णन करेगे:-

1. क्षेत्र A (Area A) : यह शिक्षक वार्ता के अप्रत्यक्ष प्रभाव को दर्शाता है। अप्रत्यक्ष प्रभाव कक्षा में छात्रों की सहभागिता (Participation) की स्वतन्त्रता का विस्तार करते हैं जबकि प्रत्यक्ष प्रभाव इस स्वतन्त्रता को सीमित या कम करते हैं। क्षेत्र A का सम्बन्ध 1 से 4 तक श्रेणी व्यवहारों से होता है। अत: इसकी गणना करने के लिये 1, 2, 3 और 4 श्रेणियों से सम्बन्धित स्तम्भों (Columns) के आवृत्तियों के योग की सहायता ली जाती है।

2. क्षेत्र B (Area B) : इसमें शिक्षक बातचीत का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। इसमें 5, 6, 7 श्रेणियों से सम्बन्धित स्तम्भों के आवृत्ति योगी का योगफल निकालकर मैट्रिक्स योग के सन्दर्भ में प्रतिशत ज्ञात किया जाता है।

3. क्षेत्र C (Area C) : इस क्षेत्र में छात्रवार्ता का प्रतिनिधित्व किया जाता है। इसकी गणना 8 और 9 श्रेणियों के प्रतिशत योग करने द्वारा होती है।

4. क्षेत्र D (Area D) : इस क्षेत्र मौन व अस्त-व्यस्तता श्रेणी का प्रतिनिधित्व किया जाता है। इसकी गणना के लिये श्रेणी 10 की आवृत्तियों का योग लिया जाता है।

5. क्षेत्र E (Area E) : यह क्षेत्र 1, 2 और 3 श्रेणियों से सम्बन्धित 9 कोष्ठों (Cells) से सम्बन्धित है। भावनात्मक स्तर पर एक अध्यापक के अपने विद्यार्थियों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार का यह क्षेत्र परिचय देता है। इसमें (1, 1) (1, 2) (1, 3), (2, 1) (2, 2), (2, 3), (3, 1), (3, 2) और (3, 3) आवृत्तियों की मैट्रिक्स का योग किया जाता है।

6. क्षेत्र F (Area F) : यह क्षेत्र 6 और 7 श्रेणियों से सम्बन्धित 4 Cells (कोष्ठों) का प्रतिनिधित्व करता है। एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों को निर्देश देता है, आलोचना आदि करने में अनेत समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसकी गणना विशिष्ट 4 कोष्ठों (Cells) (6, 6), (6, 7) (7, 6) और (7, 7) में अंकित आवृत्तियों का मैट्रिक्स योग से प्रतिशत ज्ञात की जाती है।

7. क्षेत्र G (Area G) : इस क्षेत्र में छात्र-वार्ता समाप्त होने के बाद अप्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में शिक्षक द्वारा की जाने वाली अनुक्रियाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यह क्षेत्र मैट्रिक्स के (8, 1), (8, 2), (8, 3) (9, 1) (9, 2) और (9, 3) कोष्ठों (Cells) का प्रतिनिधित्व करता है।

8. क्षेत्र H (Area H) : छात्रा वार्ता के समाप्त होने पर प्रत्यक्ष प्रभावों के रूप में शिक्षक द्वारा की जाने वाली अनुक्रियाओं को यह क्षेत्र प्रदर्शित करता है। इसमें 6 कोष्ठी (Cells) की आवृत्तियों की मैट्रिक्स के योग द्वारा प्रतिशत ज्ञान किया जाता है। इस क्षेत्र में (8, 6) (8, 7) (9, 6) और (9, 7) से सम्बन्धित मैट्रिक्स का भाग आता है।

9. क्षेत्र I (Area I) : यह क्षेत्र शिक्षक व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता है। इस क्षेत्र की मैट्रिक्स में (4, 7) (4, 1) (5, 8) और (5, 9) चार कोष्ठों (Cells) का भाग आता है। इन चार कोष्ठों के योग द्वारा प्रतिशत ज्ञान की जाती है।

10. क्षेत्र J (Area J) : इस क्षेत्र में छात्र वार्ता से सम्वन्धित स्वोप क्रम (Initiation) या अनुक्रिया (Response) अथवा एक के बाद दूसरे इसी प्रकार के व्यवहारों का प्रतिनिधित्व इस क्षेत्र द्वारा किया जाता है। मैट्रिक्स में (8, 8) (8, 9) (9, 8) और (9, 9) इन कोष्ठों (Cells) को प्रदर्शित किया जाता है।

व्यवहार अनुपात विधि
(Method based on Behaviour Ratios)

अन्तः क्रिया के दौरान घटित विभिन्न व्यवहारों की पारस्परिक तुलना के लिये व्यवहार अनुपात विधि का प्रयोग किया जाता है। शिक्षक का व्यवहार शिक्षण के दौरान कैसा रहा इसका विश्लेषण व्यवहार अनुपात विधि द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के व्यवहारों का वर्णन निम्न प्रकार है :-

1. शिक्षक-वार्ता अनुपात विधि (Teacher Talk Ratio-TTR) : कक्षा शिक्षण में शिक्षक-वार्ता का कितने समय तक योगदान रहा या शिक्षक का कक्षा में कितना वर्चस्व रहा। इसी पहचान शिक्षक कथन अथवा शिक्षक वार्ता के प्रतिशत अनुपात के आधार पर आसानी से की जा सकती है।

शिक्षक कथन या शिक्षक वार्ता अनुपात को ज्ञात निम्न सूत्र द्वारा किया जाता है-

$$TTR = \frac{(1+2+3+4+5+6+7)}{N} \times 100$$

इस सूत्र द्वारा शिक्षक-वार्ता अनुपात ज्ञात करने के लिये प्रथम 7 श्रेणियों की आवृत्तियों के योग में मैट्रिक्स की कुल आवृत्तियों के योग का भाग देकर 100 से गुणा किया जायेगा।

2. अप्रत्यक्ष शिक्षक-वार्ता अनुपात (Indirect Teacher Talk Ratio-ITTR) : छात्रों को कक्षा-सहभाग (Participation) के लिये प्रोत्साहित करने वाले शिक्षक व्यवहारों को अप्रत्यक्ष शिक्षा वार्ता में रखा जाता है। इसका सूत्रा निम्न प्रकार है-

$$ITTR = \frac{(1+2+3+4)}{N} \times 100$$

3. प्रत्यक्ष शिक्षक वार्ता (Direct Teacher Talk Ratio-DTTR) : कक्षा में छात्र सहयोग में बाधा डालने वाले शिक्षक व्यवहार की सापेक्ष स्थिति का ज्ञान कराने के लिये इस अनुपात का प्रयोग किया जाता है। इसका सूत्र निम्न प्रकार है:-

$$DTTR = \frac{(5+6+7)}{N} \times 100$$

4. छात्र-वार्ता अनुपात (Pupil Teacher Talk Ratio-PTR) : इसमें शिक्षक द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर तथा अपने विचारों और भावनाओं छात्रों के सामने अभिव्यक्त करना शामिल होते है। इसका गणनां सूत्र है:-

$$PTR = \frac{(8+9)}{N} \times 100$$

5. मौन या अस्तव्यस्तता अनुपात (Silence or Confusion Ratio-SCR) : यह अनुपात कक्षा में स्थित मौन और अस्त-व्यस्तता के वातावरण की ओर संकेत करता है। इसका गणना सूत्र है:-

$$SCR = \frac{(10) \times 100}{N}$$

Note : 10 का अर्थ है 10वीं श्रेणी।

6. अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष व्यवहार अनुपात (Indirect to Direct Ratio-IDR) : शिक्षक के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष व्यवहार की तुलना की जाती है। इसका गणना सूत्र निम्न प्रकार है:-

$$TDR = \frac{(1+2+3+4)}{(5+6+7)} \times 100$$

अर्थात 1 से 4 तक आवृत्तियों के योग को 5 से 7 आवृत्तियों के योग से भाग देकर 100 से गुणा करके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष व्यवहार का अनुपात ज्ञात किया जाता है।

7. छात्र-स्वोपक्रम अनुपात (Pupil-Initiation Ratio-PIR) : इस अनुपात में कक्षा अन्त: क्रिया में शिक्षक का व्यवहार छात्र वार्ता के पहलु को कितने आगे ले जा रहा इसका वर्णन किया जाता है। इसका गणना सूत्र निम्न है:-

$$PIR = \frac{(9) \times 100}{(8+9)}$$

$$\text{अर्थात्} = \frac{\text{श्रेणी 9 की आवृत्तियाँ} \times 100}{\text{श्रेणी 8 और 9 की आवृत्तियाँ} \times 100}$$

8. शिक्षक-अनुक्रिया अनुपात (Teacher-Response Ratio-TRR) : शिक्षक अनुक्रिया अनुपात निकालने के लिये शिक्षक वार्ता श्रेणी के 1, 2 और 3 श्रेणियों की आवृत्तियों के योग को श्रेणी 1, 2, 3, 6 और 7 की आवृत्तियों के योग से भाग देकर 100 से गुणा किया जाता है। गणना सूत्र निम्न प्रकार है:-

$$TRR = \frac{(1+2+3)}{(1+2+3+6+7)} \times 100$$

9. शिक्षक प्रश्न अनुपात (Teacher Question Ratio-TQR) : कक्षा में विषय-वस्तु शिक्षण से सम्बन्धित शिक्षक व्यवहार की दो श्रेणियां हैं-4 और 5 । प्रश्न पूछकर छात्रों से उत्तर प्राप्त करने की श्रेणी 4 है। इस प्रश्न-व्यवहार का अनुपात ज्ञात करने का सूत्र निम्न प्रकार है।

सूत्र : $TQR = \frac{(4) \times 100}{(4+5)}$

यहाँ (4) का अर्थ चौथी श्रेणी की आवृत्ति और (4 + 5) का अर्थ है चौथी श्रेणी की आवृत्तियों के योग से।

फ्लैण्डर्स अन्तः क्रिया विश्लेषण प्रणाली के गुण (Advantages of Flander's Interaction Analysis System)

इस प्रणाली के गुण निम्नलिखित है :-

1. यह एक विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ तकनीक है।
2. इसके द्वारा शिक्षक व्यवहार के प्रारूप निर्धारण में सहायता मिलती है।
3. कक्षा की वास्तविक स्थिति का विश्लेषण अच्छी प्रकार किया जा सकता है।
4. इसके द्वारा नयी शिक्षण-विधियों का ज्ञान होता है।
5. शिक्षक-व्यवहार ने प्रतिपुष्टि (Feedback) द्वारा पर्याप्त संशोधन किया जा सकता है।
6. शिक्षण-प्रशिक्षण से सम्बन्धित शोध कार्य करने के लिये इस तकनीक का प्रयोग किया जाता है।
7. इस तकनीक द्वारा शिक्षण-व्यवहार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है।

फ्लैण्डर्स अन्त : क्रिया विश्लेषण प्रणाली के दोष (Limitations of Flander's Interaction Analysis)

इसके दोष निम्न प्रकार है :-

1. इसमें शिक्षक के सम्पूर्ण व्यवहार का विश्लेषण नहीं किया जाता। सिर्फ शाब्दिक व्यवहार का ही विश्लेषण किया जाता है।
2. इसमें शिक्षण व्यवहारों को निरीक्षणकर्त्ता मनचाहे ढंग से वर्गीकृत करता है।
3. 10 श्रेणियों में से 7 श्रेणियाँ शिक्षक वार्ता से सम्बन्धित होती है। केवल 2 ही श्रेणियाँ छात्र वार्ता से सम्बन्धित है। अतः शिक्षक व छात्र के बीच पूर्णतः सन्तुलन नहीं होता।
4. यह प्रणाली समय, शक्ति और धन सभी दृष्टियों से खर्चीली होती है।
5. यह प्रणाली शिक्षक प्रधान होती है।

8

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी (Information and Communication Technology or ICT)

परिचय (Introduction)

आज हम एक ऐसे ज्ञान आधारित विश्वव्यापी संसार में रह रहे है जहाँ, ज्ञान व्यक्ति की एक बहुत बड़ी शक्ति, अर्थिधता व योग्यता है तथा एक राष्ट्र का निर्माता है। चारों और ज्ञान का विस्फोट हो रहा है नए अनुसन्धान, अविष्कार तथा तकनीकी का विकास, ज्ञान-भण्डार में बृद्धि एवं विकास कर रहे है। ऐसी स्थिति में, हमें नवीन तकनीकों की आवश्यकता हैं जो हमें इस तीव्रता से विकास कर रहे है। ऐसी स्थिति में हमें नवीन तकनीकों की आवश्यकता है जो हमें इस तीव्रता से विकास में ज्ञान प्राप्ति प्रक्रिया पर अधिकार तक पहुँचा सके।

यह सब कुछ सूचना तकनीकी (Information Technology) तथा सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी द्वारा ही सम्भव है।

Meaning and Definition of Information and Communication Technology :–

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी, तीन शब्दों के सुमेल से बना है :- सूचना, सम्प्रेषण एवं तकनीकी। इसलिए इसका सम्पूर्ण अर्थ, समझने के लिए इन तीनों शब्दों की व्याख्या आवश्यक है:-

1. सूचना (Information) : साधारण शब्दों में सूचना का अर्थ एक विचार व संदेश है, जो एक व्यक्ति दूसरों तक पहुँचाना चाहता है। आंकड़े तथा सूचना, एक दूसरें से सम्बन्धित होते है। आंकड़ां वह शब्द है जो किसी कारोबार की क्रियाओं या व्यक्ति या किसी भी सजीव, निर्जीव वस्तु के किसी गुण का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। आंकड़े कोई भी तथ्य, अवलोकन, धारणा, नाम, समय, तिथियों, मूल्य, पुस्तक, अंक, प्रतिशत, ग्रेड आदि हो सकते है। आंकड़ों का संक्षिप्त रूप ही सूचना कहलाता है।

2. सम्प्रेषण (Communication) : सम्प्रेषण एक अन्तः व्यक्तिक प्रक्रिया है। जिसमें मौखिक प्रतीकों (शब्दों, वाक्यों आदि) तथा अमौखिक प्रतीकों (शारीरिक मुद्राओं, चेहरें की अभिव्यक्ति आदि) के दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा विभाजित किया जा सकता

है व समझा जा सकता है। यह दो प्रशिय प्रक्रिया है। जो दूसरों के साथ विचारों, भावों, विश्वासों व सूचनाओं को सांझा करने में सहायता करती है तथा प्रयोग में लाई जाती है।

3. तकनीकी (Technology) : साधारण शब्दों में, वैज्ञानिक ज्ञान के प्रयोगात्मक रूप को तकनीकी कहा जाता है। यह उत्पादन के निर्माण की कला है। यद्धपि (तकनीकी शब्द का प्रयोग साधारणत:) मशीनों व यंत्रों आदि के लिए किया जाता है, परन्तु यह शब्द किसी भी प्रायोगिक-कार्य में, प्रयुक्त होने वाले वैज्ञानिक ढंगों की ओर संकेत करता है।

"इस प्रकार, सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी तीनों शब्दों सूचना, सम्प्रेषण व तकनीकी को मिल कर बना है, जिसका प्रमुख उद्देश्य, तकनीकी का प्रयोग करके विचारों, भावनाओं व सूचना का सम्प्रेषण करना है। इस प्रकार सूचना एवं, संप्रेषण तकनीकी से अभिप्राय, "औजारों-उपकरणों तथा अनुप्रयोग आधार से युक्त एक ऐसी तकनीकी से है जो सूचना के संग्रहण, भंडारण, पन: प्रस्तुतीकरण उपयोग स्थानान्तरण, संश्लेषण एवं विश्लेषण, आत्मीकरण आदि के विश्वसनीय एवं यथार्थ संपादन में सहायक सिद्ध होते हुये उपयोगकर्त्ता को अपना ज्ञानपर्द्धन धरने तथा उसके संप्रेषण तथा निर्णय व समस्या समाधान में सहायक हों।" ("Information and Communication technology is that type of technology employed in the shape of tools, equipments and application support which helps in the collection, storage, retrieval, use, transmission, manupulation and dissemination of information as accurately and efficiently as possible for the purpose of enriching the knowledge and develop communication decision making as well as problem solving ability of the user.")

परिभाषा (Definition)

सूचना व सम्प्रेषण तकनीकी (ICT), उपकरणों (हार्डवेयर) का एक ऐसा संयोग है जो इलैक्ट्रोनिक माध्यमों का प्रयोग करते हुए, सूचना की रचना, सुधार, पुन: प्राप्ति (Retrieval), भण्डारण एवं सम्प्रेषण में सहायता करता है। इस प्रकार, सूचना तकनीकी में कम्प्यूटर एवं सम्प्रेषण तकनीकी (Computing and Communication Technology) को शामिल किया जाता है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के विभिन्न पक्ष हैं :- हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर, सम्बद्धता, दूर-संचार, विज्ञान व मानव-कम्प्यूटर इंटर फेस।

• **यूनेस्कों के अनुसार,** "वैज्ञानिक, तकनीकी एवं इंजीनियरिंग अनुशासन तथा प्रबन्धकीय तकनीकें जो सूचना को सम्भालने, संशोधित व प्रयोग के लिए इस्तेमाल की जाती है, कम्प्यूटर व उनका मानव व मशीनों के साथ मन्तक्रिया तथा सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों का आपसी मेल ही सूचना सम्प्रेषण तकनीकी है।"

• **स्मिथ व कामबैल के अनुसार,** "यह तकनीकी, उत्पादों तथा तकनीकों का एक ऐसा समूह है जो सूचना प्रबन्ध को नए इलैक्ट्रोनिक आयाम प्रदान करता है।"

इस प्रकार, सूचना-सम्प्रेषण तकनीकी, सूचना का निर्माण, एकत्रता संसाधित भण्डारण, प्रस्तुतीकरण व प्रसार के साथ, तथा उन सभी प्रक्रियाओं व उपकरणों के साथ जुड़ी हुई है। जो यह सभी कुछ संपन्न करते है। यह कम्प्यूटर के हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर तथा दूर-संचार की आधुनिक संरचना पर दृढ़तापूर्वक निर्भर है। इंटरनैट तथा ब्रॉडबैंड सम्पर्कों की उत्पत्ति के कारण, इसे अब एक नया नाम, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी (ICT) प्रदान किया गया है।

ICT and Education : शिक्षा में सूचना-सम्प्रेषण तकनीकी का अर्थ, शिक्षण व अधिगम के सभी पक्षों में अंकीय उपकरणों (Digital Equipment) के प्रयोग से लिया जाता है।

यह आजकल, लगभग प्रत्येक उन्नत शिक्षा संस्था में उपलब्ध है तथा शिक्षा के क्षेत्र में इसका काफी प्रयोग हो रहा है।

1980 के लगभग बड़े स्वर पर इसका प्रयोग विद्यालयों में भी होना आरम्भ हो गया। इसके प्रयोग से शिक्षा के प्राचीन ढंगों व विधियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया।

शिक्षा के क्षेत्र में, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग के निम्नलिखित कारण है :-

1. सचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष जैसे कि कारोबार, शिक्षा, अवकाश समय व स्वास्थ्य आदि को बहुत प्रभावित किया है। तथा आधुनिक जीवन का एक अनिवार्य अंग बन चुकी है। इसलिए, नयी पीढ़ी को इसके प्रयोग में निपुणता प्राप्त करनी आवश्यक है। आधुनिक समाज को इसकी अधिक आवश्यकता है।
2. उत्पादन में वृद्धि के लिए- सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग के साथ काम-काज में वृद्धि होती है। प्रबन्धकीय ढांचे में निपुणता लाने से कार्य करने की शक्ति में वृद्धि होती है। इसके साथ शिक्षक व विद्यार्थियों के समय व शक्ति का उचित प्रयोग होता है।
3. अधिगम में गुणवता लाने के लिए- इसके प्रयोग द्वारा प्रभावशाली अधिगम वातावरण का निर्माण किया जा सकता है, जिसके द्वारा विद्यार्थियों के जीवन से सम्बन्धित अधिगम कौशलों व आदतों में सुधार होता है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकियों का अस्तित्व जैसा कि अभी बताया गया है कि प्राचीन काल से है। इस तरह इन तकनीकियों को प्राचीन अथवा परम्परागत और आधुनिक तकनीकियों में बाँट कर समझा जा सकता है। इन दोनों प्रकार की तकनीकियों में जिस प्रकार के साधन, उपकरण तथा आधार एवं अनुप्रयोग सामग्री का उपयोग होता है उनका स्वरूप कुछ इस प्रकार का है।

1. परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकियाँ :

- मुद्रित साधन जैसे पाठ्यपुस्तक सन्दर्भ ग्रन्थ, अन्य साहित्य एवं पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें आदि विद्यालय और अन्य सार्वजनिक पुस्तकालयों से उपलब्ध पठन सामग्री।
- मौखिक सूचनायें एवं ज्ञान जिसे अध्यापकों, सहपाठियों, बड़ी कक्षाओं में पढ़ने वाले अन्य विद्यार्थियों, मित्रों, माता-पिता तथा परिजनों एवं समाज के अन्य सदस्यों के औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप में प्राप्त किया जा सकता है।
- चित्रात्मक सहायक साधन जैसे चित्र, चार्ट, मानचित्र, आरेख, पोस्टर तथा कार्टून आदि।
- त्रिआयामी सहायक साधन जैसे नमूने मॉडल, कठपुतलियाँ, मैकअप इत्यादि।

2. आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकियाँ : इसमें से प्रमुख का निम्न प्रकार उल्लेख किया जा सकता है :-

- डिजीटल विडियो कैमरा
- मल्टीमीडिया पर्सनल कम्प्यूटर (PC), लैपटॉप तथा नोट बुक
- एपलीकेशन सॉफ्टवेयर जैसे वर्ड प्रोसेसिंग स्प्रेड शीट, पावरपोइन्ट, सिमुलेशन तथा स्पीच टिकोनीशन।
- मल्टीमीडिया प्रोजैक्टर।
- (LAN) (MAN) (WAN)
- वीडियो कार्ड व वेब कैमरा या डीजीटल वीडियो कैमरा।
- कम्प्यूटर डैटावेस तथा डेटा प्रोसेसिंग प्रक्रम।
- डीजीटल लाइब्रेरियां।
- ई-मेल इन्टरनैट तथा (WWW)

- हाइपरमीडिया तथा हाइपरटैकस्ट रिसोर्सज।
- (IVD) (IRS)
- वरचुअल क्लासरूम तथा वरचुअल रिअलटी।

ICI की विशेषताएँ
(Advantages of ICI)

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के शिक्षा में लाभों में विभाजित किया जा सकता है।

(*i*) शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए लाभ

(*ii*) शिक्षा प्रणाली के परिवर्तन में लाभ

1. विद्यार्थियों के लिए :

(*i*) सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी विद्यार्थियों की शिक्षा के शैषाणिक तथा गैर शैक्षाणिक क्षेत्रों से अनुदेरान प्राप्त करने में सहायक है।

(*ii*) विद्यार्थियों को अनिवार्य प्रशिक्षण के अवसर प्राप्त होते है, जिनके द्वारा वह जानकारी दो स्वः सुधार के लिए प्राप्त करके प्रयोग में लाता है ?

(*iii*) उन्हें सूचना के प्रांसगिक स्त्रोतों, आवश्यक सूचना को खोजने व प्राप्त करने के ढंग व साधन की जानकारी प्राप्त होती है ?

(*iv*) उचित निर्णय करने में सहायक

(*v*) समस्याओं का समाधान में उपयोगी

2. शिक्षकों के लिए :

(*i*) कार्य में उपयोगी ।

(*ii*) उचित शिक्षण सामग्री व तकनीकों चयन में सहायक

(*iii*) दैनिक कार्यो से कुछ राहत प्राप्त होती है

(*iv*) विद्यार्थियों को अधिगम में तत्पर कर सकता है।

3. परामर्शदाताओं के लिए :

(*i*) सूचना व संम्प्रेषण का प्रशिक्षण

(*ii*) विकास कार्यों के बारे में जानकारी

(*iii*) जानकारी के लिए थोड़ा समय लगता है।

(*iv*) कार्यो व क्रियाओं के बारे में सही निर्णय।

4. परामर्शदाताओं के लिए लाभदायक :

- सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का प्रशिक्षण, शिक्षा प्रबन्धकों व योजनाकारों को, उनके व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को उचित ढंग से निभाने में सहायता प्रदान करता है।
- नए अविष्कारों तथा विकास कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है तथा वह अपनी योजनाओं उन परिवर्तनों के अनुरूप ढाल सकते है।
- उन्हें शिक्षा के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित जानकारी थोड़े समय में ही प्राप्त हो सकती है।
- वह शिक्षा से सम्बन्धित कार्यो व क्रियाओं के बारे में सही निर्णय ले सकते है।

5. शैक्षिक शोधकर्त्ता के लिए उपयोगी :

- सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी द्वारा शोधकत्ताओं के लिए अनिवार्य साधन व आंकड़े सरलता से प्राप्त हो जाते है।
- वह किसी के साथ भी, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के साधनों द्वारा, अन्तर्क्रिया करके आंकड़े एकत्र कर सकते है।
- उन्हें शिक्षा के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार की जानकारी तैयार मिल सकती है।

Advantages for the Change of Educational System

1. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग द्वारा हमारी युवा पीढ़ी को, इस वेश्वीकरण के युग में हो रहे नवीन परिवर्तनों का ज्ञान देकर भविष्य में आने वाले चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार किया जा सकता है।
2. इसके प्रयोग द्वारा, वर्तमान शिक्षा प्रणाली को ज्ञान आधारित सूचना-सम्पन्न समाज के निर्माण के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।
3. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी शैक्षिक सुधारों के लिए एक प्रेरक शक्ति बन गई है। तथा यह राष्ट्रीय शिक्षा की नीतियों व योजनाओं का एक अटूट अंग बन गई है।
4. कॉल-लाईन शिक्षा ने इरवर्ती शिक्षा की विधियों व ढंगों में परिवर्तन किया है।
5. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने पुस्तकाल्यों के कार्यों में परिवर्तन किया है। अब वह स्व: चालित व स्व: संचालित हो गए है।

6. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का प्रयोग, बच्चों को अनेक स्तरों पर प्रभावशाली सम्प्रेषण में व्यस्त रहने के अवसर प्रदान करती है।
7. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी उस व्यावसायिक एकांकीकरण को तोड़ने में सफल हुई है जिसमें अधिक मात्रा में शिक्षक फंसे हुए है।
8. ऑन-लाइन कक्षा-कक्ष की शिक्षा अधिक सफल हुई है जिसमें अधिक मात्रा में शिक्षक फंसे हुए है।
9. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग द्वारा आधुनिक शिक्षक तैयार किए जा सकते है।
10. सूचना के स्त्रोतों तक सुगमता से पहुँच, शोध भावना का विकास करती है।
11. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी द्वारा आधुनिक शिक्षक तैयार किए जा सकते है। शिक्षकों को नए अनुदेशनात्मक स्त्रोतों तथा उनकी उपलब्धि के बारे में पता लगता है।
12. शिक्षकों व विद्यार्थियों के मध्य सम्बन्ध अन्तः क्रियात्मक व मार्गदर्शन वाले बनते है, न कि शिक्षक की ओर से विद्यार्थी को सूचना के स्थानांतरण करने वाले।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग से सम्बन्धित कमियाँ/दोष

1. खर्चीली : सूचना व सम्प्रेषण तकनीकी का स्कूलों में प्रयोग काफी महंगा पड़ता है। अधिकतर स्कूल, तकनीकी के उपकरणों का क्रय, रख-रखाव तथा प्रयोग काफी मंहगा पड़ता है। आने वाले खर्चों को वहन नहीं कर सकते।

2. प्रयोग सम्बन्धी अज्ञानता : शिक्षकों स्कूलों के मुखिया। प्रमुख तथा अधिकारियों में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग व लाभों के बारे में, आज तक अज्ञानता पाई जाती है? परम्परागत विधियों को अच्छा समझते हैं।

3. प्रभ्रत्त्व खोने का डर : कुछ शिक्षकों के मन में यह डर समाया हुआ है कि सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग से, शिक्षण-अधिगम क्रियाओं पर से उनका प्रभ्रत्त्व समाप्त हो जाएगा तथा उनकी नौकरी समाप्त हो जाएगी।

4. रूढ़िवादी विचार : कुछ शिक्षक रूढ़िवादी है, जो पुरानी बातों व विधियों में विश्वास रखते है। शिक्षा क्षेत्र में भी वह, शिक्षा के पुराने मॉडलों को पसन्द, वरीयता प्रदान करते है तथा ICT के प्रयोग से इंकार करते है।

इसे समान्यतः टैक्नोफोबिया कहा जाता है।

5. **विद्यार्थियो की भूमिका :** अधिकतर विद्यार्थी शिक्षा के दौरान सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग को अच्छा नहीं समझते। वह पुरानी शिक्षण विधियों को अच्छा समझते है, क्योंकि उनमें जटिलता नहीं है।

6. **वर्तमान शिक्षा प्रणाली की मांग :** हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग की अधिक सम्भावनाएँ नहीं है। स्कूलों का निर्धारित पाठ्यक्रम, परीक्षा व मूल्यांकन व्यवस्थाएँ, उपलब्ध अनुदेशन सामग्री व स्कूलों में उपकरण को प्रोत्साहित नहीं करते।

7. **प्रबन्धकों का व्यवहार :** सामान्यत: हमारे स्कूलों के प्रबन्धकों व अधिकारियों का व्यवहार, शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग के अनुकूल नहीं है। वह इस सम्बन्ध में काम करने से कतराते है।

8. **शिक्षक-प्रशिक्षण प्रणाली :** हमारी वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण प्रणाली, नए शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रणाली, नए शिक्षकों को प्रशिक्षण के दौरान, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के प्रयोग व संरक्षण के बारे में कोई कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं करती। पुराने शिक्षकों के लिए भी इससे सम्बन्धित सेमिनार कार्यशालाएं आदि नही लगाए जाते।

9. **उचित सॉफ्टवेयर की कमी :** हमारे देश में, उचित व सही सॉफ्टवेयरों की कमी पायी जाती है। यह मुख्यत: अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध है। बहुभाषी भारत में इसका प्रयोग सम्भव नहीं है।

10. **समय की कमी :** संस्था में कम्प्यूटरों की एक निश्चित संख्या होने के कारण, विद्यार्थियों को स्कूलों में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के कौशलों के अभ्यास के लिए कम समय मिलता है।

CT Competencies for Teachers

यह अच्छी तरह समझ लिया जाना चाहिए कि वर्तमान युग सूचना एवं सम्प्रेषण कनीकी का युग है। आज के समय में कोई भी विद्यालय ICT के प्रयोग से अछूता नहीं ICT में वह सब है जो एक अध्यापक लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार की प्रमुख सूचना एवं सम्प्रेषण अकिक्षमताओं का निम्न रूप में उल्लेख किया जा सकता

1. पर्सनल कम्प्यूटर लेपटॉप तथा कम्प्यूटर नोट बुक के उपयोग सम्बन्धी अकिक्षमतायें।
2. बड़े समूह के साथ अत: क्रिया करने हेतु एल.सी.डी. (LCD)– तकनीक से युक्त मल्टीमीडिया प्रोजैक्टर के उपयोग सम्बन्धी अभिक्षमता।

3. डिजीटल वीडियों कैमरा से सूचना सामग्री एकत्रित करने सम्बन्धी अभिक्षमता।
4. डिजीटल लाइबोरियों के प्रबन्धन एक उपयोग सम्बन्धी अभिक्षमता।
5. ई-मेल, इन्टरनैट तथा वर्ल्ड वाइड वेब के प्रबन्धन एवं उपयोग सम्बन्धी अभिक्षमता।
6. कम्प्यूटर सहाय और प्रबन्धित काफ्रेंसिंग (वीडियो तथा आडियो कांफ्रेंसिंग) के आयोजन एवं उपयोग सम्बन्धी अभिक्षमता।
7. कम्प्यूटर डेटाबेस था डेटा प्रोसेसिंग प्रक्रम जैसे सीडी रोम तथा DVD को अच्छी तरह काम में लाने सम्बन्धी अभिक्षमता।
8. विभिन्न प्रकार की भाषा प्रयोगशालाओं के संगठन और उपयोग करने सम्बन्धी अभिक्षमता।
9. वीडियो टैकस्ट, टैली टैकस्ट, इन्टर एक्टिव वीडियो टैकस्ट, इन्टर एक्टिव रिमोट इन्स्ट्रक्शन आदि के प्रबन्धन एवं उपयोग सम्बन्धी अभिक्षमता।
10. परम्परागत ढंग से सूचना प्रदान करने वाले के स्थान पर ज्ञान प्राप्ति में सहायक, पथप्रदर्शक तथा सक्रिय रूप से सहायक अधिगमकर्त्ता की भूमिका निभाने सम्बन्धी अभिक्षमता।
11. विद्यार्थियों में सृजनात्कम एवं रचनात्मक चिन्तन को बढ़ाना देने तथा स्वयं के प्रयत्नों से ज्ञान प्राप्ति की दिशा में मांगे बढाने सम्बन्धी अभिक्षमता।
12. वर्तमान युग के ICT सम्बन्धी नवाचारो जैसे ई-लर्निंग, एम लर्निंग, अवास्तविक कक्षा-कक्ष, ऑन लाइन एजुकेशन तथा दूरवर्ती शिक्षा आदि के प्रबन्धन एवं उपयोग सम्बन्धी अभिक्षमता।

इकाई – III
(Unit – III)

9. अधिगम संप्रत्यय महत्त्व, प्रकार एवं अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक
   (Learning Concept Importance, Types and Factor Affecting Learning)
   - ई-लर्निंग अधिगम (E-Learning)
   - एम-लर्निंग/अधिगम (M-Learning)
   - ऑनलाईन-लर्निंग (Online-Learning)
10. सीखने की शैली
    (Learning Style)

9

अधिगम संप्रत्यय महत्त्व, प्रकार एवं अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक (Learning Concept Importance, Types and Factor Affecting Learning)

जब एक बच्चा जन्म लेता है वह असहाय अवस्था में रहता है। वह दूसरों पर निर्भर रहता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, समाज के सम्पर्क में आता है वह अनेक चीजे सीखता है। सीखने की यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती है। अत: अधिगम अर्थात् सीखना मनुष्य का जन्मजात गुण है।

अधिगम का अर्थ (Meaning of Learning)

अधिगम एक सक्रिय और निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। जैसे- एक अबोध बालक पहली बार मोमबत्ती की लौ को छूता है तो उसका हाथ जल ज़ाता है। उस बालक के लिये यह एक कटु अनुभव होता है। जब दूसरी बार वह बालक मोमबत्ती देखता है तो वह लौ से दूर रहता है। इससे बालक यह सीख जाता है कि लौ को हाथ लगाया तो अवश्य ही हाथ जलेगा और पीड़ा होगी। इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुभवों के द्वारा एक व्यक्ति के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन होता है। अनुभवों द्वारा व्यवहार में परिवर्तन को सीखने की संज्ञा दी जाती है।

अधिगम की परिभाषायें (Definitions of Learning)

• **गेट्स व अन्य के अनुसार**- "अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाना ही अधिगम या सीखना है।"

("Learning in the modification of behaviour through experience and training.") —**Gates and other**

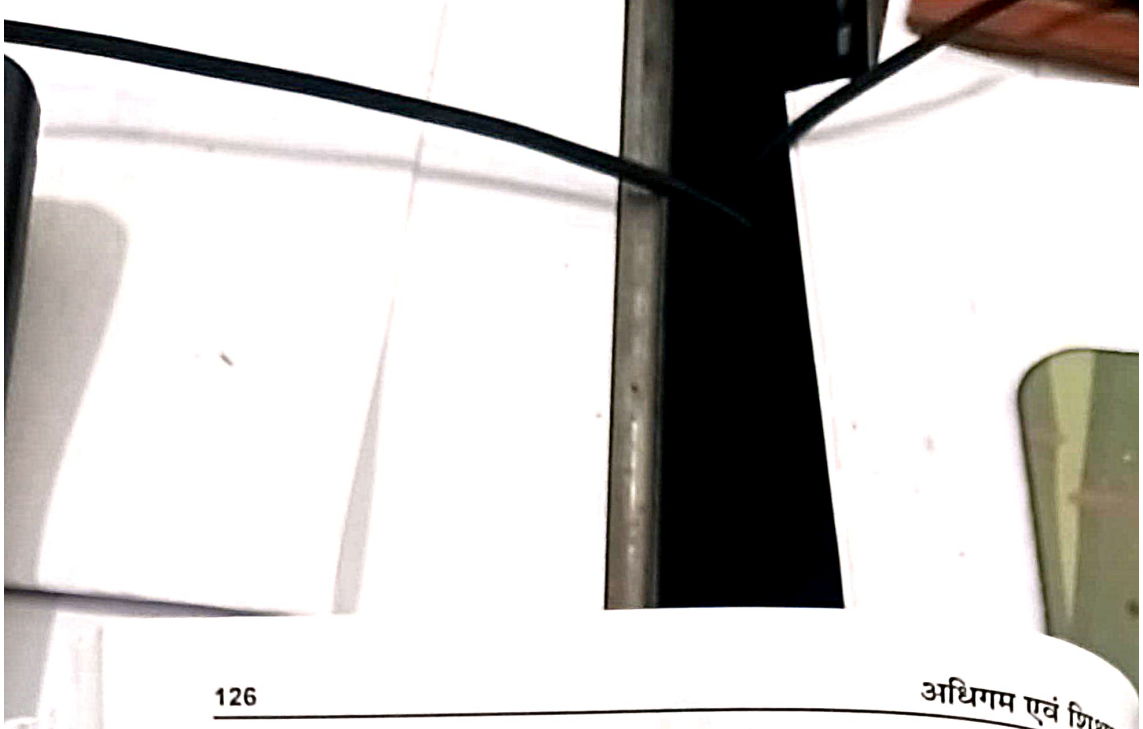

• **स्किनर के अनुसार**- "सीखना, व्यवहार में उत्तरोतर सामंजस्य की प्रक्रिया है।"

("Learning is a process of progressive behaviour adaption.") —**Skinner**

• **वुडवर्थ के अनुसार**- "नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं के प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया है।"

("The process of acquring new knowledge and new responces in the process of learning.") —**Woodworth**

• **क्रॉनबैक के अनुसार**- "अधिगम अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।"

("Learning is shown by a change in behaviour as a result of experience.") —**Cronback**

• **क्रो एवं क्रो के अनुसार**- "अधिगम आदतों ज्ञान एवं अभिवृत्तियों का अर्जन है।"

("Learning is the acquistion of habits, knowledge and attitudes.")

—**Crow and Crow**

अधिगम की प्रकृति
(Nature of Learning)

प्रत्येक मनुष्य जन्म लेते ही कुछ न कुछ सीखता रहता है। मनुष्य एक बुद्धिशील प्राणी है अत: उसके सीखने की प्रक्रिया अन्य प्राणियों से भिन्न होती है। सीखने की प्रकृति और विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है।
2. अधिगम सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार का होता है।
3. अधिगम द्वारा व्यवहार परिवर्तन होता है।
4. अधिगम प्रक्रिया एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है।
5. अधिगम मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है।
6. अधिगम द्वारा परिवर्तन स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार का होता है।
7. अधिगम व्यक्ति की क्रियाशीलता पर निर्भर करता है।
8. अधिगम एक विकास प्रक्रिया है जहाँ व्यक्ति को स्वयं प्रयास करना पड़ता है।

9. अधिगम का क्षेत्र व्यापक होता है।
10. अधिगम में स्थानान्तरण सम्भव होता है।
11. अधिगम द्वारा व्यक्ति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से अनुभव प्राप्त करता है।
12. अधिगम वंशानुक्रम और वातावरण दोनों पर निर्भर करता है।
13. अधिगम में संज्ञानात्मक भावात्मक और क्रियात्मक तीनों तत्व सम्मिलित होते है।
14. अभिप्रेरणा अधिगम को गति प्रदान करती है।

अधिगम के भेद एवं प्रकार (Types of Learning)

सीखने या अधिगम के भेद अथवा प्रकार निम्नलिखित है-

1. अभिग्रहण सीखना (Reception Learning)
2. अन्वेषण सीखना (Discovery Learning)
3. रटकर सीखना (Rote Learning)
4. अर्थपूर्ण सीखना (Meaningfull Learning)
5. वाचिक सीखना (Verbal Learning)
6. समस्या समाधान अधिगम (Problem Solving Learning)

1. अभिग्रहण सीखना (Reception Learning) : यह सीखना रटकर और समझकर दोनों प्रकार से हो सकता है। इसमें विद्यार्थी को शिक्षण सामग्री बोलकर या लिखकर दी जाती है। जिसे विद्यार्थी आत्मसात् कर लेता है।

2. अन्वेषण सीखना (Discovery Learning) : यह अधिगम अर्थपूर्ण ग्रहण करने के साथ-साथ रटकर भी सीखा जा सकता है। इसमें विद्यार्थी दी गई शिक्षण सामग्री में नये विचार या नया नियम लगाकर उसमें नयी खोज करता है।

3. रटकर सीखना (Rote Learning) : इसमें विद्यार्थी विषय सामग्री को बिना समझे सीखते है। जैसे- शब्दों का जोड़ सीखना, अक्षर या अंक जोड़ सीखना।

4. अर्थपूर्ण सीखना (Meaningfull Learning) : अर्थपूर्ण सीखने में दी गई शिक्षण सामग्री के सार तत्त्व को नियम के अनुसार समझकर सीखा जाता है। इस प्रकार का सीखना विशेष महत्त्व रखता है।

5. वाचिक सीखना (Verbal Learning) : इस प्रकार के सीखने में शब्दों, संकेतों, चिह्नों, प्रतिमाओं और प्रत्ययों को शामिल किया जाता है। इस प्रकार के शिक्षण में माता-पिता और अध्यापक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

6. समस्या समाधान अधिगम (Problem Solving Learning) : इस प्रकार के अधिगम में छात्र के सामने शिक्षा से सम्बन्धित समस्या प्रस्तुत की जाती है। इस समस्या के समाधान के लिये विद्यार्थी उपलब्ध साधनों का प्रयोग करके स्थिति तथा वातावरण में सम्बन्ध स्थापित करके समस्या समाधान करता है। इस प्रकार का अधिगम प्रयोग उच्च श्रेणी के पशुओं या वनमानुष पर किया जाता है।

अधिगम का महत्त्व
(Importance of Learning)

अधिगम मनुष्य के लिये एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। सीखना ही मनुष्य को जानवरों से अलग करता है। अधिगम ही मनुष्य को समाज में समायोजन करना व नैतिक मूल्य सीखाता है। अधिगम को ही शिक्षा के केन्द्रीय बिन्दु माना गया है।

अधिगम का महत्त्व निम्न प्रकार है :

1. अध्यापक को कक्षा में छात्रों को अधिक से अधिक विषय या पाठ को दोहराने का अवसर देना चाहिये।
2. अधिगम द्वारा छात्रों को आत्म-संतुष्टि मिलती है और वे अधिक से अधिक सीखते हैं।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Influencing Learning)

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों को पाँच वर्गों में बाँटा गया है-

1. विद्यार्थी से सम्बन्धित कारक
2. अध्यापक से सम्बन्धित कारक
3. विषय-वस्तु से सम्बन्धित कारक
4. वातावरण से सम्बन्धित कारक
5. अनुदेशन से सम्बन्धित कारक

1. विद्यार्थी से सम्बन्धित कारक
(Factors Related to Learner)

1. सीखने की इच्छा (Will to Learn) : यहाँ थार्नडाईक का तत्परता का नियम लागू होता है। यदि विद्यार्थी में सीखने की इच्छा होगी तो वह नवीन ज्ञान को शीघ्रता से सीखेगा। यदि वह सीखने के लिये तत्पर नहीं है तो शिक्षक के सामने गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाती है। सीखने की रूचि, इच्छा और अभिप्रेरणा अधिगम को प्रभावित करती है।

2. बुद्धि (Intelligence) : सीखना व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता पर निर्भर करता है। तीव्र बुद्धि के बालक कम बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा शीघ्रता से सीखते हैं। व्यक्ति के विचार, तर्क, कल्पना शक्ति, निर्णय शक्ति सभी बुद्धि से सम्बन्धित है। ये सब अधिगम को बहुत प्रभावित करते हैं।

3. शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health) : सीखने पर शारीरिक स्वास्थ्य का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ है तो वह जल्द ही सीख लेता है। शारीरिक रूप से अस्वस्थ बालक कक्षा में शिक्षण के समय अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता वह कक्षा कार्य व गृह कार्य में रूचि नहीं लेता।

4. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) : यदि व्यक्ति मानसिक रूप से बीमार और स्थिर नहीं है तो भी वह सीखते समय थकान और अरूचि अनुभव करता है। अतः सीखने के लिये व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है।

5. परिपक्वता (Maturation) : परिपक्वता सीखने को प्रभावित करती है। शारीरिक और मानसिक रूप से परिपक्व विद्यार्थी नई विषय सामग्री को शीघ्रता से बिना अवरोध सीख सकता है।

2. अध्यापक से सम्बन्धित कारक
(Factors Related to Teacher)

1. अध्यापक व्यवहार (Behaviour of the Teacher) : अध्यापक का व्यवहार सीखने को सबसे अधिक प्रभावित करता है। अध्यापक अधिगम प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण भाग है। अध्यापक के आचार-विचार और व्यवहार बालक को बहुत अधिक प्रभावित करते है। अध्यापक जैसा व्यवहार करता है, छात्र उसी का अनुकरण करते हैं। अध्यापक को पथ-प्रदर्शक, माली और कलाकार की संज्ञा दी गई है।

2. विषय का ज्ञान (Knowledge of subject) : अध्यापक को अपने विषय का गहन ज्ञान होना चाहिये। एक अध्यापक का अनुभव, योग्यता और विषय सम्बन्धित ज्ञान अधिगम को सबसे अधिक प्रभावित करता है। यदि अध्यापक को विषय का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है तो वह आत्मविश्वास से नवीन ज्ञान नहीं दे सकता।

3. शिक्षण विधि (Teaching Method) : शिक्षण विधि का सीधा सम्बन्ध अधिगम प्रक्रिया से है। शिक्षण-विधियों के बिना विषय का ज्ञान संभव नहीं है। एक अध्यापक को सीखाने के लिये नई-नई शिक्षण-विधियों का विषय के अनुसार प्रयोग करते रहना चाहिये।

4. अध्यापक का मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health of the Teacher) : एक अध्यापक का मानसिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है। यदि अध्यापक तनावयुक्त, चिन्ताग्रस्त व समस्याओं से घिरा होगा तो वह अधिगम अच्छी प्रकार नहीं कर सकता।

3. विषय-वस्तु से सम्बन्धित कारक
(Factors Related to Subject Matter)

1. विषय-वस्तु की प्रकृति बालकों मानसिक योग्यता व परिपक्वता के अुसार होनी चाहिये।
2. विषय वस्तु कठिन व अरूचिकर न होकर रोचक व सरल होनी चाहिये।
3. विषय-वस्तु में उदाहरण बालकों के जीवन से सम्बन्धित होने चाहिये।
4. विषय-वस्तु पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होनी चाहिये। नवीन अधिगम प्रक्रिया कभी भी शून्य से प्रारंभ नहीं होती।
5. विषय-वस्तु की जानकारी छात्रों को उनके सीखने की गति के अनुसार दी जानी चाहिये।

4. वातावरण से सम्बन्धित कारक
(Factor Related to Environment)

1. भौतिक वातावरण
2. पारिवारिक वातावरण
3. सामाजिक एवं संवेगात्मक वातावरण
4. पाठ्य-वस्तु, पुस्तकालय, प्रयोगशाला से सम्बन्धित उचित सामग्री और सुविधायें।

5. अनुदेशन से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Instruction)

1. बौद्धिक क्षमता
2. ध्यान एवं रूचि
3. इच्छा शक्ति
4. भोजन एवं पोषक आहार

ई-लर्निंग/अधिगम (E-Learning)

ई-लर्निंग इलैक्ट्रानिक शिक्षा का संक्षिप्त रूप है। इसका शाब्दिक अर्थ ऐसे अधिगम या सीखने से है जिसमें इलैक्ट्रॉनिक उपकरण संसाधन या माध्यम की सहायता से पूर्ण किये जाते है। ई-लर्निंग में सभी प्रकार के आधुनिक इलैक्ट्रॉनिक साधनों जैसे सी. डी. रोम, डी. वी. डी., इंटरनेट, वेबसाइट आदि की सहायता से पाठ्य सामग्री प्रयोग की जाती है। छात्रों को शिक्षा में उत्तम सुविधायें और गुणवत्तापरक शिक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में ई-लर्निंग केन्द्रों की स्थापना की जा रही है। एक साथ अनेक छात्रों को इसके द्वारा शिक्षण सामग्री दी जा सकती है।

परिभाषा (Definition) :

- **प्रो. के. के. अग्रवाल**- "दूर-दराज के क्षेत्रों में, जहाँ गुणात्मक शिक्षा एवं उच्च योग्यता वाले शिक्षकों की कमी है, वहां ई-लर्निंग काफी उपयोगी सिद्ध हो रही है।"
- **रोजनबर्ग**- "ई-लर्निंग का अर्थ है इंटरनेट तकनीकियों के ऐसे उपयोग से है जिनसे विविध प्रकार से ऐसे रास्ते खुले। जिनके द्वारा ज्ञान और कार्यक्षमताओं में वृद्धि की जा सके।"

ई-लर्निंग की विशेषतायें (Characteristics of E-Learning)

ई-लर्निंग की विशेषतायें निम्नलिखित है-

1. ई-लर्निंग में कम्प्यूटर सेवाओं की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है।
2. ई-लर्निंग वेब टेक्नोलॉजी आधारित ऑन लाइन एजुकेशन है। जिसमें पढ़ने और पढ़ाने के लिये न तो कोई विशेष स्थान चाहिये न ही निश्चित समय।
3. इसमें शिक्षक व छात्र ऑन लाईन इंटरएक्शन करते हैं।
4. ई-लर्निंग को दृश्य -श्रव्य सहायक सामग्री भी माना गया है।

5. ई-लर्निंग में इंटरनेट व वेब-आधारित संप्रेषण सेवाओं का प्रयोग किया जाता है। जैसे- ई-मेल, मेल-लिस्ट आदि।
6. ऑन लाइन शिक्षा परम्परागत शिक्षा से सस्ती शिक्षा है।
7. इसके द्वारा विद्यालय व कम्पनियाँ अपने स्टाफ को प्रशिक्षण देने के लिये बड़े पैमाने तैयार करती है।

ई-लर्निंग के प्रकार
(Types of E-Learning)

ई-लर्निंग के प्रकार निम्नलिखित है :

1. अवलम्ब अधिगम (Support system) : इस लर्निंग प्रारूप का प्रयोग शिक्षक व छात्र दोनों ही अपने-अपने शिक्षण एवं अधिगम कार्यों को अच्छा बनाने के लिये करते हैं। इसके द्वारा कक्षा-कक्ष शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाता है। जैसे- मल्टी मीडिया, इंटरनेट तथा वेब टेक्नोलॉजी ।

2. मिश्रित अधिगम (Blend Learning) : ई-लर्निंग का यह प्रारूप परम्परागत व आधुनिक सूचना संप्रेषण तकनीक पर आधारित है। इन दोनों रूपों को मिलाकर इसका प्रयोग किया जाता है।

3. पूर्ण ई-लर्निंग (Complete E-Learning) : इस अधिगम में पारस्परिक अन्त:क्रिया का कोई स्थान नहीं है। इसमें छात्र अपनी रूचि के अनुसार स्वतन्त्र वातावरण में अधिगम करते है। आवश्यकतानुसार सी. डी., डी. वी. डी. का प्रयोग करते है।

ई-लर्निंग के लाभ/उपयोगिता
(Advantage of E-Learning)

ई-लर्निंग की उपयोगिता निम्नलिखित हैं :

1. ई-लर्निंग द्वारा विद्यार्थी अपनी आवश्यकता, रूचि, योग्यता अनुसार अधिगम कर हैं।
2. इसमें परम्परागत शिक्षण प्रक्रिया का कोई उपयोग नहीं होता।
3. इसमें बहुत अधिक संख्या में छात्रों के समूह को एक साथ एक ही समय ज्ञानार्जन कर सकते हैं।
4. ई-लर्निंग लचीली होती है। इसमें विद्यार्थी अपनी आवश्यकतानुसार शिक्षा ग्र कर सकते है।

5. ई-लर्निंग द्वारा विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करके उनमें अधिगम के लिये रूचि पैदा की जा सकती है।

6. व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर व्यक्ति अपनी योग्यता अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सकता है।

7. ई-लर्निंग द्वारा अधिगमकर्त्ता स्वयं अपना मूल्यांकन कर सकता है। स्वयं ही उसका निदान या उपचार कर सकता है।

ई-लर्निंग की सीमायें/दोष
(Limitation of E-Learning)

ई-लर्निंग के दोष या कमियाँ निम्नलिखित है :

1. ई-लर्निंग के लिये शिक्षकों व विद्यार्थियों का कम्प्यूटर व इंटरनेट में प्रशिक्षित होना आवश्यक है।

2. ई-लर्निंग के लिये आवश्यक है कि कम्प्यूटर व इंटरनेट शिक्षक व छात्र दोनों के पास हो। लेकिन यह संभव नहीं है।

3. ई-लर्निंग से व्यक्ति का सामाजिक सम्पर्क टूट जाता है शिक्षक व छात्र के बीच कोई संप्रेषण नहीं होता।

4. ई-लर्निंग की सभी सुविधायें सभी विद्यालयों और महाविद्यालयों के लिये संभव नहीं है।

5. आज वर्तमान युग में इंटरनेट, मल्टी मीडिया का छात्र उपयोग करने के बजाए दुरूपयोग करते हैं।

एम-लर्निंग/अधिगम
(M-Learning)

एम-लर्निंग मोबाईल लर्निंग का संक्षिप्त नाम है। मोबाइल लर्निंग या तकनीक किसी भी समय या किसी भी स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। एम. अधिगम तकनीक में- लैपटॉप, टैबलेट, मोबाइल फोन, एम.पी. थ्री प्लेयर आदि आते हैं। यह अनौपचारिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण भाग है।

एम-शिक्षा के उद्देश्य
(Objectives of M-Learning)

इसके उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. किसी भी स्थान और समय पर शिक्षा (To Learn at any place and any time) : इसके द्वारा विद्यार्थी किसी भी समय और किसी भी स्थान पर अधिगम प्राप्त कर सकते हैं। छात्र कक्षा से बाहर की भी सूचनायें एकत्रित कर सकते है।

2. अधिगम वातावरण के अनुकूल होना (To fit with Learning Environment) इसके द्वारा भिन्न शिक्षा वातावरण के साथ छात्र सरलता से समायोजन कर सकते है।

3. सभी छात्रों तक पहुँच (To Reach Underserved Children) : वर्तमान स में लगभग सभी छात्रों के पास मोबाइल सुविधा उपलब्ध है। इसके द्वारा छात्र आसानी अधिगम कर सकते है।

4. व्यक्तिगत शैक्षिक अनुभव (To Enable Personalized Learni Experience) : सभी छात्र एक समान नहीं होते। एम-लर्निंग द्वारा छात्र अपनी व्यक्ति विभिन्नता के आधार पर अधिगम प्राप्त कर सकते हैं।

एम-अधिगम के लाभ
(Advantages of M-Learning)

शैक्षिक क्षेत्र में इसके लाभ निम्नलिखित है :

1. इसके द्वारा शिक्षा को किसी भी समय और किसी भी स्थान पर सरलता से पहुँच जा सकता है।
2. एम. अधिगम द्वारा शिक्षक व विद्यार्थियों में पारस्परिक अन्त:क्रिया बढ़ती है
3. इसमें किसी विशेष स्थान और विशेष समय के आवश्यकता नहीं होती।
4. जो छात्र पढ़ाई के साथ-साथ कोई व्यवसाय करते है तो उनके लिये उपयोगी है।
5. इसमें छात्र आत्म केन्द्रित शिक्षा और अभ्यास सरलता से कर सकते हैं।
6. इसमें व्यक्तिगत विभिन्नता के अनुरूप शिक्षा प्रदान की जाती है।
7. इसके द्वारा सुमेलता व सहयोग जैसे गुणों का विकास होता है।
8. इसके द्वारा व्यापक स्तर पर छात्रों को अवसर उपलब्ध होते है।

एम-अधिगम के दोष/न्यूनताएँ
(Limitation of M-Learning)

एम-अधिगम के दोष निम्नलिखित है :

1. इसके द्वारा छात्रों को नकल करने के अवसर प्राप्त होते हैं।
2. इसके द्वारा छात्रों में अनैतिक व्यवहार को ग्रहण करते है।
3. छात्रों का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अवरुद्ध हो जाता है।
4. मोबाइल अधिगम के प्रति लोगों के मन में अविश्वास है।

5. यह विद्यार्थियों में अलगाव की भावना उत्पन्न करती है।
6. प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव पाया जाता है।
7. सभी जगह मोबाइल तकनीकों की सुविधायें उपलब्ध नहीं होती।

ऑनलाईन-लर्निंग (Online-Learning)

ऑनलाईन लर्निंग से अभिप्राय ऐसा अधिगम जो कम्प्यूटर या इंटरनेट की सहायता से दी जाती है। ई-लर्निंग को ही ऑनलाईन-लर्निंग कहा जाता है ये दोनों शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची है।

ऑनलाईन अधिगम की विशेषतायें (Characteristics of Online Learning)

1. इसमें कम्प्यूटर तथा तकनीक तत्त्वों का प्रयोग किया जाता है।
2. यह आधुनिक शिक्षण प्रविधि है।
3. इसके द्वारा छात्रों में अधिगम के प्रति रूचि उत्पन्न होती है।
4. इसके द्वारा अधिगम प्रभावशाली होता है।
5. अधिगमकर्त्ता को विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है।

ऑनलाईन अधिगम के लाभ (Advantages of Online Learning)

1. इसके द्वारा छात्र अपने योग्यता व गति के अनुसार सीखते है।
2. इसके द्वारा समय व धन की बचत होती है।
3. इससे सीखने वाले का आत्मविश्वास और मनोबल बढ़ता है।
4. यह वर्तमान समय की आवश्यकता है।
5. यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है।
6. यह अधिगम प्रक्रिया को लचीला बनाती है।

ऑनलाईन अधिगम के दोष (Disadvantages of Online Learning)

1. इसके लिये कम्प्यूटर और इंटरनेट का ज्ञान होना आवश्यक है।
2. धन की अधिक आवश्यकता होती है।

3. व्यक्तिगत अनुभवों का अभाव होता है।

4. विशेष आवश्यकताओं वाले विद्यार्थियों के लिये अनुपयोगी।

रचनावाद
(Constructivism)

रचनावाद के अनुसार अधिगम एक सक्रिय रचनात्मक प्रक्रिया है। सीखने वाला सूचना निर्माता होता है। किसी भी विचार, वस्तु वास्तविकता का वर्णन व्यक्ति व्यक्तिनिष्ठा से करता है। नई सूचना पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होती है, इसलिये किसी वस्तु का वर्णन व्यक्तिनिष्ठ होता है। व्योगत्सकी, पियाजे, डीवी, विको, रोस्टी बर्नर प्रमुख रचनावादी मनोवैज्ञानिक है।

रचनावाद की विशेषतायें
(Characteristics of Constructivism)

रचनावाद की विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. रचनावाद में अधिगम सिद्धान्त वर्णित होते है।
2. रचनावाद के अनुसार अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है जहाँ ज्ञान की रचना होती है, ज्ञान अर्जित नहीं किया जाता है।
3. ज्ञान की रचना वैयक्तिक अनुभवों की आधार पर होती है।
4. प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञान के अनुसार ज्ञान की रचना और व्याख्या करता है। जिसका आधार उस व्यक्ति का पूर्व अनुभव होता है।
5. रचनावादी दृष्टिकोण संज्ञानात्मक और मानववाद की बीच का दृष्टिकोण है।

जोनासोन के अनुसार रचनावादी अधिगम की विशेषतायें निम्नलिखित है :

1. रचनावादी अधिगम में वास्तविकता का सबसे अधिक वर्णन होता है।
2. रचनावादी अधिगम वातावरण ज्ञान की रचना पर बल देता है।
3. इसमें प्रमाणिक कार्यों पर बल दिया जाता है।

संज्ञानात्मक रचनावाद और सामाजिक रचनावाद के मध्य अन्तर

1. संज्ञानात्मक रचनावाद : विकास की अवस्थाओं और अधिगम स्टाइल के आधार पर कोई बालक किसी चीज को कैसे समझता है।

2. सामाजिक रचनावाद : इसमें इस बात पर बल दिया जाता है कि सामाजिक अन्त:क्रिया से अर्थ और बोध का विकास कैसे होता है।

प्रमुख रचनावादी सिद्धान्त
(Main Constructivisit Theories)

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त (Piaget's Theory of Cognitive Developement) : पियाजे ने बालक के संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या करने के लिये संज्ञानात्मक विकास को चार प्रमुख अवस्थाओं में विभक्त किया है-

1. संवेदी-पेशीय अवस्था (0-2 वर्ष)
2. प्राकसंक्रियात्मक अवस्था (2-7 वर्ष)
3. ठोस संक्रिया की अवस्था (7-12 वर्ष)
4. औपचारिक संक्रिय अवस्था (12 से व्यसक)

(1) संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory Notes Stage) : यह अवस्था जन्म से 2 वर्ष तक होती है। इस अवस्था में शिशुओं का संज्ञानात्मक विकास 6 उप-अवस्थाओं से गुजरता है।

1. प्रतिवर्त क्रियाओं की अवस्था (Stage of Reflex Activities) : यह जन्म से 30 दिन की अवस्था होती है। इस अवस्था में बालक केवल प्रतिवर्त क्रियायें (Reflex activities) करता है।

इस अवस्था में चूसने का प्रतिवर्त (Sucking Reflex) सबसे प्रबल होती है।

2. वृत्तीय प्रतिक्रियाओं की अवस्था (Stage of Primary Circular Reaction) : यह अवस्था 1 से 4 माह की अवधि की होती है। इस अवस्था में बच्चा अनुभूतियों का अनुभव करता है।

3. गौण वृत्तीय प्रतिक्रियाओं की अवस्था (Stage of Secondary Circular) : यह अवस्था 4 से 8 माह की अवधि होती है। इस अवस्था में शिशु वस्तुओं को उलटने पलटने और छुने पर अधिक ध्यान देता है।

4. समन्वय की अवस्था (Stage of Co-ordination) : यह अवस्था 9 से 12 माह की अवधि तक होती है। इसमें बच्चा एक परिस्थिति को दूसरी परिस्थिति में सामान्यीकरण करता है।

5. वृत्तीय प्रतिक्रयाओं की अवस्था (Stage of Tertiary Circular Reaction) : यह अवस्था 12 से 18 माह अवधि की होती है। इस अवस्था में बालक वस्तुओं की गुणों को प्रयास एवं त्रुटि विधि से सीखने की कोशिश करता है। बालक में उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है। वह वस्तुओं को ऊपर से नीचे गिराकर उन्हें जानने का प्रयास करते हैं।

6. **मानसिक संयोग द्वारा नये साधनों की खोज की अवस्था** (Stage of the invention of new means through mental combination) : यह अन्तिम उप-अवस्था है। यह 18 से 24 माह तक होती है। इस अवस्था में बालक वस्तुओं के बारे में चिन्तन प्रारम्भ कर देते हैं।

रचनावाद के लाभ
(Uses of Constructivism)

1. रचनावाद में बच्चे अच्छे से सीखने वे अधिगम का आनन्द उठाते हैं।
2. इसमें अधिगम रटने पर आधारित नहीं होता। अधिगम चिन्तन और बोध केन्द्रित होती है।
3. रचनावादी अधिगम स्थानन्तरण योग्य होता है।
4. रचानावाद विद्यार्थियों में उद्दीपन पैदा करता है। विद्यार्थी वास्तविक ज्ञान प्राप्त करते हैं।
5. रचनावाद कक्षा वातावरण का निर्माण करके सामाजिक और सम्प्रेषण कौशल का विकास होता है।
6. विद्यार्थियों का अधिगम प्रभावशाली होता है।

रचनावाद की आलोचना
(Criticism of Constructivism)

1. यह उन बच्चों के लिये लाभदायक होता है जो परिश्रमी हो जिनके पास श्रेष्ठ अध्यापक हो, अमीर पारिवारिक वातावरण होता है।
2. वर्तमान में कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला जिससे यह पता चले रचनावादी विधियाँ प्रभावी रूप से कार्य कर रही है।

रचनावादी परीक्षण के माध्यम मूल्यांकन को अस्वीकार करने के बाद स्वयं को विद्यार्थियों की प्रगति के प्रति रचनावादी स्वयं को जवाबदेह नहीं मानते।

10

सीखने की शैली
(Learning Style)

सीखने की शैली, साधारणतौर से सीखने के सम्बन्ध में अलग-अलग उपागम तथा मार्ग है। वह शैक्षिक विधियां जो एक विशिष्ट व्यक्ति के लिये होती है और जिनके सम्बन्ध में यह मान लिया जाता है कि वह व्यक्ति को सबसे अच्छी प्रकार सीखने की ओर ले जाएगी। आमतौर पर यह विश्वास किया जाता है कि अधिकतर व्यक्ति किसी विशेष विधि को पसन्द करते हैं, अन्त क्रिया करने में सूचना तथा उत्तेजकों के अन्तर्गत करने में तथा प्रक्रिया करने में इस धारणा पर आधारित 1970 के दर्शक में व्यक्तिगत सीखने की शैलियों (Learning style) का विकास हुआ और इसे वर्तमान वर्षों में लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसमें शिक्षक अपने विद्यार्थियों के सीखने की शैलियों को जाँचे और अपने कक्षा शिक्षण में उन्हें अपनाये जो प्रत्येक विद्यार्थियों के सीखने के लिये उपयुक्त हो।

सीखने की शैली के मॉडल
(Models of Learning Styles)

प्रमुख मॉडल

1. **David Kolb's Model :** डेविड कोल्ब का शैली मॉडल अनुभवजन्य सीखने के सिद्धान्त पर आधारित है। (David A. Kolb) ने अपने पुस्तक में लिखा हैं- अनुभव सीखने और विकास का स्रोत है।

अनुभवजन्य सीखने का मॉडल (ELT) दो सम्बन्धी उपगमन की रूपरेखा देता है, जो अनुभव को ग्रहण करने की ओर है-मूर्त अनुभव (Concrete Experience) एवं अमूर्त संप्रत्ययीकरण (Abstract coceptualization) इसके अतिरिक्त दो सम्बन्धित उपगमन अनुभव को रूपान्तरित करने की ओर है-चिन्तनशील निरीक्षण (Reflective observation) एवं सक्रिय प्रयोग (Active Experimentation) कोल्ब के मॉडल के अनुसार आदर्श सीखने के प्रक्रिया में इन चारों उपागमों का प्रयोग होता है स्थिति की आवश्यकताओं की प्रत्युत्तर में सीखने को प्रभावशाली होने के लिये चारों उपागमों को शामिल करना चाहिये। जैसे-जैसे व्यक्ति चारों उपागमों का उपयोग करने का प्रयास करता है उनके अनुभव में दृढ़ता विकसित करने की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है। एक

ग्रहण करने का उपागम एवं एक परिवर्तित करने का उपागम। जो सीखने की शैली के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है। सीखने की शैली निम्न प्रकार है-

1. **अभिसारिक** (Converger) : इस शैली में व्यक्ति बुद्धि का प्रयोग करता है।

2. **अपसारिक** (Diverger) : इसमें मूर्त अनुभव होते हैं। इसमें व्यक्ति कल्पनाशील होकर नये विचारों को प्रकट करता है।

3. **आत्मसात्परक** (Assimilator) : इसमें व्यक्ति विशिष्ट गुण प्रकट करता है। उनमें आगमन तर्क द्वारा सैद्धान्तिक मॉडल निर्माण करने की योग्यता होती है।

4. **समंजनक** : इसमें मूर्त अनुभव और संक्रिय प्रयोग का उपयोग किया जाता है इसमें व्यक्ति वास्तविकता का अध्ययन करता है।

कोल्ब के मॉडल के आधार पर (Learning style inventory) का निर्माण हुआ है। यह एक मापन की विधि है जिसका उपयोग एक व्यक्ति की सीखने की शैली का निर्धारण करने के लिये किया जाता है। व्यक्ति इन चारों में से किसी एक में अधिक रूचि दिखा सकता है-अभिसारित, अपसारित आत्मसात्कार, समंजन में जो निर्भर होगी उसकी सीखने की ओर प्रयोगत्मक सीखने के सिद्धान्त मॉडल के माध्यम से पहुँच पर

2. **Anthony Gregore's Model :** Dennis W. Mills विवेचन करते हैं Anthony F.Gregore एवं Kathleena Butler के कार्य का अपने लेख में जिसका शीर्षक है "Applying what we know student learning styles, Gregore" एवं Butter ने कार्य किया एक मॉडल को संगठित करने का जो वर्णन करता है कि किस प्रकार से मस्तिष्क कार्य करता है। यह मॉडल आधारित है प्रत्यक्षीकरणों के अस्तित्व पर हमारा संसार का मूल्यांकन ऐसी पहुँच द्वारा जो हमें उपयुक्त प्रतीत होता है। यह प्रत्यक्षीकरण अपनी पारी में हमारी विशिष्ट सीखने की दृढ़ताओं या सीखने की शैलियों की नींव है। इस मॉडल में दो प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी गुण हैं-

(*i*) मूर्त (*ii*) अमूर्त

दो निम्नलिखित विशेषतायें हैं-

1. यादृच्छिक (Random)
2. आनुक्रमिक (Sequential)

मूर्त प्रत्यक्षीकरण सूचना का पंजीकरण पांच ज्ञानेन्द्रियों से करना शामिल करते हैं, जबकि अमूर्त प्रत्यक्षीकरण शमिल करते हैं। इनकी समझ को विचारों, योग्यताओं एवं धारणाओं को जो देखी नहीं जा सकती।

दो क्रमबद्ध योग्यताओं के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि आनुक्रमिक में शामिल होता है। सूचना का संगठन रेखीय, तार्किक प्रकार से तथा यादृच्छिक सूचना का संगठन शामिल करता है खण्ड में एवं किसी विशिष्ट क्रम में नहीं।

दोनों प्रात्यक्षिक गुण एवं दोनों आनुक्रमिक गुण प्रत्येक व्यक्ति में उपस्थित होते हैं, किन्तु कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में कुछ प्रात्यक्षिक योग्यतायें अथवा आनुक्रमिक योग्यतायें अधिक प्रभावशाली होती है।

प्रात्याक्षिक योग्यतायें एवं आनुक्रमिक योग्यतायें चार सामुच्य में होती है जो आधारित हैं। अत: प्रत्येक बालक अपने में अद्वितीय है जो न केवल सीखने की योग्यता रखते हैं, वरन् सफल होने की योग्यता भी होती है उनमें।

3. **सुडबरी** (Sudbury) : सुडबरी का जनतान्त्रिक विद्यालय का मॉडल इस बात पर जोर देता है कि अध्ययन और सीखने के अनेक तरीके हैं। उनके अनुसार सीखना एक प्रक्रिया है जो आप करते हैं न कि ऐसी प्रक्रिया जो आपके लिये की जाती है। यह प्रत्येक के लिये सत्य है, मूल धारणा है।

सुडबरी के जनतान्त्रिक विद्यालय के मॉडल का अनुभव यह प्रदर्शित करते हैं कि बिना शिक्षक के हस्तक्षेप के सीखने के अनेक मार्ग है, शिक्षक के हस्तक्षेप के बिना नहीं सीखा जा सकता है। जैसे-पढ़ना, सुडबरी के अनुसार जनतान्त्रिक विद्यालयों में कुछ बालक स्वयं सीख जाते हैं, जब उनके सामने कुछ पढ़ा जाता है, कहानियाँ सुनाकर और अन्त में कहानियों को पढ़कर सुडबरी के अनुसार जनतान्त्रिक विद्यालयों में बालक को पढ़ने के लिये बाधित नहीं किया जा सकता। ऐसे विद्यालयों में बच्चे (Dyslexia) से पीड़ित नहीं होते।

कोई भी यह अनुमान नहीं लगा सकता कि बालक कब, कैसे और कितना पढ़ेगा।

4. **अन्य मॉडल** (Other models) : Robert J. strenberg ने अलग-अलग ज्ञानात्मक विमाओं की सूचि बनाई। अपनी पुस्तक Thinking style (1997) में अनेक मॉडलों का बहुधा उपयोग हुआ। सीखने की शैलियों पर अनुसंधान किया गया। इनमें Myers Briggs Type Indicator (MBTi) एवं (Disc) मापन भी शामिल है। सीखने की शैलियों में Flemming's का VARK मॉडल है जो पहले विकसित

हुये Neuro-Linguist programming (VAK) मॉडल विस्तार हैं।

इसमें निम्नलिखित विषयों का वर्णन है-

1. दृष्टिगोचरित सीखने वाला (Visual Learners)
2. श्रवणात्मक सीखने वाला (Auditory Learners)
3. पढ़ने लिखने को वरीयता देने वाले सीखने वाले (Reading-Writing Preference Learners)
4. गति संवेदन द्वारा सीखने वाले अथवा स्पर्शजन्य सीखने वाले (Kinesthetic, Learners or Tactile Learners)

आलोचना
(Criticism)

सीखने की शैली सिद्धान्त की अनेक मनोवैज्ञानिकों द्वारा आलोचना की गई। अनेक शिक्षा मनोवैज्ञानिक यह मानते है कि इस बात के बहुत कम प्रमाण है कि सीखने की शैली में मॉडल बहुत प्रभावशाली है।

Sthal के अनुसार यह पता लगाने में पूर्ण असफलता मिली है कि विद्यार्थियों के सीखने की शैली के मापन का तालमेल शिक्षण विधियों के साथ उनके सीखने पर कोई प्रभाव डालता है।

कक्षा-कक्ष में सीखने की शैलियों का उपयोग
(Use of Learning Styles in the Classroom)

अनेक अनुसन्धानकर्ताओं ने अनेक ऐसी सीखने की शैलियों को जानने का प्रयास किया जो कक्षा-कक्ष शिक्षण को प्रभावशाली बना सके। Dr. Rita Dunn एवं Dr. Kenneth ने अपनी पुस्तक (**"Teaching students through their Individual Learning styles; A Practical Approach"**) में यह स्पष्ट करते हैं कि कक्षा-कक्ष के तत्व बालक को कैसे प्रभावित करते हैं।

Dunn and Dunn के अनुसार सीखने वाले निम्नलिखित तत्वों से प्रभावित होते हैं-

1. वातावरण (ध्वनि, प्रकाश, तापमान)
2. संवेग (धैर्य, नम्रता, बनावट, प्रेरणा)
3. सामाजिक आवश्यकतायें।
4. शारीरिक आवश्यकतायें।

इकाई – IV
(Unit – IV)

11. मूल्यांकन
    (Evaluation)
12. सतत् या व्यापक मूल्यांकन
    (Continuous and Comprehensive Evaluation)

11

मूल्यांकन
(Evaluation)

परिचय (Introduction)

जब भी हम कोई कार्य करते हैं। तो उसके पीछे कोई ना कोई उद्देश्य या प्रयोजन छिपा रहता है। जैसे शिक्षण का कोई भी स्तर चाहे विद्यालय (School) महाविद्यालय, कॉलेज (College) या विश्वविद्यालय (University) हो सभी के शिक्षण सम्बन्धी उद्देश्य होते है और विद्यार्थियों का मूल मंत्र होता है। इन शिक्षण सम्बन्धी उद्देश्यों को प्राप्त करना/ और कुछ समय बाद यह जानने की उत्सुकता भी बनी ही रहती है कि जो कार्य हम कर रहे है वह ठीक दिशा में हो रहे है या नहीं और हमें अपनी उद्देश्य प्राप्ति में किस तरह सहयोग मिल रहा है। अध्यापक, कक्षा विशेष के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का अनुसरण करते हुए अच्छी से अच्छी विधियों व तकनीकों को काम में लाता हुआ निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रयत्न रहता है अपने इन प्रत्यनों के दौरान उसे यह जानने की उत्सुकता रहती है कि प्रत्यल किस दिशा में जा रहे है। उसे इस प्रकार की जानकारी तभी मिल सकती है। जब वह यह जाने कि उसके शिक्षण के फलस्वरूप विद्यार्थियों को क्या कुछ उपलब्ध हो रहा है, तथा उनके व्यवहार में किस प्रकार के परिवर्तन आ रहे है। इस कार्य में यहाँ उसकी सहायता वे सूचनाएं (Information) तथा आँकड़े (Data) करते हैं। जिनकी प्राप्ति उसे अपने विद्यार्थियों की उपलब्धि या व्यवहार परिवर्तन का परीक्षण करने, मापने तथा मूल्यांकन के हारा होती है। भारत तथा विदेशों में भी पिछले 5 दशकों से परीक्षा सुधार कार्यक्रम चल रहे है, और इसी के परिणामस्वरूप परीक्षा का सप्रत्यय परिवर्तित होकर मूल्यांकन हो गया है। क्योंकि परीक्षा की प्रकृति उद्देश्य तथा क्षेत्र में परिवर्तित बल दिया जा रहा है तथा उन्हें सर्टिफिकेट (Certificate) प्रदान किया जा रहा है। प्राय: मूल्यांकन का कुछ पाठ्यक्रम का एक भाग ना मानकर पूरी कोर्स प्रक्रिया का अन्तिम चरण माना गया है। क्योंकि अधिकतर अध्यापकों के द्वारा पाठ्यक्रम को सक्रीण अर्थों में लिया जाता है।

"ब्रूबेकर (Brubaker) के शब्दों में इसे एक लक्ष्य की भांति माना जाता है" दूसरे शब्दों में, हम जो प्रयत्न कर रहे है वे किस सीमा तक मूल्यांकन है। इस बात का पता लगाना ही उनका मूल्यांकन करना कहलाता है। इस प्रकार के मूल्यांकन से हमें अपनी लगन, शन्ति और सान्थर्य के बारे में झाँकने का अवसर मिलता है।

इस दृष्टि से एक अध्यापक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह इन सभी प्रक्रियाओं-परीक्षणों (Test), मापन (Measurement) तथा मूल्यांकन (Evaluation) से अच्छी तरह अवगत हो जाए। क्योंकि Test, Measurement and Evaluation मूल्यांकन करने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

Concept of Tests and Measurement : आपने कुछ ऐसे परीक्षणों जैसे उपलब्धि परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण, बुद्धि परीक्षण आदि के बारे में अवश्य सुना होगा या आपने कुछ ऐसे परीक्षण किए होगे। इन सभी परीक्षणों में कुछ निश्चित प्रश्न दिए होते हैं। जिनके उत्तर आपको देने को कहा जाता है। जो उत्तर आपके द्वारा दिए जाते है। उनके आधार पर यह निर्णय लिया जाता है कि आपके द्वारा दिए हुए उत्तर कितने गलत है या सही है। उत्तरो का गलत या सही होना इस बात पर निर्भर करता है कि आपका दिया हुआ उत्तर किसी विषय विशेष या विशेषता विशेष में आपकी किस प्रकार की उपलब्धि को दिखाता है। सही उत्तर आपको उपलब्धि, अभिरूचि या बौद्धिक स्तर की दृष्टि से सही ठहराते है तथा गलत उत्तर इन परीक्षणों में आपकी कमजोरी या कमी या न्यूनता को दर्शाते है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर अब आइए परीक्षण, परीक्षण क्षेत्र तथा मापन के अर्थ को समझा जाए। निश्चित प्रश्नों से युक्त प्रश्न-पत्र तथा मापन साधन (मापने के साधन) चाहे इनका उपयोग उपलब्धि की माप के लिए काम में लाया जा रहा हो अथवा अभिरूचि या बुद्धि की माप के लिए काम में लाया जा रहा हो, परीक्षण (Test) कहलाता है। इन प्रश्न-पत्रों या मापन साधन को विद्यार्थियों को देकर जब उनसे इसके दिए हुए प्रश्नों के उत्तर देने को कहा जाता है। तो इसे परीक्षण लेना (Testing) कहा जाता है।

यहाँ अभी तक किसी मापन की बात नहीं उठती। मापन का आस्तित्व तब प्रकाश में आता है। जब हम विद्यार्थियों द्वारा दिए गए उत्तरों को सही या गलत ठहराकर उन्हें सही के लिए एक (1) या गलत के लिए शून्य (0) अंक देने का प्रयत्न करते है।

मापन इस तरह परीक्षण (Test) और परीक्षण लेने (Testing) से एक कदम आगे चलने की बात करता है। परीक्षा या परीक्षण (Examination or Testing) जब ले लिया जाता है तब प्राप्त उत्तरों की अंकन प्रक्रिया (Scoring Process) से मापन का काम शुरू होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जब तक परीक्षा या परीक्षण न ले लिया जाए, मापन हो ही नहीं सकता अथवा ऐसा भी कहना सही है कि मापन से पहले परीक्षा या परीक्षण कर लिया जाना जरूरी है, उचित नहीं है।

मापन प्रक्रिया (Process of Measuring) में परीक्षण साधनों (Testing Devices) जैसे- उपलब्धि परीक्षण बुद्धि परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण तथा परीक्षण विहिन साधनों (Non-testing Devices) जैसे- निरीक्षण, रेटिंग-स्केल आदि से भी मिली जानकारी

तथा आँकड़ों को, जिस विशेषता या गुण का परीक्षण या सर्वेक्षण किया जा रहा हो, उसकी सख्यांत्मक रूप से व्याख्या करने का काम किया जा सकता है।

किसी विद्यार्थी में किसी विषय विशेष के अधिगम अर्जन को लेकर कितनी क्षमता तथा योग्यता है तथा किसी-ना-किसी विशेष अभिरूचि को लेकर क्या स्तर है अथवा किसी का कितना बौद्धिक स्तर है। इस बात को मापन प्रक्रिया में परीक्षण तथा सर्वेक्षण से प्राप्त सूचनाओं 9 आँकड़ों को सख्यांत्मक अंक (Numerical Scores) देकर अभिव्यक्त किया जाता है।

इसके फलस्वरूप जिसके अंक ज्यादा या कम होते है उसे किसी विशेषता या गुण के मापन के संदर्भ में उतने ही ऊँचे या नीचे स्तर का घोषित किया जाता है। इस प्रकार विषय के तथ्यों, सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं के ज्ञान, अवबोध, दक्षताओं तथा अनुप्रयोग को लेकर किसका क्या स्तर है। इसकी अंकों के रूप में संख्यात्मक अभिव्यक्ति मापन के द्वारा ही सम्भव हो पाती है।

जैसे कि मापन की कार्यप्रणाली पूरी तरह से संख्यात्मक होती है-उदाहरण के लिए किसी निरीक्षण या परीक्षण के दौरान किसी व्यक्ति, धातु या पदार्थ की प्रकृति और व्यवहार में देखी गई विशेषताओं के प्रकार के आधार पर मापन की इकाईयों या सांख्यिकी (Numerical) मूल्य प्रदान करना।

यह व्यक्ति या वस्तु की प्रकृति या व्यवहार के गुणात्मक पक्ष के बारे में कुछ भी अभिव्यक्त नहीं करता हैं। इस कार्य के लिए व्यक्ति को मूल्यांकन की प्रक्रिया पर निर्भर रहना पड़ता है।

इस प्रकार भौतिक युग में विज्ञान के तथ्यों, सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं के ज्ञान, अवबोध, दक्षताओं तथा अनुप्रयोग को लेकर किसका क्या स्तर है, इसकी अंकों के रूप में संख्यात्मक अभिव्यक्ति मापन के द्वारा ही सम्भव हो पाती है। मापन की अवधारणा से और अच्छी तरह परिचित होने में निम्न जानी-पहचानी परिभाषाएं भी हमारी उचित सहायता कर सकती है।

1. रेमर्स, गेज एवं रूमेल (Remmers, Gaze and Rummel) : मापन से तात्पर्य ऐसे निरीक्षणों से है जिन्हें परिमाणात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता हो और जिनसे "कितना कुछ" इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो।

(Measurement refers to observation that can be expressed quantitatively and Answer the question "How Much")

2. महेश भार्गव (Mahesh Bhargava) : मापन वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत निरीक्षणों, वस्तुओं या घटनाओं को किसी सार्थक या एक जैसे ढंग से नियमानुसार कुछ प्रतीक या अंक प्रदान किए जाते है।

(Measurement is the process of assigning symbols or numerals to obeservation object or events in some meaningful or consistent manner according to rule.)

3. ग्रोलुंड एवं लिन (Gronlund and Linn) : मापन पद विद्यार्थियों का परिमाणात्मक रूप से विवरण देने तक सीमित रहता है। अर्थात् मापन के परिणाम सदैव संख्याओं में अभिव्यक्त किए जाते है। जैसे- मैरी अंकगणित की 40 समस्याओं में से 35 को सही हल कर लेती है। इसमें न तो गुणात्मक विवरण शामिल होता है (जैसे- मैरी का काम बहुत साफ-सुथरा था) और न ही इसमें प्राप्त परिणामों का मूल्य और कीमत आँकने सम्बन्धी कोई निर्णय लिया जाता है।

(The Term measurement is limited to quantative description of pupils, that is the result of measurement are always expressed in numbers (*e.g.* marry correcty 35 out of the total 40 arithmetic problems.) it neither inclide quatiative description (Marry's work was neat) nor imply judgement concerning the worth or value of the obtained result.)

उपरोक्त परिभाषाओं के विशलेषण के अनुसार यह स्पष्ट हो सकता है कि मापन और कुछ नही बल्कि एक परिमाणिक प्रक्रिया (quantification process) है। जिसमें किसी निरीक्षण या परीक्षण के दौरान किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष के व्यवहार या प्रकृति मे जो विशेषताएं दिखाई देती है। उन्हें मापन ईकाइयों या संख्यात्मक मूल्यों में व्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता है। उदाहरण के लिए जब हम कहते हैं कि अमूक विद्यार्थी की ऊँचाई 160 सेंटीमीटर (c.m.) है। अथवा भौतिक विशाल के किसी इकाई परीक्षण में 8 अंक है (उसने 10 वस्तुगत प्रश्नों में से 8 के सही उत्तर दिए है) तब हम निश्चित रूप से उसका (विद्यार्थी) ऊँचाई तथा भौतिक विज्ञान में उसकी उपलब्धि के संदर्भ में मापन ही कर रहे होते है। यहाँ 1 सेंटीमीटर और एक अंक मापन के लिए प्रयुक्त विभिन्न ईकाईयों (units) का ही प्रतिनिधित्व कर रहे हैं तथा विद्यार्थी विशेष का निरीक्षण तथा परीक्षण के दौरान उसकी अपनी प्रकृति या योग्यता विशेष में जैसा प्रदर्शन देखने को मिला था उसी के आधार पर उसको साप्रेक्षिक मापन ईकाईयाँ मापन हेतु प्रदान की गई है। इस प्रकार वास्तव में मापन के दौरान हम निरीक्षण और परीक्षण के परिणामों को परिमाणात्मक रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं तथा इन्हें अधिक-से-अधिक वस्तुगत तथा संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त करने हेतु अंकों, संख्यात्मक मूल्यों तथा मापन इकाईयों की सहायता लेते हैं।

मापन का सामान्य सिद्धान्त (General theory of Measurement)

(Campbell) केम्पबेल की विचारधारा से लोग सहमत प्रतीत होते हैं, जिन्होंने मापन को इस प्रकार परिभाषित किया है-"नियमों के अनुसार वस्तुओं और घटनाओं को प्रतीकों में व्यक्त करना मापन है।"

("Measurement is the assignment of numerals to objects or events according to rules.")

गिल्फोर्ड भी इस परिभाषा से सन्तुष्ट प्रतीत होते हैं सिवाय शब्द प्रतीक (Numerals) के कुछ लेखक प्रतीक की उपेक्षा अंक (Numbers) के प्रयोग का सुझाव देते है। इन दो शब्दों का अन्तर सदैव स्पष्ट नहीं होता। (Numerals) का अनुमानत अर्थ प्रतीक (Symbols) होता है। कुछ का कहना हैं कि यह कागज़ पर कुछ (Scratches) खरोंचे मात्र होती है। परन्तु यह खरोंचों से अधिक होते है। क्योंकि हर प्रतीक दूसरे से भिन्न होता है। इसी कारण इनका प्रयोग वस्तुओं या समूहों को इगित करने के लिए सरलता से किया जा सकता है।

मापन के प्रकार्य (Functions of Measurement)

शिक्षा और मनोविज्ञान मैं मापन के भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य है। यह एक कक्षा अध्यापक की कक्षा में कमजोर और होशियार छात्र को पहचानने में सहायक हो सकता है। यह स्कूल में परीक्षार्थियों को अंक देने में, उनके वर्गीकरण तथा उन्नति में अध्यापक की शिक्षण-योग्यता का निर्णय करने में या शिक्षा पर होने वाले व्यय को निश्चित करने में सहायक हो सकता है। किसी शैक्षणिक अधिकारी के पर्यवेक्षण में चलने वाले कार्यक्रम की प्रगति का निरीक्षण या मूल्यांकन करने में भी परीक्षण उपयोगी है। यदि परीक्षण की रचना करने में शैक्षणिक उद्देश्यों को ठीक से ध्यान में रखा गया है तो ये पाठ्यक्रम के विकास में भी उपयोगी है। परीक्षण एक औद्योगिक मनोवैज्ञानिक को एक कार्यकर्त्ता को सही कार्य को कराने में भी सहायक हो सकता है। मापन के प्राथमिक प्रकार्य निम्नलिखित है-

1. **चयन में** (In Selection) : उद्योगों में तथा अन्य संगठनों में मनोवैज्ञानिक की सहायता से कर्मचारियों तथा व्यक्तियों का चयन किया जा सकता है। मापन यंत्रों का कार्य चयन में व्यक्तियों की योग्यता का पूर्वकथन करना है। परीक्षण ऐसे प्रक्ष्त प्रदान करते हैं जिसके आधार पर व्यक्ति के प्रति उपयुक्त अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। मापन का उपयोगी मुख्यत: औद्योगिक क्षेत्रों में, सेवा में, सरकारी नौकरियों में तथा विद्यालयों में प्रवेश के लिए होता है।

2. वर्गीकरण (Classification) : मापन भिन्न प्रकार के वर्गीकरण में सहायक होता है। जैसे-कक्षा में कुछ समस्यात्मक बालक हो सकते है। तथा उनका कक्षा अध्यापक उन्हें अलग करना चाहता है। ताकि अन्य छात्रों या समस्यात्मक छात्रों का नुकसान ना हो। इस अवस्था में मापन अध्यापक को छात्रों को निम्नाकिंत वर्गों में वर्गीकृत करने में सहायक हो सकता है- Retarted, Gifted तथा Average, इसी प्रकार नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगियों को भिन्न-भिन्न मानसिक रोगो के वर्गों में वर्गीकृत करना चाह सकता है। इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में मापन व्यक्तियों को कार्य संतुष्टि, दुर्घटना प्रवणता तथा अनुपस्थिति के आधार पर वर्गीकृत कर सकता है।

3. तुलना में (Comparison) : गाल्टन और डार्विन के प्रारम्भिक शोधों से यह ज्ञात हुआ कि कोई भी दो व्यक्ति, समान नहीं होते है अर्थात् शील गुणों में मानसिक प्रक्रियाओं में, आदतों में, प्रवृतियों, शैक्षिक उपलब्धियों तथा क्षमताओं में वैयक्ति भिन्नता पाई जाती है। उपयुक्त कारकों में से जब भी दो व्यक्तियों की तुलना करनी पड़ती है तो मापन की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। उपयुक्त मापन की सहायता से यह कहना सम्भव होता है कि छात्र 'A', छात्र 'B' से भाषा ज्ञान में (या) दसवीं कक्षा का एक छात्र जो किसी स्कूल में पढ़ता हो। उसकी शैक्षिक उपलब्धि, ग्रामीण विद्यालय में दसवीं कक्षा में पढ़ने वाले छात्र से उत्तम है।

4. निर्देशन और परामर्श (Guidance and Counselling) : मापन मनोवैज्ञानिको को निर्देशन और परामर्श में सहायता करता है। मापन व्यक्ति को अपनी शक्ति और कमजोरियों को जानने में सहायता करता है। यह परामर्शदाता और रोगी के मध्य सम्बन्धों को समझने में सहायक होता है। वह परीक्षणों द्वारा भविष्य में आने वाली समायोजन समस्याओं का पूर्ण कथन भी करता है।

5. कक्षा में शिक्षण को सुधारना (Improving classroom instruction) : एक अध्यापक कक्षा मे सभी छात्रों को एक ही तरीके से पढ़ाता है पर हर विद्यार्थी का परिणाम अलग-अलग होता है। ऐसा इस कारण होता है कि कुछ छात्रों के लिए शिक्षण का स्तर उनकी मानसिक योग्यता के अनुरूप होता है। और कुछ के लिए उनकी मानसिक योग्यता के नीचे या ऊपर होता है। इन दोनों अवस्थाओं में शिक्षण में मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तनों की आवश्कता होती है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने में मापन महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

6. शोध (Research) : मापन, शोध क्रियाओं में भी सहायक होता है। वस्तुतः मापन सभी प्रकार के शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक शोध का मूलभूत आधार है। शोध नवीन तथ्यों को खोजने की प्रक्रिया है। मनौवैज्ञानिक और शैक्षिक शोधों में प्रायः एक परिवर्ता या परिवर्तियों के संघ के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। जबकि अन्य परिवर्तियों को

नियन्त्रित कर लिया जाता है। ऐसा करने में विभिन्न प्रकार के मापन का प्रयोग किया जाता है। ताकि शोध अभिकल्प, साख्यिकी विश्लेषण तथा परिणामों का निश्चित निर्धारण किया जा सके। अत: मापन का शैक्षिक तथा मनौवैज्ञानिक शोध का हृदय (Heart) माना जाता है।

7. **निदान** (Diagnosis) : शैक्षिक निदान में अनेक तकनीकी प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। जिनका उद्देश्य सीखने की मुख्य एवं विशिष्ट कठिनाइयों का पता लगाना है और यदि सम्भव हो सके तो उनके कारणों का पता लगाना तथा उसके निराकरण का प्रबन्ध करना है। जिस प्रकार चिकित्स-निदान में अनेक व्यावासायिक यन्त्रों जैसे-थर्मामीटर, स्टेथोस्कोप, माइक्रोस्कोप आदि का प्रयोग होता है ताकि निश्चित, यथार्थ और वस्तुगत निदान सम्भव हो सके। उसी प्रकार शैक्षणिक निदान में अनेक परीक्षणों एवं सांख्यिकी प्रविधियों का प्रयोग होता है। विशिष्ट विषयों पर बनी नैदानिक परीक्षण नैदानिक चार्ट, मानचित्र, दृष्टि तीव्रता को मापने वाले अनेक साधन सभी इस दृष्टि से उपयोगी है। तथापि शैक्षणिक निदान, चिकित्सक निदान जितना यथार्थ एवं वस्तुनिष्ठ नही होता। अब शैक्षणिक निदान में भी दिन-प्रतिदिन वैज्ञानिक उपागम का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। परन्तु वास्तव में निदान की अच्छाई एवं यर्थाथता बहुत कुछ अध्यापक की श्रेष्ठता पर निर्भर करती है इसके अतिरिक्त वह इस तथ्य पर भी निर्भर करती है कि किस सीमा तक और कितनी स्पष्टता के साथ पाठ्यक्रम का विश्लेषण कर लिया गया है।

मापन का महत्त्व
(Importance of Measurement)

"मापन का अर्थ है, किन्ही निश्चित ईकाइयों में वस्तु या गुण के परिमाण का पता लगाना।"

यह मानवीय मन के विभिन्न पक्षों या गुणों के सम्बन्ध में भी उतना ही सत्य है, जितना भौतिक वस्तुओं के सम्बन्ध में। ई० एल० थॉर्नडाइक (Thosndike) के अनुसार, "प्रत्येक वस्तु जो जरा भी सत्ता, रखती है। किसी-न-किसी परिमाण में सत्ता रखती है और कोई भी वस्तु जिसकी किसी परिमाण में सत्ता है। मापन के योग्य है।"

मापन कुछ उपयुक्त साधनों के निर्माण पर निर्भर है। मनौवैज्ञानिक मापन, भौतिक मापन की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल है। क्योंकि शिक्षा एवं मनोविज्ञान का उद्देश्य केवल मानवीय व्यवहार का पता लगाना ही नही है। बल्कि उसमें परिवर्तन करना भी है।

मनौवैज्ञानिक व्यक्तित्व, गुणों का अध्ययन एवं मापन करने का इच्छुक रहता हैं और उसका उद्देश्य रहता। कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का संगठन एवं सर्वटोमुखी विकास करना। संगठित एवं सर्वटोमुखी विकास के लिए ऐसे गुणों एवं अभिवृतियों का विकास आवश्यक

हो जो व्यक्ति को समाज-कल्याण की और अग्रसर कर सके। इन गुणों एवं अभिवृत्तियों का विकास करने के लिए चरों या कारकों (Variable and Factors) का पता लगाना आवश्यक होता है । मापन इस दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

मापन का जीवन में विशेष महत्त्व है। सोते, जागते, उठते-बैठते, घूमते-फिरते सभी समयो पर और सभी अवसरों पर हम मापन का उपयोग करते है। हम मापन का उपयोग किस सीमा तक करते है। इसे समझने के लिए एक उदाहरण लिजिए।

मान लिजिए, एक व्यक्ति बस स्टैण्ड (Bus Stop) से 15 मील की दूरी पर रहता है। वह जानता है कि वह 15 मील की दूरी पर क्योंकि उसे इसका माप ज्ञात है। ठीक समय पर बस स्टैण्ड पहुंचने के लिए वह अपनी घडी देखता है, क्योंकि उसकी घड़ी, समय का मापन करती है। कार में लगा 'गतिमापक' (Speedometer) गति का मापन करता है। टिकिट (Ticket) खरीदते समय वह कुछ धनराशि अदा करता है, जैसे रूपये और पैसे, इनका भी यह निश्चित ईकाईयों में मापन करता है। उसके कमरे में ताप की मात्रा भी किसी यन्त्र से मापित होती है। किसी व्यक्ति को दोपहर का भोजन अत्यत स्वादिष्ट लगता है। क्योंकि रसोइये ने भोजन के अनेक घटकों (Ingredients) तथा आवश्यक पदार्थों का ठीक-2 मापन करने उन्हें स्टोव (Stove) पर चढ़ाया। सच कहिए तो हमारी सभ्यता का सम्पूर्ण विकास ही किसी-न-किसी प्रकार के मापन पर निर्भर है जैसे-वर्ष (Year), घण्टे (hour), मिनट (Minute) सैकेण्ड (Second) और पल में समय का मापन होने से विभिन्न राष्ट्रों के बीच लिखे जाने वाले सन्धि-पत्रों का हिसाब रखा जा सकता है। सेनाओं की प्रगति एवं दूरी, आकार, आयतन सभी का ज्ञान मापन पर ही निर्भर है। इसी कारण सड़को, रेलों और नहरों का निर्माण सम्भव हुआ है। मिट्टी एवं बीज के गुण, जल एवं वायु आदि के मापन ने कृषिशास्त्र को धनी बनाया है। कृषि में मापन के कारण ही अनेक अभिकल्पों का विकास हुआ जो आज समाज-विज्ञानों के प्रयोगात्मक अध्ययनों में बहुतायात से प्रयोग किये जाते है।

मूल्यांकन का अर्थ
(Meaning of Evaluation)

'मूल्यांकन' शब्द का अर्थ है-मूल्य निर्णय या एक निरीक्षण, जब हम शिक्षा में इस शब्द का प्रयोग करते है, तो इसका अभिप्राय है। अध्यापक के शिक्षण का मूल्यांकन और उसे यह सूचना प्रदान करना कि विद्यार्थियों में उपलब्ध व्यावहारिक परिवर्तन पूर्व निश्चित अधिगम उद्देश्यों के अनुरूप है या नही, यदि ऐच्छिक परिवर्तन प्राप्त हो गया तो किस स्तर तक और यदि नहीं तो ऐसे कौन से कदम उठाने चाहिए कि पूर्व निश्चित अधिगम उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार मूल्यांकन व्यवहारगत परिवर्तन के लिए साक्ष्यों का सग्रह करना है और इसके लिए दिशा एवं विस्तार प्राप्त करना है। इसके लिए आवश्यक

है कि शिक्षण के उद्देश्यों का स्पष्ट रूप से बोध हो, जिसके आधार पर परीक्षण किया जा सके एवं उचित अधिगम वातावरण प्रदान किया जा सके।

'मूल्यांकन' शब्द के अस्तित्व में आने से पहले 'परीक्षण' शब्द का प्रयोग विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान को जांचने के लिए किया जाता था। सामान्य बोलचाल की भाषा में परीक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके प्रश्नों के द्वारा विद्यार्थियों के ज्ञान, क्षमताओं, योग्यताओं एवं कार्य-कुशलताओं आदि की जांच की जाती है। अन्य शब्दों में परीक्षण द्वारा विभिन्न योग्यताओं का मापन एवं उसके व्यक्तित्व और कार्य कुशलताओं का अध्ययन किया जाता है। इंग्लैंड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय (Cambridge University) के फलस्वरूप 1702 में लिखित परीक्षाएं अस्तित्व में आई। परन्तु समस्या यह थी कि विद्यार्थियों की शैली, भाषा, विचारों आदि का मूल्यांकन न करके लिखित परीक्षाओं के द्वारा उनके व्यक्तित्व, रूचियों, अभिवृतियों, अभिरूचियों, आदि का मूल्यांकन कैसे किया जाए? इसके परिणामस्वरूप 1958 में बी.एस. ब्लूम (B.S.Bloom) के विभिन्न प्रयासों के फलस्वरूप अमेरिका में 'मूल्यांकन' शब्द का विकास हुआ। उसने मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया कि परीक्षण शिक्षण पर आधारित होना चाहिए और यह उद्देश्य केन्द्रित होना चाहिए उसका यह कहना है। कि शिक्षा त्रि-ध्रुवीय प्रक्रिया है जैसे:-

शैक्षिक प्रक्रिया की प्रभावशीलता तथा उचितता का मापन मूल्यांकन उपागम के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इस प्रकार मूल्यांकन दो शब्दों से मिलकर बना है-"मूल्य और अंकन"। इसका अर्थ यह हुआ कि विद्यार्थी के गुण-दोषों की व्याख्या करना, उसके सम्बन्ध में उचित निर्णय करना अथवा उसके यथार्थ मूल्य का निर्धारण करना। अन्य शब्दों में मूल्यांकन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी कार्य, वस्तु या व्यक्ति का मूल्य निश्चित किया जाता है। हम प्रत्येक प्रकार की योग्यता का मूल्यांकन कर सकते है।

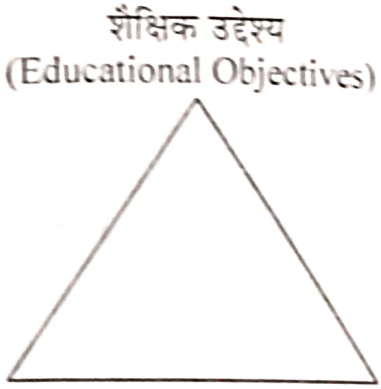

साधारण भाषा में मूल्यांकन का अर्थ है-निश्चित सीमा तक पहुँचना। या शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों के द्वारा विद्यार्थी की योग्यता का पता लगाना।

शिक्षा में मूल्यांकन का अर्थ है-"दूसरी कक्षा में प्रवेश पाना।"

मूल्यांकन की अवधारणा परीक्षण (Testing) और मापन (Measurement) से बहुत ही व्यापक एवं सम्पूर्णता लिए हुए है, जैसा कि निम्न परिभाषाओं से ज्ञात होता है:-

1. राइटस्टोन (Wrightstone) : मूल्यांकन सापेक्षिक रूप से एक नया तकनीकी शब्द है जो परम्परागत परीक्षणों और परीक्षा की तुलना में एक अधिक व्यापक मापन सप्रंत्यय के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा है-इसमें व्यक्तित्व सम्बन्धी, मुख्य परिवर्तनों और शैक्षिक कार्यक्रम से जुडे हुए मुख्य उद्देश्यों पर बल दिया जाता है इसमें केवल विषयवस्तु से सम्बन्धित उपलब्धियों को ही नही बल्कि अभिवृतियों, रूचियों, आदर्शों सोचने के तरीकों, काम करने की आदतों तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक अनुकूलन क्षमता को भी शामिल किया जाता है।

(Evaluation is relatively a new technical term introduced to designate a more comprehension concept of measurement that is applied in conventional tests and exmination.....the emphasis.....is upon broad personality changes and major objectives of educational programme. These include dont only subject matter achievements but also attitudes, interests, ideals way of thinking, work habits and personal and social adaptability.)

2. टोरगेरसन एवं एडम्स (Torgerson and Adams) : मूल्यांकन करने से अभिप्राय करने से अभिप्राय है किसी प्रक्रिया या वस्तु का मूल्य आँकना। इसलिए शैक्षिक मूल्यांकन से तात्पर्य किसी ऐसे निर्णय लेने से है जिससे यह पता चले कि कोई शिक्षण प्रक्रिया या अधिगम अनुभव किस सीमा तक सार्थक रहा।

(To evaluate is to ascetain the value of a process or a things. Thus education evaluation is the passing of judgement on the degree of worth whileness of a teaching process or learning experience.)

3. भारतीय शिक्षा आयोग (Indian Education Commission, 1966) : अब यह माना जाता है कि मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है, सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का यह एक अभिन्न अंग है और निश्चित रूप से इसका सम्बन्ध शैक्षिक उद्देश्यों से है। विद्यार्थी की पढ़ने की आदतों, अध्यापक के पढ़ाने की विधियों पर यह बहुत गहरा असर डालता है और इस तरह यह न केवल शैक्षिक उपलब्धियों के मापन में सहायक होता है, बल्कि उनमें बढ़ोत्तरी भी करता है।

(It is now agreed that evaluation is a continuous process, forms an integral part of the total system of education and is ultimately related to

मूल्यांकन

educational objectives. It excercises, a great influence on the pupils' study habits and the teacher's method of instruction and thus helps not only to measure educational objective but also improves it.)

4. क्विलन एवं हैना (Quillen and Hanna) : मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसमें विद्यालय द्वारा बालकों में होने वाले व्यवहार परिवर्तनों के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित की जाती है और उनकी व्याख्या की जाती है।

(Evaluation is the process of gathering and interpreting evidences on change in the behaviour of the students as they progress through school.)

5. ब्रूस टकमैन (Bruce Tuckman) : मूल्यांकन वह साधन है जिसके द्वारा यह पता लगाया जाता है कि कोई भी कार्यक्रम अपने उद्देश्य की पूर्ति कर रहा है या नहीं अर्थात् यह जानना कि अनुदेशनात्मक प्रक्रिया से जुडे हुए अदा पक्ष के तत्व वांछित और निर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति में कितने सक्षम हैं।

(Evaluation is the means of determining whether the programme is meeting its goals ; that is, whether... a given set of instructional inputs match the intended or prescribed outcomes.)

6. रोनाल्ड डॉल (Ronald Doll) : मूल्यांकन वह व्यापक और सतत प्रक्रिया है जिसके द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि विषयवस्तु और इसे प्रदान करते हेतु काम में लाए जाने वाले प्रक्रम का स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किस प्रकार उपयोग किया जा रहा है।

(Evaluation is a broad and continuous effort to inquire into the effects of utilizing content and process to meet clearly defined goals.)

7. कार्टर वी. गुड (Carter V. Good) : मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसमें किसी जाँच स्तर को आधार बनाकर किसी वस्तु या कीमत निर्धारित करने या आँकने की बात की जाती है।

(Evaluation is the process of ascertaining or Judging the value or amount of some-thing by the use of a standard of appraisal.)

8. रेमर्स, गेज एवं रूमेल (Rammers, Gage and Rummel) : मूल्यांकन केवल मात्र परीक्षण कार्यक्रम नहीं है। मूल्यांकन हेतु परीक्षण काम में लाए जाते हैं परन्तु ये परीक्षण उन विभिन्न तकनीकों (जैसे-निरीक्षण, चेकलिस्ट, प्रश्नावली, साक्षात्कार आदि) में से एक है जो एक सम्पूर्ण मूल्यांकन हेतु काम में लाई जाती है।

(Evaluation is not just a testing programme. Tests are but one of many different techniques, such as observation, check lists, questionnaires, interviews etc. that may contribute to the total evaluation programme.)

उपरोक्त परिभाषाओं के मनन और मन्थन से मूल्यांकन के अर्थ, प्रकृति एवं विशेषताओं के सम्दर्भ में निम्न बातें उभरकर सामने आ सकती है।

- मूल्यांकन, मापन एवं परीक्षण की तुलना में काफी विशद और व्यापक संप्रत्यय है।
- यह एक ऐसी सतत प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी की प्रगति के बारे में जानने हेतु सभी तरह के अथक प्रयास किए जाते हैं।
- यह शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के परिणामों का परिमाणात्मक (Quantitative) एवं गुणात्मक (Qualitative) विवरण प्रस्तुत करता है।
- यह शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के फलस्वरूप विद्यार्थी के व्यवहार के सभी पक्षों (Domains of behaviour) में आने वाले परिवर्तनों की जानकारी प्रदान करने में मदद करता है।
- मूल्यांकन की विधियों एवं तकनीकों का क्षेत्र कुछ परिक्षणों या परम्परागत परिक्षाओं तक ही सीमित न होकर बहुत-आयामी साधनों तक तकनीकों के प्रयोग हेतु काफी लचीलापन तथा व्यापकता प्रदान करता है।
- इसके द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के सन्दर्भ में शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षण विधियों तथा शैक्षिक व्यवस्था की गुणवत्ता कैसी रही इस सबकी व्यापक जाँच और मापन पूरी तरह सम्भव है।
- मूल्यांकन की प्रक्रिया अपने सर्वांग रूप में परीक्षण और मापन की तरह शैक्षिक उपलब्धि के मापन में ही सहायक नहीं होती, बल्कि यह शैक्षिक व्यवस्था के सभी प्रकार के अदा (Input) और प्रक्रिया (Process) पक्षों का सर्वोत्तम प्रदा (Output) के सन्दर्भ में मूल्यांकन करती हुई सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली के सुधार एवं प्रगति में सहायक होती हैं।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया और मूल्यांकन
(Teaching Learning Process and Assessment)

विद्यार्थियों का हित चिन्तन ही सभी प्रकार के शिक्षण का एकमात्र उद्देश्य होता है और विद्यार्थियों का हित इसी में है कि उनके उचित विकास एवं प्रगति के लिए उनके व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाए जाएं। इसी प्रकार के परिवर्तनों को लाने हेतु किसी भी विशेष आयु तथा ग्रेड स्तर पर उचित रूप से नियोजन करना होता है। शुरूआत शिक्षण अधिगम उद्देश्यों के निर्धारण से हो सकती है। जिनके माध्यम से यह तय किया जाता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के फलस्वरूप व्यवहार में किस प्रकार के परिवर्तन लाए जाने हैं। ये परिवर्तन किस प्रकार लाए जा सकते हैं या दूसरे शब्दों में निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति कैसे सम्भव है। इस बात पर सोच विचार कर अब आगे शिक्षण अधिगम सामग्री, विधियों प्रविधियों शिक्षण सहायक सामग्री तथा गतिविधियों का चयन करने का प्रयत्न किया जाता

है। इस तरह विषय विशेष से सम्बन्धित विषय सामग्री, पाठ्यक्रम, शिक्षण-अधिगम विधियों एवं तकनीक आदि का चुनाव करके विद्यार्थियों को अच्छे-से अच्छे अधिगम अनुभव प्रदान करने का इस प्रकार प्रयत्न किया जाता है कि निर्धारित शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण ढंग से उपलब्धि सम्भव हो सके। शिक्षण-अधिगम मार्ग पर आगे बढ़ते हुए एक स्थिति ऐसी आती है जबकि शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों की ही यह इच्छा जागती है कि वे यह जानें कि उनके शिक्षण अधिगम प्रयत्न किस रूप में आगे बढ़ रहे हैं। किस सीमा तक किस रूप में उनके कदम निर्धारित शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति की ओर आगे बढ़ रहे हैं, इसी बात की भाह पाते रहना ही शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर समुचित नियन्त्रण रखने हेतु आवश्यक चीज़ बन जाती है और यह कार्य मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव हो पाता है। इस प्रकार से जहाँ शिक्षण-अधिगम के लिए नियोजन का पहला चरण उद्देश्यों के निर्धारण से शुरू होता है और फिर अधिगम अनुभवों के उचित चयन एवं आयोजन तथा इन अनुभवों को प्रदान करने हेतु उपयुक्त विधियों, तकनीकों तथा शिक्षण सामग्री के चयन एवं उपयोग द्वारा इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विशेष प्रयत्न किए जाते है, वहीं मूल्यांकन के परिणाम समय-समय पर यह बताने की चेष्टा करते रहते हैं कि जो कुछ भी हो रहा है वह ठीक दिशा और दशा में हो रहा है अथवा नहीं। शिक्षण अधिगम उद्देश्यों ठीक प्रकार निर्धारित किए गए हैं या नहीं। अधिगम अनुभवों का चयन और आयोजन कितना उपयुक्त है, शिक्षण विधियाँ, तकनीक तथा सामग्री कितनी सार्थक हैं, विद्यार्थियों और शिक्षक के प्रयत्न कितने सही हैं, आदि-आदि। इस तरह सम्पूर्ण शिक्षक अधिगम प्रक्रिया पर समुचित नियन्त्रण रखते हुए उसे आगे ठीक दिशा और दशा में आगे बढ़ाने हेतु उपयुक्त पृष्ठपोषण (Feedback) प्रदान करते रहना ही एक अच्छी मूल्यांकन प्रक्रिया का एकमात्र उद्देश्य होता है।

मूल्यांकन द्वारा शिक्षण अधिगम की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं तथा सभी अवयवों पर इस प्रकार के नियन्त्रण और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में निहित सभी तत्त्वों की अन्त: निर्भरता को निम्न चित्र द्वारा अच्छी तरह समझा जा सकता हैं।

पाठ्यक्रम या अधिगम अनुभव
(Curriculum or Learning Experiences)

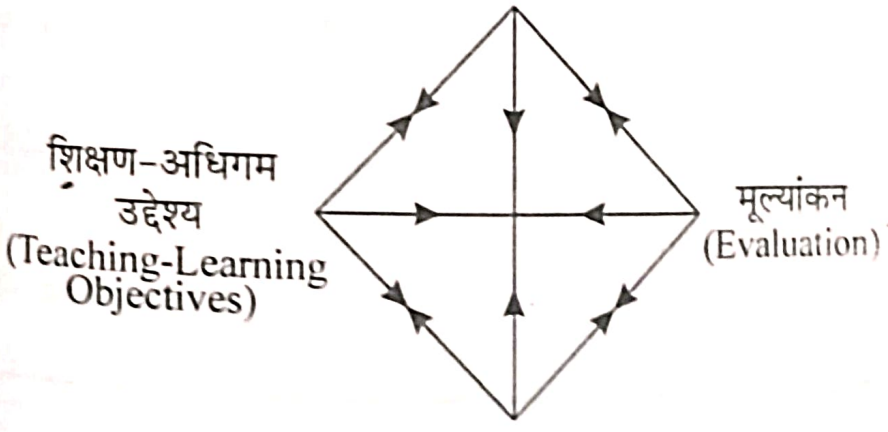

शिक्षण अधिगम की विधियाँ एवं तकनीकें (Methods and Techniques of Teaching-Learning)

उपरोक्त चित्रात्मक प्रस्तुति से यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि किस प्रकार शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में निहित तत्त्व, अवयव या स्तम्भ (Components or Pillars) एक-दूसरे पर निर्भर रहते हुए शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया और उसके परिणामों को किस रूप में प्रभावित करते हैं। मूल्यांकन की प्रक्रिया जहाँ निर्धारित शिक्षण अधिगम उद्देश्यों, अधिगन अनुभव, शिक्षण-अधिगम विधियों एवं तकनीकों की वांछनीयता तथा औचित्य के बारे में अपना फैसला सुनाने का प्रयत्न करती रहती है वहीं इन चारों में से कोई भी एक तथा अन्य मिलजुल कर मूल्यांकन हेतु उचित विधियों एवं तकनीकों के चयन एवं उपयोग हेतु उपयुक्त सुझाव देते रहते हैं।

मापन एवं मूल्यांकन में अन्तर (Distinction between the terms Measurement and Evaluation)

मापन (Measurement)	मूल्यांकन (Evaluation)
1. वस्तुओं और व्यक्तियों के गुणों की परिमाणात्मक व्याख्या मापन के कार्यक्षेत्र में आती हैं।	1. मूल्यांकन द्वारा वस्तुओं और व्यक्तियों के गुणों की परिमाणात्मक व्याख्या से आगे बढ़कर उनकी गुणात्मक व्याख्या भी की जा सकती हैं।
2. शिक्षा के क्षेत्र में मापन का अर्थ काफी सीमित होता है। शैक्षिक उपलब्धियों को मापकर उनको अंकों या प्रतिशत अंकों में व्यक्त कर देने से ही इसका कार्य समाप्त हो जाता हैं।	2. अंक या प्रतिशत अंक प्रदान करने से ही मूल्यांकन का कार्य समाप्त नहीं होता। यहाँ बालक का शिक्षा में या समूह विशेष में प्रथम या जो भी स्थान हो उसे अन्य बालकों के अंकों से तुलना कर ज्ञात किया जाता है तथा बालकों के प्राप्तांकों का शैक्षिक उद्देश्यों के सन्दर्भ में भी मूल्यांकन किया जाता हैं।
3. मापन का प्रमुख उद्देश्य किसी विषय या क्रिया में विद्यार्थियों की योग्यता या दक्षता को ज्ञात करना होता है।	3. मूल्यांकन का उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण रूप में जानकारी लेना और उसकी व्याख्या करना होता हैं।

मापन (Measurement)	मूल्यांकन (Evaluation)
उद्देश्य सीमित होने से शैक्षिक मापन में प्रयुक्त तकनीकें भी सीमित उपयोग वाली होती हैं। उपलब्धि परीक्षण तथा परिक्षाओं के द्वारा ही शैक्षिक उपलब्धियों का मापन हो जाता हैं।	4. मूल्यांकन में प्रयुक्त तकनीकों का क्षेत्र और उपयोग काफी विस्तृत होता हैं। व्यवहार के सभी पक्षों-ज्ञानात्मक, क्रियात्मक तथा भावात्मक में आगे वाले परिवर्तनों की सम्पूर्ण रूप से जाँच करने के लिए इन्हें प्रयुक्त किया जाता हैं। अत: विविध प्रकार की तकनीकों का उपयोग मूल्यांकन के लिए अनिवार्य बन जाता हैं।
5. मापन में प्रयुक्त विधियों एवं तकनीक तथा उसका प्रयोजन कक्षा में पढ़ाई जाने वाली बातों तथा निर्धारित पाठ्यवस्तु से ही होता हैं।	5. मूल्यांकन में प्रयुक्त विधियों एवं तकनीक तथा उनका प्रयोजन निर्धारित शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करना होता हैं।
6. शैक्षिक मापन का कार्य निश्चित समय और अवधि के बाद ही किया जाता हैं। यह बराबर चलने वाला कार्य नहीं हैं।	6. मूल्यांकन निश्चित समय और अवधि की सीमाओं में बँधा नहीं रहता। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
7. शैक्षिक मापन में बालक की शैक्षिक उपलब्धियों का ही केवल मापन होता हैं। बालक ने उपलब्धियों के अर्जन में क्या योग्यता दिखाई, इसी का ज्ञान मापन द्वारा सम्भव हैं।	7. मूल्यांकन में बालक की शैक्षिक उपलब्धियों के मूल्यांकन के अतिरिक्त शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों, अध्यापक द्वारा किए जाने वाले प्रयत्नों, शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों तथा प्राप्त सुविधाओं, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों आदि शिक्षण-अधिगम से सम्बन्धित सभी पहलुओं का मूल्यांकन किया जाता है।
8. मापन के परिणामों को बालक की आगे की प्रगति तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की भविष्य सम्बन्धी सफलता की जानकारी हेतु निश्चित रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता।	8. मूल्यांकन एक व्यापक एवं सतत प्रक्रिया है। क्षेत्र की विस्तृतता एवं तकनीकों की विविधता के कारण यहाँ बालक और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अच्छी तरह मूल्यांकन हो जाता हैं। अत: इसके परिणामों के द्वारा सार्थक भविष्यवाणी में काफी सहायता मिलती हैं।

मापन (Measurement)	मूल्यांकन (Evaluation)
9. मापन सभी दृष्टियों से मूल्यांकन का एक अंग मात्र हैं। मूल्यांकन की प्रक्रिया में यह एक साधन (means) के रूप में प्रयुक्त होता हैं।	9. मूल्यांकन की प्रक्रिया में मापन एक अंश के रूप में स्वतः ही शामिल हो जाता हैं। एक तरह से मूल्यांकन प्रक्रिया के रूप में जहाँ साधन है वहाँ परिणामों के रूप में साध्य (End) भी हैं।
10. मापन के माध्यम से भविष्यवाणी नही की जा सकती।	10. मूल्यांकन की सहायता से भविष्यवाणी की जा सकती है।
11. मापन की सहायता से तुलना नही की जा सकती।	11. मूल्यांकन की सहायता से तुलना की जा सकती है।
12. मापन, वस्तुनिष्ठ होता है।	12. मूल्यांकन व्यक्तिनिष्ठ होता है।
13. मापन के पैमाने अर्न्तराष्ट्रीय (International) होते हैं।	13. मूल्यांकन के पैमाने अर्न्तराष्ट्रीय (International) नहीं होते।
14. मापन प्रक्रिया पुरानी विधि है।	14. मूल्यांकन विधि एक नई तकनीक है।

मूल्यांकन की आवश्यकता एवं महत्त्व
(Need and Importance of Evaluation)

शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थी में परिवर्तन लाए जाते हैं मूल्यांकन तकनीकों के उपयुक्त प्रयोग के द्वारा अध्यापक यह निश्चित कर सकता है कि विद्यार्थियों ने कितनी सूचनाएं प्राप्त की हैं ? उनकी अभिवृत्ति में कितना परिवर्तन आया है ? उनकी कार्यप्रणाली में कितना सुधार आया है ? एक नई इकाई कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी और नवीन शिक्षण विधि कितनी प्रभावी भी ? मूल्यांकन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि–

1. उद्देश्य के स्पष्टीकरण में सहायक (Helpful in Clarifying Objectives): शिक्षा प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है उद्देश्यों का निर्धारण और दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं मूल्यांकन। मूल्यांकन उद्देश्यों पर आधारित होता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति पर निर्भर करती है। अध्यापक शिक्षा में उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए विषय के प्रत्येक प्रकरण के उद्देश्यों को समझने का प्रयास करता हैं।

2. विद्यार्थियों की प्रगति के बारे में ज्ञान प्रदान करता है (Provides Knowledge about the Progress of the Students) : मूल्यांकन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त ज्ञान के बारे में विद्यार्थियों की उन्नति का संकेत देता है। एक ओर अध्यापक विद्यार्थियों की शक्तियों एवं कमज़ोरियों के बारे में जान जाता है और दूसरी ओर विद्यार्थी यह जान जाते हैं कि वे कहाँ हैं और उनके प्रयत्न कहाँ तक सफल हो पाए हैं।

3. परामर्श के आधार (Basis of Guidance) : मूल्यांकन व्यक्तिगत विभिन्नताओं जैसे योग्यताओं, अभिवृत्तियों, रूचियों, उपलब्धियों और व्यक्तित्व के अन्य पक्षों के बारे में जानने में अध्यापक की सहायता करता है। विभिन्न परीक्षाओं के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों की उन्नति के आधार पर, उन्हें शैक्षिक एवं व्यावसायिक परामर्श प्रदान किया जा सकता है। यह व्यक्तिगत कमजोरियों को दूर करने के लिए उपचारात्मक अनुदेशन तैयार करने में मार्गदर्शन के लिए आधार प्रदान करता हैं।

4. विद्यार्थियों के वर्गीकरण में सहायक (Helpful in Classification of Student) : मूल्यांकन विद्यार्थियों की योग्यताओं को जानने में अध्यापक की सहायता करता है और वह विभिन्न परीक्षाओं में उनकी उपलब्धि के अनुसार उनका वर्गीकरण कर सकता है। यह इसी के अनुसार उसे अपनी शैक्षिक प्रक्रिया के चयन करने में सहायक होगा। इससे समरूप उन्नति को निश्चित करेगा और शैक्षिक अपव्यय को रोकेगा।

5. दाखिले का आधार (Basis of Admission) : मूल्यांकन विभिन्न परीक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों की क्षमताओं, योग्यताओं तथा उपलब्धि को जानने में सहायता करता है। परिणाम के आधार पर उन्हें अगली कक्षा में दाखिला दिया जाता है? यह एक विशेष अध्ययन पाठ्यक्रम के लिए न्यूनतम आवश्यक उपलब्धि के बारे में जानकारी देता है जो किसी एक, विशेष स्तर पर कुशलता की दीवार होती है जिसे विद्यार्थी को पार करना होता हैं।

6. शिक्षा के योजना निर्माण का आधार (Basis of Planning of Education) : मूल्यांकन की सहायता से हम यह निर्णय कर सकते हैं कि हमने विषय के उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार का निर्णय हमें शिक्षण प्रणाली की योजना का निर्माण करने में सहायक होगा कि हमें कहाँ परिवर्तन की आवश्यकता है।

7. प्रोत्साहन प्रदान करने में सहायक (Helpful in Providing Incentives) : मूल्यांकन विद्यार्थियों के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने में सहायता करता है क्योंकि परीक्षा

विद्यार्थी के समक्ष एक लक्ष्य निर्धारित करती है। वे उपलब्धि के उच्चतम स्तर तक पहुँचने का भरसक प्रयत्न करते हैं। जब वे यह उपलब्धि प्राप्त कर लेते हैं, तो यह उन्हें अधिक मेहनत करने के लिए प्रेरणा देता हैं।

8. अध्यापक की कुशलता के परीक्षण में सहायक (Helpful in Testing the Efficiency of the Teacher) : अध्यापक के द्वारा विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए जिस शिक्षण विधि का प्रयोग किया जाता है उसकी प्रभावशीलता को मूल्यांकन की सहायता से जांचा जा सकता है। यदि परिणाम अच्छे न हो, तो यह प्रतीत होता है कि शिक्षण विधि में परिवर्तन की आवश्यकता है। इस प्रकार अध्यापक मूल्यांकन के द्वारा अपने शिक्षण की सफलता या असफलता के बारे में जान सकता है।

9. वजीफा देने में सहायक (Helpful in Awarding Scholarship) : मूल्यांकन की सहायता से विद्यार्थियों की उन्नति की जांच की जा सकती है और उन्हें अभिप्रेरित किया जा सकता है। उपलब्धि तथा बौद्धिक परीक्षण के आधार पर भारत की सरकार, राज्य सरकारें वजीफे प्रदान करने के लिए कुछ विद्यार्थियों का चयन करती हैं।

10. स्कूल कार्यक्रम में सुधार लाने में सहायक (Helpful in Bringing Improvement in the School Programme) : मूल्यांकन शिक्षा कार्यक्रमों को शक्तियों एवं कमजोरियों को जानने में सहायता करता है। इसी के आधार पर हम विभिन्न विद्यालयों के कार्यक्रमों की तुलना भी कर सकते है। यही तुलना स्कूल की कार्यप्रणाली में सुधार करने में सहायक होती है।

11. अच्छे अधिगम को बढ़ावा (Promotion of Better Learning) : मूल्यांकन में विभिन्न तकनीकों की सहायता से विस्तृत तथा निरन्तर प्रक्रिया से विद्यार्थी की प्रगति की जांच की जाती है। इससे केवल औपचारिक ज्ञान को ही नहीं अपितु उचित अभिवृत्तियों, कौशलों, आदतों, अवबोध आदि को भी मूल्यांकित किया जा सकता है। इससे अधिगम को बढ़ावा मिलेगा और यह विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होगा।

12. पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाने में सहायक (Helpful in Bringing Change in the Curriculum) : मूल्यांकन उद्देश्यों पर आधारित होता है और उद्देश्य विद्यार्थी की आवश्यकताओं, रूचियों और अधिगम के मनोविज्ञान पर आधारित होते हैं। यह पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाने में सहायक होता है जिसके परिणामस्वरूप उसे तीव्रता से परिवर्तित तथा जटिल समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जा सके।

इस प्रकार मूल्यांकन शिक्षण विधियों में सुधार लाने में, अच्छा पाठ्यक्रम बनाने में तथा समुदाय के प्रति स्कूल के कार्यक्रमों को उचित ढंग से कार्यान्वित करने में सहायता करता है।

मूल्यांकन की विशेषताएं (Characteristics of Evaluation)

1. विषयानुकूलता (Validity) : अच्छा परीक्षण वही माना जाता है जो विषय के अनुकूल हो यर्थात् उसके द्वारा वही मापा जाए जिसे मापने के लिए उसे प्रयोग में लाया गया हो। (it should measure what it seeks to measure) हम अपने जीवन में कोई भी कार्य करते है तो उसके पीछे हमारा एक उद्देश्य होता है। अगर एक test हम बनाते है तो उसका भी एक उद्देश्य होगा जैसे कि अगर हम test से यह पता लगाना चाहते है कि एक Unit (Unit) जो हमने पढ़ाई है। वह बच्चों की कितनी समझ में आई है। तो वह test जो हमने बनाया है। वह इस बात का पता लगाने में हमारी मदद करे। तभी वह Valid test होगा। वह test तब Valid नही होता जब हम यह पता लगाने में कामयाब नही होते कि बच्चों ने जितना पढ़ा है। वह कहाँ तक समझ में आया। इस तरह से जीवन विज्ञान को उपलब्धि परीक्षण को विषयानुकूल तभी कहेंगे जबकि उसके द्वारा हम जीव-विज्ञान सम्बन्धी योग्यता को ही माप और भाषा की योग्यता, स्वच्छता एवं सामान्य बुद्धि को नही।

2. विश्वसनीयता (Reliability) : विश्वसनीयता से तात्पर्य उस श्रद्धा से है जो एक परीक्षा में स्थापित की जा सकती है। अगर एक घड़ी ठीक समय देती है तो कई बार उसकी जाँच करने पर उस पर अनायास ही विश्वास जम जाता है। इसी प्रकार अगर किसी परीक्षा में विद्यार्थी की योग्यता का यथार्थ रूप से मूल्यांकन करने से उसमें कोई अन्तर नही आता तो उसे हम विश्वसनीय कहेंगे। अगर एक बार परीक्षा देने में परीक्षक किसी भी विद्यार्थी को 100 में से 60 अंक देकर उच्च स्तर का घोषित करे तथा दूसरी बार वही परीक्षक उसी परीक्षार्थी को 100 में से 40-45 अंक देकर सामान्य स्तर का घोषित करे तो ऐसी परीक्षा कभी भी विश्वसनीय नही हो सकती।

3. वस्तुनिष्ठता (Objectivity) : इसका अर्थ यह है कि किसी भी प्रश्न का उत्तर देते समय विद्यार्थी और जाँचते समय परीक्षकगण अपनी-अपनी रूचियों, भावनाओं तथा जानकारी को ही महत्त्व देते हुए अगर अपने उत्तर को अपने रंग में न रंग सके तो वह उपलब्धि परीक्षण वस्तुनिष्ठ कहलाता हैं। अगर किसी परीक्षा में विद्यार्थी का अपनी रूचि, भावनाओं तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण का प्रतिविम्ब उत्तर देने में न पड़े और अध्यापक का व्यक्तिगत पक्षपात उसकी मानसिक अवस्था, रूचि और भावनाओं का प्रभाव विद्यार्थियों के अंको पर न पड़े तो वह परीक्षण वस्तुनिष्ठ कहलाता हैं। किसी भी परीक्षा की वस्तुनिष्ठता उसके प्रश्नों को देखकर आसानी से पहचानी जा सकती हैं। अगर प्रश्नों का उत्तर संक्षिप्त और प्रत्येक परिस्थिति में एक-सा ही हो और उस पर व्यक्तिगत दृष्टिकोण,

पसन्द-नापसन्द तथा भावनाओं का कोई प्रभाव न पड़े तो वह परीक्षा न पड़े तो वह परीक्षा वस्तुनिष्ठ कही जा सकती हैं।

4. समुचितवरण (Comprehensiveness) : उपलब्धि परीक्षण का उद्देश्य पूर्ण पढ़ाई गई सभी बातों के बारे में यह पता लगाना होता है कि विद्यार्थी उनको ठीक प्रकार से समझ पाए हैं अथवा नहीं तथा उनमें कितनी योग्यता और ज्ञान की वृद्धि हुई है। अतः परीक्षण ऐसा होना चाहिए कि इस दिशा में वह अधिक-से-अधिक जाँच कर सके, उसमें सभी प्रकरणों, प्रकरणों के सभी अंशों तथा अन्य उपयोगी ज्ञान की उचित जाँच की क्षमता हो। ऐसा न हो कि कुछ प्रकरणों में से प्रश्न पूछ लिए जाएँ और कुछ बिल्कुल अछूते ही रह जाएं। फिर एक प्रकरण में से एक प्रश्न चुन लेने से प्रकरण के सभी अंशों को उचित प्रतिनिधित्व कैसे मिल सकता है ? अगर जाँच करनी ही है तो प्रत्येक पढ़ाए हुए अंश को उचित स्थान मिलना ही चाहिए। समुचितवरण तभी हो सकता है जबकि परीक्षण में प्रश्नों की संख्या अधिक हो तथा प्रश्न इस प्रकार के हों कि वे पढ़ाए हुए ज्ञान के सभी क्षेत्रों का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें।

5. निदानात्मकता (Diagnosticity) : एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में निदानात्मक का गुण भी होना चाहिए। जिस तरह किसी भी रोग का उचित निदान उसके उपचार के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार विद्यार्थियों की कमियों, कठिनाइयों तथा रूचियों इत्यादि का उचित ज्ञान भी आवश्यक है जिससे उनकी रूकावटों को दूर किया जा सके। अच्छा परीक्षण वही कहा जा सकता है जो इस दिशा में उचित सहयोग दे।

6. आवहारिकता (Practicability) : उपलब्धि परीक्षण के व्यावहारिक होने का अर्थ उसकी निम्न विशेषताओं में है :-

***(a)* बनाने में आसानी** (Ease in Preparation) : परीक्षण का साधन (प्रश्न-पत्र और अन्य सामग्री) अधिक खर्चीला न हो तथा उसे तैयार करने में अधिक परिश्रम तथा समय नहीं लगता हो।

***(b)* परीक्षा लेने में आसानी** (Ease in Examination) : जब विद्यार्थी की जाँच की जाएं तो उनकी विना किसा प्रवन्धात्मक (Administrative) तथा अनुशासन सम्वन्धी समस्या की ठीक जाँच की जा सके। छात्र आपस में नकल तथा पूछताछ द्वारा अनुचित लाभ उठाने में समर्थ न हो सकें।

***(c)* अंक लगाने में आसानी** (Ease in Scoring) : परीक्षक को विद्यार्थियों के अंक लगाने में आसानी हो। अधिक लम्बे-लम्बे प्रश्नों को ठीक प्रकार से पढ़ने और

करने के बाद सभी विद्यार्थियों के उत्तर का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए अंक देना अध्यापक के लिए बड़ा सिरदर्द बन जाता है। इसलिए परीक्षण ऐसा होना चाहिए जिसमें अध्यापक को उचित और न्यायपूर्ण अंक लगाने में आसानी हो।

7. **सरलता व स्पष्टा** (Simplicity and Clarity) : एक अच्छे मूल्यांकन में सरलता व स्पष्टता का गुण होना आवश्यक है, क्योंकि इसी पर किसी कार्यक्रम की सफलता निर्भर करती है। यदि मूल्यांकन सरल व स्पष्ट नहीं होगा तो यह बच्चों की समझ में नहीं आएगा अर्थात् बच्चों के मानसिक स्तर के अनुकूल न होने पर मूल्यांकन सार्थक नहीं हो सकता। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आवश्यक परिणामों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों से पूछे जाने वाले प्रश्न सरल व स्पष्ट हों।

8. **प्रेरणादायक** (Motivator) : मल्यांकन इस तरह का हो जो बच्चों को निराशा की तरफ न धकेले, बल्कि उनको और अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रेरित करे। मूल्यांकन चुनौतीपूर्ण हो तभी विद्यार्थी अपना पूरा प्रयास लगाने के लिए उत्साहित होंगे।

9. **निरन्तरता** (Continuous) : मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है। इसलिए निरन्तरता का गुण मूल्यांकन में अवश्य हो। परम्परागत परीक्षा प्रणाली में वर्ष के अन्त में एक बार ही मूल्यांकन किया जाता था परन्तु आधुनिक शिक्षा प्रणाली में निरन्तर मूल्यांकन पर जोर दिया जाता है।

10. **आलोचना का सामना करने वाली** (To Meet Criticism) : मूल्यांकन प्रणाली के द्वारा प्राप्त परिणामों से माता-पिता तथा अधिकारियों को सूचित करके यह दिखाया जा सकता कि समाज में स्कूल का क्या महत्त्व है। इस प्रकार मूल्यांकन माता-पिता तथा समाज के अन्य वर्गों से आलोचना प्राप्त करके उनका सुझाव तथा सहयोग प्राप्त करने वाली होनी चाहिए।

मूल्यांकन यद्यपि शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग है, तथापि यह तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक इसमें उपरोक्त गुण शमिल न हो अर्थात् इसमें विश्वसनीयता, प्रमाणिकता, वस्तुनिष्ठता, सरलता, निरन्तरता इत्यादि के गुण अवश्य होने चाहिए।

मूल्यांकन प्रविधियां
Evaluation Devices)

मूल्यांकन प्रविधियां प्राय : दो प्रकार की होती है :-

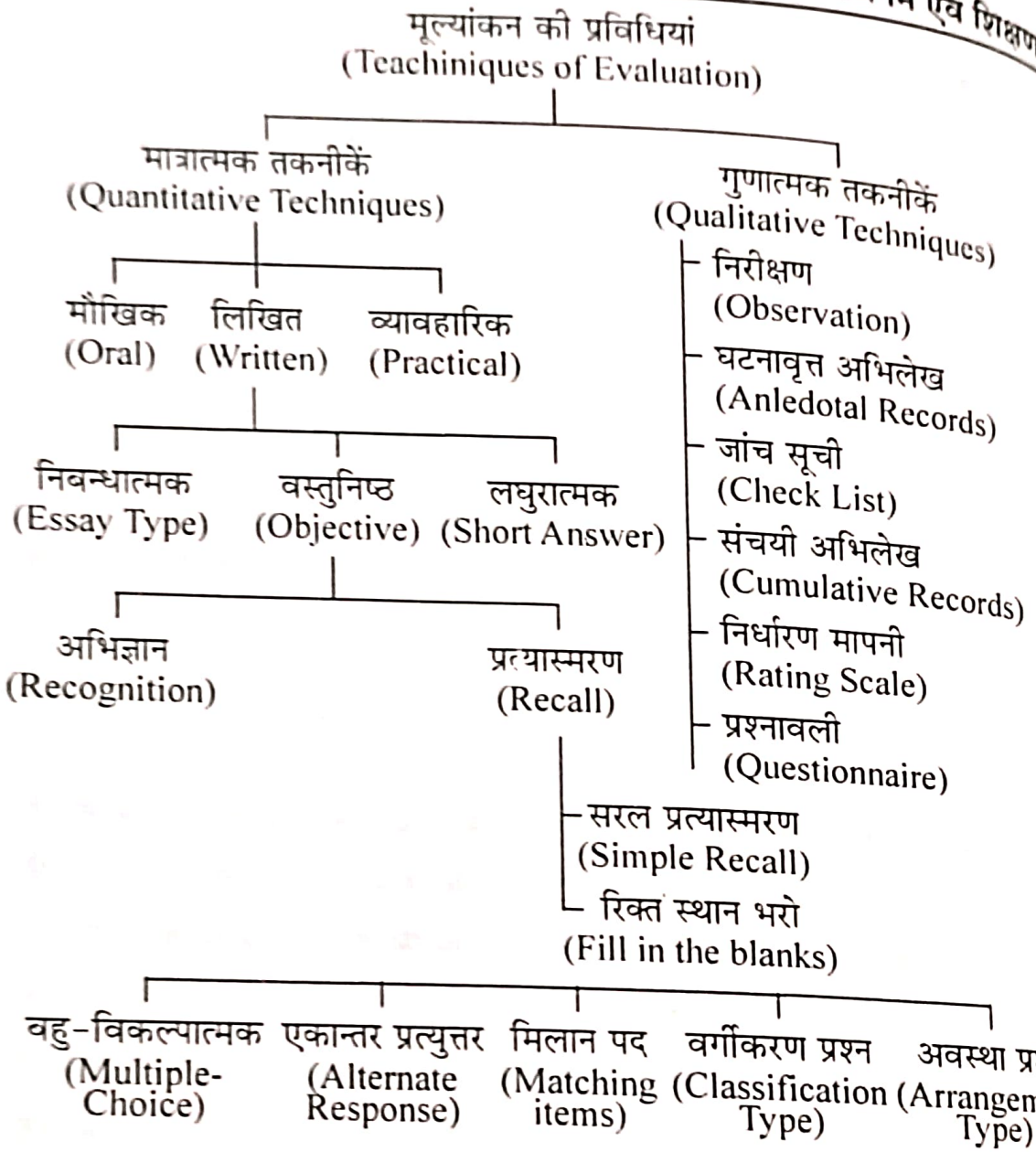

परिणामात्मक प्रविधियां
(Quantitative Devices)

इस प्रकार की प्रविधियों से मात्रात्मक परिणाम प्राप्त होते है जैसे 80 किलोमीटर, 20 लीटर, 86 अंक आदि। शिक्षा में इनका प्रयोग जांच के रूप में होता है जो मौखिक, लिखित या प्रायोगिक होती हैं। इन परीक्षणों का प्रयोग प्राय: विद्यार्थी की उपलब्धि जानने के लिए किया जाता हैं।

1. लिखित परीक्षाएं
(Written Examinations)

लिखित परीक्षाओं को बाह्य-परीक्षाएं भी कहा जाता है। इस प्रकार की परीक्षाओं में लिखित सामग्री के साथ-साथ पैन, पैंसिल और स्याही का भी प्रयोग होता है। इस प्रकार

की परीक्षाओं में विद्यार्थियों से एक लिखित प्रश्न-पत्र (Question Paper) के माध्यम से समान प्रश्न पूछे जाते हैं। विद्यार्थियों को प्रश्नों के उत्तर लिखने के लिए उत्तर-पुस्तिका में लिखता है, जिन्हें बाद में एकत्र कर मूल्यांकन के लिए भेज दिया जाता है। उत्तर-पुस्तिका के मूल्यांकन में मिलने वाले अंकों के आधार पर ही विद्यार्थी की अग्रिम कक्षा में उन्नति होती है-

(क)	(ख)	(ग)
निबन्धात्मक परीक्षाएं (Essay Type Examination)	लघु उत्तरात्मक परीक्षाएं (Short Answer Type Examination)	वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं (Objective Type Examination)

(क) निबन्धात्मक परीक्षाएं (Essay Type Examination) : शिक्षण में विद्यार्थियों को कुछ विचारात्मक प्रश्न दिए जाते हैं, जिनका उत्तर विद्यार्थियों को प्राप्त ज्ञान के अनुसार देना पड़ता है। इन परीक्षाओं में प्रश्न का उत्तर निबन्ध की भान्ति बड़े आकार में लिखना पड़ता है, इसलिए इन्हें निबन्धात्मक परीक्षाएं करते हैं। इन्हें परम्परागत परीक्षाएं भी कहा जाता है क्योंकि ये प्राचीन समय से चली आ रही है। चाहे विद्यार्थियों को विद्यालय में प्रवेश पाने के लिए परीक्षा देनी हो या कक्षा उन्नति के लिए परीक्षा देनी हो, यहीं परीक्षाएं मुख्य आधार मानी जाती है। इन परीक्षाओं के माध्यम से बालक की उपलब्धि के साथ उसकी कार्य क्षमता, लेखन-क्षमता, एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी हो जाता हैं।

निबन्धात्मक परीक्षाओं की विशेषताएं एवं लाभ (Characteristics and Advantages of Essay Type Tests)

1. इस प्रकार की परीक्षाओं के आयोजन पर बहुत कम धन खर्च होता हैं अत: ये परीक्षाएं अत्यन्त कम खर्चीली है।
2. इस प्रकार की परीक्षाओं में प्रश्नों की संख्या अधिक न होकर बहुत कम होती है, जो कि प्रश्न-पत्र निर्माण में सहायक सिद्ध होती है।
3. इस प्रकार की परीक्षाओं में विद्यार्थियों को अपने विचार स्वतन्त्रता से प्रकट करने पड़ते हैं। विचारों की स्वतन्त्रता के कारण छात्रों की मौलिकता का पता चलता है।
4. इन परीक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों (रूचि, मूल्य, अभिवृत्ति आदि) का भी पता चलता है।
5. निबन्धात्मक परीक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों की लेखन की योग्यता का भी अनुमान भली-भांति लगाया जा सकता हैं।
6. इस प्रकार की परीक्षाओं के आयोजन से विद्यार्थियों की आलोचनात्मक शक्ति भी विकसित होती है।

7. इन परीक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों की उच्च मानसिक क्षमता का बोध होता है।
8. इस प्रकार की परीक्षाओं से रचनात्मक प्रवृत्ति को विकसित किया जा सकता है।
9. इस प्रकार की परीक्षाओं के आयोजन से चित की एकाग्रता विकसित होती है।
10. इस प्रकार की परीक्षाओं में नकल की प्रवृत्ति को दूर किया जा सकता है।
11. निबन्धात्मक प्रश्नों की संख्या कम होने के कारण इनका मूल्यांकन अत्यन्त सरल होता हैं।

निबन्धात्मक प्रश्नों के दोष
(Defects of Essay Type Tests)

1. इन परीक्षाओं का मुख्य दोष यह है कि इनमें विद्यार्थियों की रटने की प्रवृत्ति को बल मिलता है।
2. इस प्रकार की परीक्षण में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को केन्द्र में न रखकर के कुछ प्रश्नों पर ही बल दिया जाता है।
3. उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन विभिन्न परीक्षकों से होने के कारण मूल्यांकन की विश्वसनीयता बरकरार नहीं रहती।
4. इस प्रकार की परीक्षाएं योग्यता का ठीक मापन न करके छात्रों के भाग्य एवं अवसर पर आधारित मानी जाती है।
5. प्रश्न-पत्रों का निर्माण में उद्देश्यों को ध्यान में रखकर नहीं किया जाता, इसलिए छात्रों के ज्ञानोपार्जन का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाता।
6. इस प्रकार की परीक्षाओं के माध्यम से विषय सम्बन्धी कमियों का ज्ञान नहीं हो पाता।
7. कई बार अध्यापक पूर्ण पाठ्यक्रम की अपेक्षा विद्यार्थियों को केवल चयनित प्रश्न ही तैयार करवाता है, जिसके कारण विद्यार्थियों का लक्ष्य केवल परीक्षा में पास होना रह जाता है।
8. इस प्रकार की परीक्षाओं से विद्यार्थियों की स्मरणक्षमता के साथ लिखने की गति का भी परीक्षण किया जाता है। जिन विद्यार्थियों में यह क्षमता वही है, यह अपना प्रश्न-पत्र पूर्ण नहीं कर पाता।

(ख) लघु उत्तरात्मक परीक्षाएं (Short Answer Type Examination) : इस प्रकार की परीक्षाओं में पूछे गए प्रश्नों का आकार निबन्धात्मक प्रश्नों की तुलना में काफी छोटा होता है। इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में पूछा जाता है। इन परीक्षाओं का

कम समय में विद्यार्थियों के ज्ञान का परीक्षण करना होता है। इस प्रकार के
को या तो 10 से 15 पंक्तियों में हल करवाया जाता है या फिर 100 से 150 शब्दों
उत्तर लिखना होता है।

लघु उत्तरीय प्रश्नों के उदाहरण

1. छंद ग्रहण कैसे और क्यों होता है ?
2. उपराष्ट्रपति का चुनाव हमारे देश में कैसे होता है ?
3. स्वतन्त्रता के अधिकार से आप क्या समझते है ?
4. संसद के कोई दो कार्य लिखिए।

इन परीक्षाओं में निबन्धात्मक परीक्षाओं की भांति अधिक विश्वसनीयता और वैधता
नहीं होती है। उपयोगिता और समर्थता की दृष्टि से भी इन परीक्षाओं को कम नहीं आंका
जा सकता। इन परीक्षाओं का मूल्यांकन अधिक विश्वसनीय और अधिक व्यवहारिक होने
के कारण उन्हें मूल्यांकन का एक प्रमुख अंग बना लेना चाहिए।

(ग) **वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं** (Objective Type Examination) : इस प्रकार की
परीक्षाओं का उद्देश्य बालक के वास्तविक ज्ञान की परीक्षाओं में एक या दो शब्दों अथवा
वाक्य में अथवा ठीक (√) या गलत (×) के चिह्न द्वारा अपना मत प्रकट करना होता
है। इन परीक्षाओं से छात्रों की तर्क शक्ति और निर्णय शक्ति विकसित होती है। प्राचीन
समय इन परीक्षाओं का कोई महत्त्व नहीं था, परन्तु आधुनिक युग में इन परीक्षाओं का
काफी चलन है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के प्रकार
(Types of Objective Questions)

इस प्रकार के प्रश्नों को प्राय: निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

1. प्रत्यास्मरण प्रश्न (Recall Types Questions)
2. रिक्त स्थान पूरक प्रश्न (Completion Type Question)
3. सत्यता/असत्यता की जांच करना (True-False Type Question)
4. बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Question)
5. उचित मिलान करने वाले प्रश्न (Correct Matching Type Question)
6. वर्गीकरण सम्बन्धी प्रश्न (Classification Type Question)

1. **प्रत्यास्मरण प्रश्न** (Recall Type Questions) : इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर
छात्र अपनी स्मरण-शक्ति के सहारे देते हैं जैसे:-

(क) स्वतन्त्रता संग्राम कब प्रारम्भ हुआ ? ( )

(ख) पानीपत की दूसरी लड़ाई कब लड़ी गई ? ( )

(ग) भारत के प्रथम राष्ट्रपति कौन थे ? ( )

(घ) हमारा देश कब स्वतन्त्र हुआ ? ( )

(ङ) संविधान सभा के अध्यक्ष कौन थे ? ( )

2. रिक्त स्थान पूरक प्रश्न (Completion Type Questions) : इस प्रकार के प्रश्नों के मध्य में एक या दो शब्द जान-बूझकर रिक्त छोड़ दिए जाते हैं। विद्यार्थियों के द्वारा इन शब्दों को पूर्ण करवाकर उन्हें विषय-वस्तु का पुनः स्मरण करवाया जाता है। जैसे:-

(क) पानीपत की पहली लड़ाई 1526 में लड़ी गई।

(ख) भारतीय कांग्रेस की स्थापना ..... ने की।

(ग) थार मरूस्थल..... में है।

(घ) भारत में सबसे कम वर्षा ..... में होती है।

(ङ) गंगा, यमुना और सरस्वती नदी का संगम स्थल..... में है।

3. सत्यता और असत्यता की जांच करने वाले प्रश्न (True-False Type Question) : इस प्रकार के प्रश्नों में कुछ तो सत्य कथन होते हैं और कुछ असत्य कथन होते हैं। विद्यार्थियों को पढ़े हुए तथ्यों के आधार पर सही और गलत की पहचान करवाई जाती है। वे अपने निर्णय का सत्य (√) और असत्य (×) को चिन्हों के द्वारा प्रकट कर सकते हैं जैसे:-

(क) पानीपत की पहली लड़ाई 1526 में लड़ी गई। (सत्य/असत्य)

(ख) गोवा एक केन्द्र शासित प्रदेश है। (सत्य/असत्य)

(ग) भारत विश्व में अभ्रक का प्रमुख उत्पादक देश है। (सत्य/असत्य)

(घ) नर्मदा नदी बिहार में बहती है। (सत्य/असत्य)

(ङ) नेहरू स्वतन्त्रता संग्राम के महानायक थे। (सत्य/असत्य)

4. बहु-विकल्पी प्रश्न (Multiply Choice Type Questions) : इस प्रकार के प्रश्नों के कई उत्तर दिए जाते हैं। इन उत्तरों में से कोई एक उत्तर ठीक होता है और शेष गलत होते हैं। विद्यार्थियों को पढ़े गए पाठ के अनुसार सम्बन्धित उत्तरों में से सही उत्तर का चुनाव करना पड़ता है। जैसे :-

(क) भारत के वर्तमान प्रधानमन्त्री हैं-

(*i*) अटल बिहारी वाजपायी,

(*ii*) प्रतिभा पाटिल,

(*iii*) मनमोहन सिंह,

(*iv*) इनमें से कोई भी नहीं।

(ख) जम्मू-कश्मीर की राजधानी है-

(*i*) लखनऊ,

(*ii*) श्रीनगर,

(*iii*) भोपाल,

(*iv*) ग्वालियर।

5. उचित मिलान करने वाले प्रश्न (Correct Matching Type Questions) : इस प्रकार के प्रश्नों में दो खाने बनाकर पहले खाने में प्रश्न लिखे जाते हैं तथा दूसरे खाने में उत्तर लिखे जाते हैं। बस अन्तर यही होता है कि उत्तरों के क्रम प्रश्नों के क्रम के अनुसार न होकर आगे-पीछे होते हैं। विद्यार्थियों से प्रश्नों के साथ सही उत्तरों का मिलान करवाया जाता है। जैसे-

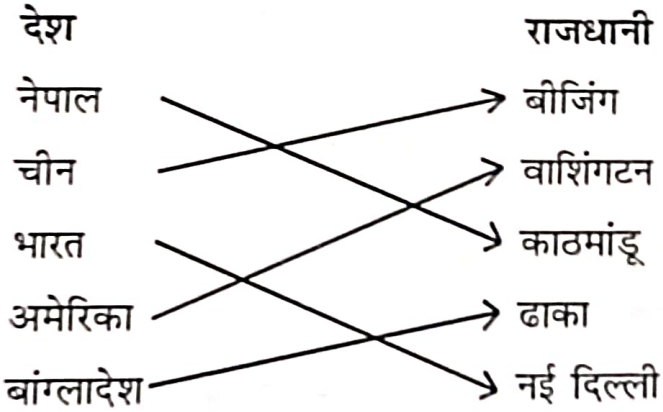

6. वर्गीकरण सम्बन्धी प्रश्न (Classification Type Question) : इस प्रकार के प्रश्नों में कुछ ऐसे शब्द रखे जाते हैं, जो किसी एक शब्द को छोड़कर किसी एक वर्ग या समूह से सम्बन्धित होते हैं। विद्यार्थियों के द्वारा उस असम्बन्धित शब्द का चुनाव करवाया जाता है। जैसे:-

(*i*) चंडीगढ़, मुंबई, भोपाल, पटना, सिकंदराबाद ( )

(*ii*) अकबर, जहांगीनर, बहादुरशाह, दाराशिकोह ( )

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं के लाभ
(Advantages of Objective Type Tests)

1. इन परीक्षाओं में दिए गए प्रश्नों के उत्तर एक या दो शब्दों में दिए जाते हैं। अत: अध्यापक इन परीक्षाओं के माध्यम से सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की जांच कर सकता है।
2. इस प्रकार की परीक्षाओं में सफलता पाने के लिए विद्यार्थियों को समस्त विषय-वस्तु का ज्ञान होना जरूरी हैं अत: इस प्रकार की परीक्षाओं में रटने की प्रक्रिया से छुटकारा मिलता है।
3. इस प्रकार की परीक्षाओं का मूल्यांकन करना, अंक देना अत्यंत सरल है। अत: इस प्रकार की परीक्षाओं में पक्षपात की सम्भावना नहीं रहती।
4. इन परीक्षाओं में छोटे-छोटे प्रश्न किसी-न-किसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर तैयार किए जाते हैं अत: ये परीक्षाओं अधिक विश्वसनीय और वैध होती हैं।
5. इस परीक्षा में लेखन की गति और स्मरण शक्ति का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। मंदगति से लिखने वाला विद्यार्थी भी इन परीक्षाओं में अधिक अंक प्राप्त कर सकता हैं।
6. इस प्रकार की परीक्षाओं में निरर्थक और असंगत बातों के लिए कोई स्थान नहीं होता। क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर एक या दो शब्दों में ही देना होता है।
7. इस प्रकार की परीक्षाओं में भाषा सम्बन्धी त्रुटियों का कोई स्थान नहीं होता।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं के दोष
(Demerits of Objective Type Test)

1. इस प्रकार के प्रश्न-पत्रों के निर्माण का कार्य अत्यंत कठिन होता है। इसके लिए विषय-विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। क्योंकि इन प्रश्नों को सम्पूर्ण पाठ्यक्रम में से चुना जाता है।
2. इस प्रकार की परीक्षाओं में उत्तर केवल 'हां' या 'ना' में देना पड़ता है। अत: विषय-वस्तु की बिल्कुल जानकारी न होने पर भी बच्चे अनुमान के सहारे सफलता पा लेते हैं।
3. इस प्रकार की परीक्षाओं में व्याख्या, विचार-अभिव्यक्ति, भाषा-प्रयोग, व्याकरण-ज्ञान, वर्तनी सुधार के अवसर नहीं मिलते जिससे विद्यार्थियों में मौलिकता, तर्क-शक्ति और कल्पना-शक्ति आदि का विकास नहीं हो पाता।
4. उत्तर छोटे होने के कारण इन परीक्षाओं में नकल करना अत्यंत सरल है। अत: इन परीक्षाओं से नकल की प्रवृति बढ़ती है।

5. प्रश्नों की अधिकता होने के कारण अध्यापक पर कार्य का बोझ अधिक बढ़ जाता है। अत: कार्य की अधिकता के कारण इनका संचालन व मूल्यांकन उचित प्रकार नहीं होता।

6. इस प्रकार की परीक्षाओं में स्वतन्त्र-चिन्तन और अभिव्यक्ति का कोई स्थान नहीं है, जिससे बालक का सम्पूर्ण विकास सम्भवन नहीं हैं।

2. मौखिक परीक्षाएं (Oral Test)

शिक्षा के मूल्यांकन में मौखिक परीक्षाओं अपना विशेष महत्त्व है। ये परीक्षाएं विद्यार्थियों से प्रश्न पूछकर ली जाती है। अध्यापक अपने द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान को इन परीक्षाओं के माध्य से मूल्यांकित करता है कि विद्यार्थी ने ज्ञान को कहा तक ग्रहण किया है। इस परीक्षा में लिखित परीक्षा की भांति अनुचित साधनों के प्रयोग का कोई स्थान नहीं है। इन परीक्षाओं के माध्यम से जहां बालक के आत्मविश्वास का मूल्यांकन होता है, वहीं दूसरी और उसके अभिव्यक्ति सम्बन्धी गुण का भी बोध होता है। मौखिक परीक्षाओं को समूची शिक्षण-प्रक्रिया में प्रयुक्त किया जाना चाहिए क्योंकि इस प्रकार की परीक्षाओं से विद्यार्थियों की योग्यता, बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धियों से सम्बन्धित बहुत-सी बातों का ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार की परीक्षाएं प्रश्न, वाद-विवाद, विचार-विमर्श तथा नाटक आदि में अधिकतर प्रयुक्त होती है।

मौखिक परीक्षाओं के गुण अथवा विशेषताएं (Characteristics of Oral Tests)

मौखिक परीक्षा लेते समय अध्यापक या वक्ता को परीक्षण सम्बन्धी सामग्री का प्रयोग करना पड़ता है। अत: जरूरी है कि अध्यापक या वक्ता को बड़ी सूझ-बूझ के साथ परीक्षण-सामग्री का प्रयोग करना चाहिए। मौखिक परीक्षाओं में प्रयुक्त होने वाली परीक्षण सामग्री में निम्न विशेषताएं होनी चाहिए:-

1. सरल तथा स्पष्ट भाषा का प्रयोग : मौखिक परीक्षाओं में प्रयुक्त भाषा अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए ताकि छात्र प्रश्न को सुनते ही समझ जाएं और उसका उपयुक्त उत्तर दे सकें।

2. विषय-वस्तु का सरल होना : मौखिक परीक्षाओं में प्रयुक्त विषय-वस्तु भी अत्यंत सरल होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी को वार्तालाप में किसी कठिनाई का सामना न करना पड़े।

3. उद्देश्य की स्पष्टता : मौखिक-परीक्षण करते समय अध्यापक को चाहिए कि वह परीक्षण करने से पहले विद्यार्थियों के समझ उद्देश्यों को स्पष्ट करें।

4. प्रेरणादायी प्रश्नों का प्रयोग : अध्यापक को मौखिक परीक्षाओं में प्रेरणादायी प्रश्नों का प्रयोग करना चाहिए ताकि विद्यार्थी तुरंत अनुक्रिया प्रदान कर सकें।

5. प्रश्नों की स्पष्टता : अध्यापक को चाहिए कि वह मौखिक-परीक्षाओं के दौरान स्पष्ट प्रश्न करें ताकि विद्यार्थी प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर देने का प्रयास करें। विद्यार्थी से द्वि-अर्थी प्रश्न और अस्पष्ट प्रश्न नहीं किए जाने चाहिए।

6. परीक्षण-सामग्री की सामान्य-प्रकृति का होना : मौखिक परीक्षाओं में प्रयुक्त परीक्षण-सामग्री सामान्य-प्रकृति की होनी चाहिए। इस सामग्री को धर्म या जाति से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए ताकि किसी भी प्रकार के विवाद से बचा जा सके।

मौखिक परीक्षाओं के लाभ
(Advantages of Oral Test)

मौखिक परीक्षाओं के निम्नलिखित लाभ है:-

1. मौखिक परीक्षाएं विद्यार्थियों में तर्क-वितर्क करने की शक्ति को विकसित करती हैं।
2. विद्यार्थियों की व्यक्तिगत एवं शैक्षिक समस्याओं के समाधान में सहायक।
3. मौखिक परीक्षाएं आपसी वार्तालाप के माध्यम से छात्रों को गहराई से समझने में अध्यापक की मदद करती हैं।
4. छोटी कक्षाओं में ये परीक्षाएं अधिक महत्त्व रखती है क्योंकि इन कक्षाओं में बालक लेखन-कार्य में निपुण नहीं होते।
5. इस प्रकार की परीक्षाओं से अध्यापक को विद्यार्थियों में पाई जाने वाली विभिन्नता का बोध होता है।
6. इस प्रकार की परीक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों में विचार करने की क्षमता का विकास होता है।
7. लिखित परीक्षाओं की उपेक्षा इस प्रकार की परीक्षाओं में समय और धन की बचत होती है।
8. जहां लिखित परीक्षाएं सम्भव न हों वहाँ मौखिक परीक्षाएं उनका स्थान ले लेती हैं। अत: मौखिक परीक्षाएं, लिखित परीक्षा का विकल्प है।
9. मौखिक परीक्षाएं विद्यार्थियों में शैक्षिक विकास के साथ-साथ आत्म-विश्वास को विकसित करती है।
10. मौखिक परीक्षाएं विद्यार्थी के दैनिक जीवन के लिए भी सहायक मानी जाती हैं।

मौखिक परीक्षाओं की हानियां तथा सीमाएं (Disadvantages and Limitations of Oral Tests)

1. सभी बच्चों के लिए इस प्रकार की परीक्षाएं उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि कुछ विद्यार्थी शर्म या झिझक के कारण प्रश्नों का ठीक प्रकार उत्तर नहीं दे पाते।
2. इस प्रकार की परीक्षाओं के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व सम्बन्धी सभी पक्षों का मूल्यांकन सम्भव नहीं है।
3. कुछ विद्यार्थी उच्च उपलब्धियां रखते हुए भी मौखिक रूप से अपने भावों को प्रकट नहीं कर सकते। अतः ऐसे बालकों के लिए यह परीक्षा उचित नहीं।
4. इस प्रकार की परीक्षाओं को निष्पक्ष नहीं माना जा सकता।
5. इस प्रकार की परीक्षाओं में बालकों की मौखिक अभिव्यक्ति का तो विकास होता है लेकिन लेखन-शक्ति का नहीं।
6. इस प्रकार की परीक्षा में समय अधिक लगता है।

3. निरीक्षण तकनीक (Observation) : सामान्य अर्थों में यह एक विधि है, जिन्में साक्षात्कार भी किया जाता है। इस विधि में अध्यापक छात्रों से व्यक्तिगत सम्पर्क करके उनकी परिस्थितियों में विषय में वास्तविक जानकारी लेता है। यह निरीक्षण औपचारिक भी हो सकता है और अनौपचारिक भी हो सकता है इस निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य बालकों की कमजोरियों को जानकर उनमें सुधार का प्रयास करना है। इस विधि में व्यक्तिगत पक्षों का अधिक समावेश होने के कारण ही इसे कक्षा में अधिक प्रयुक्त किया जाता है।

इस विधि में निरीक्षण दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम प्रकार में निरीक्षण कर्ता, निरीक्षण किए जा रहे समूह का एक हिस्सा बन जाता है। वह समूह के प्रत्येक सदस्य की प्रत्येक क्रिया को बड़े ध्यानपूर्वक देखता है और आवश्यकता अनुसार उसे नोट भी करता है। जबकि दूसरे में वह एक ऐसी जगह पर बैठकर निरीक्षण करता है, जहां से वह स्वयं किसी को न दिखकर, समूह की प्रत्येक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म क्रिया को देख लेता है। इस क्रिया की सफलता हेतु वह टेप-रिकार्डर, वीडियो टेप, कैमरे आदि का प्रयोग कर सकता है। निरीक्षकर्ता द्वारा प्राप्त परिणामों की सत्यता के लिए उस प्रक्रिया को बार-बार दोहराया जाता है और फिर उन सामूहिक परिणामों को एकत्र कर कोई उचित लक्ष्य पर पहुंचा जाता है।

इस तकनीक में विद्यार्थियों से निम्न जानकारी ग्रहण की जाती हैं-

1. विद्यार्थियों द्वारा एकत्रित या संरचित सामग्री या उत्पाद का मूल्यांकन।
2. विद्यार्थियों के द्वारा पाठ्य-सहगामी-क्रियाओं में हिस्सेदारी का मूल्यांकन।

3. विद्यार्थियों द्वारा किए गए सामाजिक सर्वेक्षण, सामुदायिक, गतिविधियों में योगदान का मूल्यांकन।
4. विद्यार्थियों की रूचियों एवं अभिवृत्तियों के सहारे उनके व्यवहार में होने वाले बदलाव का मूल्यांकन।
5. विद्यार्थियों द्वारा निर्मित प्रोजैक्ट या उनमें योगदान का मूल्यांकन।

निरीक्षण की परिभाषाएं
(Definitions of Observation)

प्रो.सी.ए. मोजर के अनुसार, "ठोस अर्थ में निरीक्षण में कानों तथा वाणी की अपेक्षा आँखों की स्वतन्त्रता है।" ("In the strict sense, observation implies the use of eyes, rather of the ears and the voice.")

निरीक्षण विधि के प्रकार
(Types of Observation Method)

निरीक्षण विधि का मुख्य कार्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना होता है। यह दो प्रकार का होता है:-

(*a*) नियन्त्रित निरीक्षण (Controlled Observation) : इस प्रकार के निरीक्षण के अन्तर्गत निरीक्षण कर्त्ता विभिन्न परिस्थितियों का अपने नियन्त्रण में रखता है। इस प्रकार के निरीक्षण में उस व्यक्ति को पता होता है, जिसका निरीक्षण किया जा रहा है। इस प्रकार के निरीक्षण को सही नहीं माना जाता क्योंकि इस अवस्था में व्यक्ति बनावटी व्यवहार करने का प्रयास करता हैं।

(*b*) अनियन्त्रित निरीक्षण (Uncontrolled Observation) : इस प्रकार का निरीक्षण चुपके से सम्पूर्ण किया जाता है। इसमें जिस पर निरीक्षण किया जा रहा है, उसको मालूम नहीं होता। इस प्रकार के निरीक्षण में व्यक्ति का व्यक्तित्व खुलकर सामने आता है।

निरीक्षण विधि के लाभ या गुण
(Advantages or Merits of Observation Method)

1. निरीक्षण विधि विश्वसनीय वैद्य वस्तुनिष्ट तथा वैज्ञानिक होती है क्योंकि यह बच्चों के वास्तविक व्यवहार का रिकार्ड होता है।
2. निरीक्षण विधि काफी सस्ती होती है क्योंकि इसमें न तो प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है और न महगें उपकरणों की जरूरत होती हैं।
3. इस विधि से विद्यार्थियों का अशाब्दिक व्यवहार का निरीक्षण किया जा सकता है।
4. इस विधि को सभी आयु वर्ग के बच्चों पर लागू किया जा सकता है।

5. यह विधि छोटे व संकोचशील बच्चों के लिए काफी उपयोगी होती है।
6. इस विधि को व्यक्ति तथा समूह दोनों पर लागू किया जा सकता है।
7. यह विधि काफी लचीली होती है। इसका प्रयोग अनेक प्रकार की अवस्थाओं में किया जा सकता है।
8. यह विधि छात्र व अध्यापक के बीच अच्छे सम्बन्ध बनाता है।
9. इस विधि का प्रयोग व्यापक (Wide) स्तर किया जा सकता है। जिसमें सभी बच्चे जैसे-सामान्यात्मक बच्चे, पिछड़े, कदाचारी, मेधावी आदि पर लागू किया जा सकता है।
10. इस विधि में विद्यार्थी का निरीक्षण प्राकृतिक वातावरण में किया जाता है।

निरीक्षण विधि की हानियां तथा सीमायें
(Demerits and Limitations of Observation Method)

1. इस विधि की सफलता अवलोकनकर्ता या निरीक्षक पर निर्भर करती है। लेकिन सामान्य प्रशिक्षित निरीक्षकों की कमी पाई जाती है।
2. यह एक आत्मनिष्ठ (Subjective) विधि है। इसमें निरीक्षक दयालु बन सकता है, सिफारिश दे सकता है पक्षपात कर सकता है तथा कठोर बन सकता है परिणामस्वरूप सही जानकारी इकट्ठी नहीं पाती है।
3. इस विधि में कई बार बनावटी व्यवहार आ जाता है जिससे सामान्य व्यवहार का पता नहीं लग पाता।
4. इस विधि में समय अधिक लगता है। उदाहरण के रूप में एक क्रोधी बच्चे के निरीक्षण के लिए तब तक इन्तजार करना पड़ता है जब तक उसे क्रोध न आ जाये।
5. अचेतन व आन्तरिक व्यवहार का इस विधि से परीक्षण नहीं किया जा सकता।

मूल्यांकन के प्रकार
(Types of Evaluation)

मूल्यांकन तीन प्रकार का होता है :-

1. निदानात्मक मूल्यांकन (Diagnostic Evaluation) : कक्षा से पहले (Before the class)
2. निर्माणात्मक, रूप देय मूल्यांकन (Formative Evaluation) : कक्षा के समय (At the time of Class)
3. संकलनात्मक, योग देय मूल्यांकन (Summative Evaluation) : कक्षा के पश्चात (After the class)

1. निदानात्मक मूल्यांकन
(Diagnostic Evaluation)

जिस प्रकार एक डॉक्टर दवा बनाने से पहले मरीज की बीमारी की प्रकृति एवं सीमा का निदान करता है, उसी प्रकार वाणिज्य का अध्यापक निदानात्मक परीक्षणों का प्रयोग विद्यार्थी की शक्तियों एवं कमजोरियों का निदान करने के लिए करता है। सामान्यतया हम यह पाते है कि विद्यार्थी कुछ विशेष संप्रत्ययों को समझने में तथा अधिगम प्राप्त करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। ये कठिनाईयां व्यक्ति से व्यक्ति एवं कक्षा से कक्षा भिन्न हो सकती है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए अनुदेशन के अन्तर्गत विद्यार्थियों की कठिनाईयों का जानना आवश्यक है। निदानात्मक परीक्षण के पद सफल निष्पत्ति में सम्मिलित विशिष्ट कौशलों के विस्तृत विश्लेषण तथा विद्यार्थियों के द्वारा की जाने वाली अत्यधिक सामान्य गल्तियों के अध्ययन पर आधारित होते हैं।

निदानात्मक परीक्षण का प्रारम्भ वहां से होता है जहां से रूप देय (Formative) परीक्षण छोड़ता है। यदि विद्यार्थी प्रतिपुष्टि के पश्चात् अनुक्रिया (Responding) नहीं करते तब उनके अधिगम त्रुटि का कारण अधिक विस्तृत रूप से खोजने की आवश्यकता पड़ती है। इन परीक्षणों को सामान्यतया अधिगम परीक्षण, प्रश्न मंच (Quizzes), इकाई परीक्षण आदि भी कहा जाता है।

हमारा केन्द्र बिन्दू क्योंकि विद्यार्थी की अधिगम त्रुटियां होता है, इसलिए निदानात्मक परीक्षणों का निर्माण करते समय विद्यार्थियों द्वारा की गई गल्तियों के सामान्य कारणों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। ऐसे परीक्षण अनुदेशन के सीमित क्षेत्र तक ही बाध्य होते हैं और परीक्षण पदों का कठिनाई स्तर अन्य परीक्षणों की तुलना में निम्न होता है। इस प्रकार वाणिज्य शास्त्र में निदानात्मक परीक्षण से तात्पर्य ऐसे परीक्षण से है जिसके अन्तर्गत अध्यापक किसी विद्यार्थी विशेष या समूह विशेष के विद्यार्थियों की अध्ययन सम्बन्धी कठिनाईयों तथा व्यावहारगत समस्याओं की वास्तविक प्रकृति तथा उसके पीछे छिपे हुए कारणों का पता लगाता है।

निदानात्मक परीक्षण के प्रकार
(Types of Diagnostic Tests)

निदानात्मक परीक्षण को मुख्त: दो वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:-

1. शैक्षिक निदानात्मक परीक्षण (Educational Diagnostic Test) : शैक्षिक निदानात्मक परीक्षण शिक्षा के किसी विशेष स्तर के लिए तैयार की गई अध्ययन सामग्री से सम्बन्धित होता है। ये परीक्षण कक्षा के स्तर के अनुसार सामग्री की अव्यस्था का निदान करते हैं।

2. शारीरिक निदानात्मक परीक्षण (Physical Diagnostic Test) : शारीरिक [illegible] सुनने, देखने या अन्य शारीरिक अंगों से सम्बन्धित होता है जो [illegible] के अधिगम में रुकावट डालती हैं।

निदानात्मक परीक्षण की विशेषताएं (Characteristics of Diagnostic Test)

1. यह एक गुणात्मक परीक्षण है।
2. यह विषय वस्तु के अधिगम में बालक की कमजोरियों या कमियों का पता लगाता है।
3. यह उपचारात्मक के लिए एक प्रमाणिक आधार का काम करता है जो उपचारात्मक शिक्षण की योजना बनाने तथा व्यवस्थित (Organise) करने में सहायता करता है।
4. यह अधिगम के रचनात्मक [illegible] के लिए पदों को अधिगम क्रम में व्यवस्थित करता है।
5. इसमें केवल वस्तुनिष्ठ परीक्षण पदों का प्रयोग किया जाता है।
6. यह पूर्ण रूप से सभी अधिगम तथा शिक्षण बिन्दुओं पर बल देता है।
7. निदानात्मक परीक्षण में सही उत्तर के लिए कोई अंक नहीं दिया जाता परन्तु गलत उत्तर को ध्यान में रखा जाता है जिससे आसानी से विषय-वस्तुओं के क्रम से गलत उत्तर के कारण का निदान किया जा सके।
8. गलत उत्तर के कारण के निदान के लिए विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है।
9. निदानात्मक परीक्षण में किसी भी अधिगम बिन्दु को छोड़ा या नकारा नहीं जाता है।
10. निदानात्मक परीक्षण का उद्देश्य उपचारात्मक शिक्षण और निर्देशन होता है।

निदानात्मक परीक्षण के उपयोग/कार्य (Uses/Functions of Diagnostic Test)

1. निदानात्मक परीक्षण विद्यार्थी की शक्ति एवं कमजोरियों को जानने में सहायक होते हैं।
2. [illegible] मूल्यांकन के अन्तर्गत जिन समस्याओं का उपचार सम्भव नहीं होता और जिनके बारे में जानकारी भी प्राप्त नहीं होती उनके कारणों को इन परीक्षणों के द्वारा जाना जा सकता है।

3. यह उन क्षेत्रों की पहचान करने में सहायक होते हैं जिनमें अतिरिक्त अनुदेशन की आवश्यकता होती है या जिनमें शिक्षण विधियों में सुधार की आवश्यकता होती है।
4. ये गलत प्रक्रिया को पहचानने में सहायक होते है।
5. ये परीक्षण उन विद्यार्थियों की कठिनाईयों एवं प्राप्तियों को जानने में सहायक होते हैं जिनकी उपलब्धि एक निश्चित स्तर तक की नहीं होती।
6. ये विद्यार्थियों को विशिष्ट शिक्षण या उपचारात्मक शिक्षण के समूहों में बाँटने में सहायक होते हैं।
7. यह विद्यार्थियों को उपयोगी प्रतिपुष्टि प्रदान करता है।
8. यह विद्यार्थियों की योग्यताओं के अनुसार विषय-सामग्री और पाठ्यक्रम का निर्माण करने में सहायक होता है जिससे ज्ञान, कौशल एवं योग्यताओं में उनकी कमियों को पार किया जा सके और उनकी क्षमताओं का उत्तम प्रयोग करने में सहायता की जा सकें।

2. निर्माणात्मक रूप देय मूल्यांकन (Formative Evaluation)

आधुनिक शैक्षिक मूल्यांकन में बहुत तेजी से विकास हो रहा है। निर्माणात्मक मूल्यांकन एक इकाई के निर्देशन के सम्पूर्ण होने से पहले अधिगम कठिनाईयों को पहचानने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह अधिगम आधिपत्य प्राप्त करने के लिए सूचनाएं प्रदान करता है जो विद्यार्थियों की अधिगम कठिनाईयों को दूर करने के लिए अपनाए जाने वाले उपचारात्मक शिक्षण को दिशा प्रदान करता है। निर्माणात्मक परीक्षणों का प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने के लिए किया जाता है। निर्माणात्मक परीक्षण के द्वारा कुछ प्रश्नों के उत्तर ढूंढने का प्रयास किया जाता है जैसे- अध्ययन के समय में, विद्यार्थी विभिन्न अधिगम उद्देश्यों के आधिपत्य की ओर किस प्रकार बढ़ रहे हैं ? इसके परिणाम विद्यार्थियों के निदान के लिए प्रयोग किए जाते हैं और फिर सुधारात्मक शिक्षण किया जाता है और फिर इकाई का निर्माणात्मक मूल्यांकन किया जाता है। इससे विद्यार्थी तथा अध्यापक को अपनी प्रगति के बारे में प्रतिपुष्टि प्राप्त होती है। टैनर (Tanner) के शब्दों में, "जब पाठ्यक्रम तथा अनुदेशन प्रक्रिया चलन में हो तो परीक्षणों तथा मूल्यांकन प्रक्रियाओं का प्रयोग करना ही निर्माणात्मक मूल्यांकन कहलाता है।" ("Formative evaluation refers to the use of tests and evaluative procedures while te course and instructional programme is in progress.")

ग्रीनलैंड के द्वारा भी यही संकेत दिया गया है कि निर्माणात्मक मूल्यांकन का विशिष्ट उपयोग अधिगम कठिनाईयों या कमजोरियों के निदान के लिए, अधिगम प्रेरणा

...देने के लिए, तथा अधिगम के हस्तांतरण तथा स्थायित्व में वृद्धि करने के लिए ... क्रियाओं की योजना निर्माण है। इस मूल्यांकन में शिक्षण-अधिगम को प्रभावी ... तथा विद्यार्थियों को पाठ्य-वस्तु की इकाई के रूप में स्थायित्व एवं उद्देश्यों की ... के मूल्यांकन किया जाता है।

... संदर्भित तथा मानक संदर्भित परीक्षणों का निर्माण रचनात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation) में विषय सामग्री के स्थायित्व के लिए किया जाता है। प्रत्येक ... इकाई के अन्त में इन परीक्षणों को दिया जाता है। इन्हें अन्तरिम परीक्षण (Interim Tests), इकाई परीक्षण, अधिगम परीक्षण और प्रश्नोत्तर (Quizzes) भी कहा जाता है।

रचनात्मक/कक्षा-पाठ्य मूल्यांकन की विशेषताएँ (Features of Formative Evaluation)

1. कक्षा-पाठ्य मूल्यांकन में अधिगम की एक विशेष इकाई का चयन किया जाता है।
2. इकाई के तत्वों का विश्लेषण किया जाता है जैसे–
   (i) विषय सामग्री
   (ii) विद्यार्थी का व्यवहार, और
   (iii) विषय सामग्री से सम्बन्धित प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य।
3. यह अधिगम कठिनाइयों की पहचान करता है।
4. इसमें नए शब्दों, नवीन सम्बन्धों तथा नवीन प्रक्रिया को शामिल किया जाता है।
5. परीक्षण का प्रत्येक पद इकाई के तत्वों पर विद्यार्थी के अधिगम का संकेत देता है।
6. यह पाठ्य-पुस्तकों, कार्य-पुस्तकों, अभिक्रमित अनुदेशन तथा शिक्षण के रूप में उपचारात्मक अनुदेशन सामग्री प्रदान करता है।
7. यह विद्यार्थियों को विषय-सामग्री के स्थायित्व के अवसर प्रदान करता है।
8. उद्देश्यों की प्राप्ति पर अधिक बल दिया जाता है।
9. यह अधिगम को पुनर्बलन प्रदान करता है।
10. यह अधिगम को प्रेरणा प्रदान करता है।
11. यह शिक्षण अधिगम को अधिक प्रभावी बनाता है।

निर्माणात्मक/रूप देय मूल्यांकन के उपयोग/लाभ (Uses/Merits of Formative Evaluation)

1. विद्यार्थियों के अधिगम को बढ़ावा देने में सहायक (Helpful in Growing Students Learning) : निर्माणात्मक मूल्यांकन का प्रयोग किसी भी पाठ्य-वस्तु में विद्यार्थी के अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायक होता है। उच्चस्तरीय क्रमबद्ध अधिगम में यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि विद्यार्थी दूसरे कार्य पर जाने से पहले प्रथम अधिगम कार्य में स्वामित्व प्राप्त कर ले ; यदि वह एक विषय में स्वामित्व प्राप्त करने में सफल होना चाहता है। एक इकाई या कार्य के पश्चात् यदि इस मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है तो इससे उचित समय पर उचित एवं आवश्यक प्रयत्न करने के लिए विद्यार्थियों को अभिप्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

2. अध्यापक को प्रतिपुष्टि प्रदान करता है (Provides Feedback to the Teacher) : निर्माणात्मक मूल्यांकन अध्यापक को अनुदेशन प्रक्रिया में एक इकाई के पूरा होने के पश्चात् प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। यदि विद्यार्थियों का एक बड़ा भाग कोई विशेष गलती करता है या किसी अधिगम कार्य में कठिनाई का अनुभव करता है तो अध्यापक को इसे अनुदेशन में कमी के साक्ष्य (Evidence) के रूप में मानना चाहिए और अपनी अनुदेशन प्रक्रिया में सुधार लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

3. लक्ष्यों को स्थापित करने में सहायक (Helpful in Setting the Goals) : निर्माणात्मक मूल्यांकन विद्यार्थी के अधिगम के लिए लक्ष्य निर्धारित करने में सहायता करता है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समय भी निश्चित किया जा सकता है।

4. अधिगम क्रम के निर्माण में सहायक (Helpful in Framing Sequence of Learning) : यह सम्पूर्ण अधिगम प्रक्रिया को छोटी-छोटी इकाईयों में बाँटने में विद्यार्थियों की सहायता कर सकता है। विद्यार्थी जब किसी एक विशेष इकाई का अध्ययन करता है तो वे इसकी अच्छी प्रकार से तैयारी कर सकते हैं।

5. विद्यार्थियों को प्रतिपुष्टि प्रदान करता है (Provides Feedback to the Students) : निर्माणात्मक मूल्यांकन एक अनुदेशन इकाई के अधिगम उद्देश्यों से स्वामित्व प्राप्त करने में विद्यार्थियों को प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। यदि एक विद्यार्थी यह जानता है कि उसने एक मूल्यांकन के बहुत से पदों या सभी का स्वामित्व प्राप्त कर लिया है तो यह जानकारी उसे यह विश्वास दिलाती है कि उसका अधिगम सुदृढ़ है और उसे वर्तमान अधिगम प्रक्रिया को बनाए रखना चाहिए।

6. पुनर्बलन प्रदान करता है (Provides Reinforcement) : रूप देय मूल्यांकन के परिणाम अधिगम के लिए पुनर्बलन प्रदान करते हैं तथा अपने अधिगम के प्रति विद्यार्थियों की उत्सुकता को कम करने में सहायक हो सकते हैं। अधिगम में बार-बार स्वामित्व का साक्ष्य शक्तिशाली पुनर्बलन का कार्य करता है।

7. अधिगम कठिनाईयों को पहचानने में सहायक (Helpful in Diagnosing Learning Difficulties) : जो विद्यार्थी किसी एक विशेष इकाई के अधिगम में स्वामित्व प्राप्त नहीं कर पाते, रूप देय मूल्यांकन उनके अधिगम की कठिनाईयों के विशेष क्षेत्रों का संकेत देता है। यदि ऐसे विद्यार्थियों को अपनी अधिगम कठिनाईयों को दूर करने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान की जाए और उचित अनुदेशन सामग्री व प्रक्रिया उपलब्ध कराई जाए तो यह निश्चित है कि उनमें से अधिकतर विद्यार्थी विषय की अधिकतर इकाईयों में स्वामित्व प्राप्त कर लेने में सफल होंगे।

अतः रूप देय मूल्यांकन का प्रयोग यह सुझाव देता है कि मूल्यांकन शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सम्बन्ध में विद्यार्थियों के वास्तविक अधिगम पर सुदृढ़ सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है और इसके साथ-साथ उन्हें अधिगम के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करता है। यह मुख्य रूप से अधिगम गल्तियों का निदान करने, अधिगम कठिनाईयों को दूर करने के लिए योजना बनाने, अधिगम प्रक्रिया को प्रेरित करने, अभ्यास प्रदान करने, परीक्षण की उत्सुकता को कम करने और योग देय परीक्षण (Summative Evaluation) के स्तरों पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ावा देने में सहायक होता है।

3. संकलनात्मक/योग देय मूल्यांकन (Summative Evaluation)

जब रूप देय/निर्माणात्मक मूल्यांकन अपना आखिरी चरण पूरा करता है ; वहां संकलनात्मक मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, यह भी कहा जा सकता है कि संकलनात्मक मूल्यांकन एक निश्चित अवधि या पाठयक्रम की समाप्ति के पश्चात् बालक की शैक्षिक उपलब्धियों के मापन के लिए प्रयोग की जाने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार का मूल्यांकन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के सम्पूर्ण परिणामों को प्राप्त करने में सहायता करता है। साधारण शब्दों में हम यह सकते हैं कि जहाँ कक्षा परीक्षण, इकाई परीक्षण, प्रश्नमंच और अधिगम परीक्षण रूप देय मूल्यांकन की तकनीकें हैं, वहां वार्षिक परीक्षण तथा बाह्य परीक्षण जिन्हें किसी बोर्ड, विद्यालय, विश्वविद्यालय या किसी सार्वजनिक ऐजेन्सी के द्वारा लिया जाता है, संकलनात्मक मूल्यांकन के आवश्यक अंग हैं। इस प्रकार यह मूल्यांकन अन्तरिमप्रकार का या बाह्य प्रकार का मूल्यांकन है।

संकलनात्मक मूल्यांकन जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि अनुदेशन के अन्त में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम में उपलब्धि का मूल्यांकन करता है, यह निश्चित रूप से अनुदेशन सामग्री के बड़े भाग को शामिल करता है। इस उद्देश्य के लिए मुख्यतया प्रयोग किया जाने वाला परीक्षण पेपर पैंसिल परीक्षण होता है, जिसके आधार पर अधिक सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति की सीमा की जांच की जाती है। इन परीक्षणों का निर्माण विशेष विषय क्षेत्र से सम्बन्धित पूर्व निश्चित उद्देश्यों के मापन के लिए किया जाता है। संकलनात्मक परीक्षण

से पहले ही स्थापित किया गया स्तर (Standard) ही कसौटी का काम करता है, जिसके आधार पर प्रत्येक विद्यार्थी की निष्पत्ति का निर्णय लिया जाता है।

संकलनात्मक मूल्यांकन को तीन ढंगों से देखा जा सकता हैं (विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000), ये तीन ढंग निम्नलिखित है :-

- अपने ही संदर्भ में विद्यार्थियों की प्रगति को जांचना (स्व-संदर्भित)
- उनके अध्यापक के द्वारा स्थापित कसौटी के संदर्भ में विद्यार्थी की प्रगति को जांचना (कसौटी-सदंर्भित)
- उसके सहपाठियों की प्रगति के संदर्भ में विद्यार्थी की प्रगति को जांचना (मानक-संदर्भित)

संकलनात्मक/योग देय मूल्यांकन की विशेषताएं (Characteristics of Summative Evaluation)

1. संकलनात्मक मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों का पाठ्य विषय के उद्देश्यों एवं उनकी उपलब्धियों के अनुसार स्तरीकरण करना है।
2. यह किसी भी पाठ्यक्रम की समय सीमा या सैमेस्टर के पश्चात् किया जाता है।
3. यह विद्यार्थियों की उपलब्धि के स्टरीकरण का उचित तथा विश्वसनीय साधन है।
4. इसका निर्माण विद्यार्थी की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है।
5. इसका प्रयोग अध्यापक, पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक योजना की प्रभावशीलता के बारे में निर्णय लेने के लिए किया जाता है।
6. इसका प्रयोग विद्यार्थियों को अगली कक्षा में पदोन्नति के लिए किया जाता है।
7. यह प्रत्तिपुष्टि (Feedback) प्रदान नहीं करता है।
8. यह शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के बारे में सम्पूर्ण परिणाम प्रदान करता है।
9. इसके परिणामों का प्रयोग विद्यार्थियों के वर्गीकरण तथा भविष्य की सफलता के लिए भविष्यवाणी में किया जाता है।
10. सकलंनात्मक मूल्यांकन का लाभ निदानात्मक तथा उपचारात्मक न होकर परिमाणात्मक होता है।

संकलनात्मक मूल्यांकन के लाभ/उपयोगिता (Uses/Advantages of Summative Evaluation)

1. ग्रेड देने का आधार (Basis of Assigning grades) : संकलनात्मक मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य पाठ्य विषय के उद्देश्यों एवं विद्यार्थियों की उपलब्धि के अनुसार उन्हें

ग्रेड देना है। ग्रेडिंग प्रणाली विद्यार्थियों को उनकी निष्पत्ति के आधार पर वर्गीकृत करने में सहायक होती है।

2. सर्टीफिकेट देने का आधार (Basis of certification) : संकलनात्मक मूल्यांकन के आधार पर एक सर्टीफिकेट प्रदान किया जाता है जिसमें पूरे वर्ष में किए गए कार्य का ब्यौरा होता है।

3. प्रगति का ज्ञान (Knowledge of progress) : संकलनात्मक मूल्यांकन विद्यार्थियों की अपनी प्रगति की जानकारी देने में सहायता करता है। यह पहचान-पत्र होता है।

4. परामर्श का आधार (Basis of guidance) : संकलनात्मक मूल्यांकन की सहायता से मूल्यांकनकर्ता विद्यार्थी की सफलता के क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त करता है और इस प्रकार यह उन्हें परामर्श देने का आधार प्रदान करता है।

5. विभिन्न समूहों की तुलना में सहायक (Helpful in comparison of different groups) : संकलनात्मक मूल्यांकन के परिणामों के आधार पर हम पृथक-पृथक अध्यापकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले पृथक-पृथक समूहों की उपलब्धियों की तुलना कर सकते हैं, जो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने में सहायक होती है।

6. पदोन्नति का आधार (Basis of Promotion) : संकलनात्मक मूल्यांकन शैक्षिक सत्र के अन्त में किया जाता है और इसी के परिणाम के आधार पर विद्यार्थी की अगली कक्षा में पदोन्नति की जाती है।

इस प्रकार संकलनात्मक मूल्यांकन यद्यपि विद्यार्थियों की उपलब्धि मापन का एक विश्वसनीय, उचित तथा कुशल साधन है। परन्तु यह स्तरीकरण से पहले अनुदेशन के समय विद्यार्थियों की अधिगम कठिनाईयों का निदान करने तथा उपचारात्मक अनुदेशन प्रदान करने के उद्देश्य को पूरा नहीं करता। इसके लिए रूप देय परीक्षण की आवश्यकता होती है। इस प्रकार दोनों प्रकार की मूल्यांकन विधियाँ एक-दूसरे की पूरक है। दोनों ही शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सहायक होती है।

ग्रेडिंग प्रणाली (Grading System) : ग्रेडिंग प्रणाली में विद्यार्थियों को उनकी शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्धित मूल्यांकन परिणामों को व्यक्त करने के लिए उन्हें पास, फेल घोषित करने या पूर्णांकों में से कितने प्रतिशत अंक प्राप्त किए हैं ऐसा बताने की अपेक्षा अक्षर ग्रेड (Letter grades) जैसे A, B, C, D, E या O, A, B, C, D इत्यादि प्रदान किए जाते हैं। इस प्रणाली को परम्परागत डिवीजन तथा प्रतिशत अंक प्रणाली से निम्न बातों को लेकर अच्छा समझा जाता है-

(*i*) उत्तर या उपलब्धि विशेष के लिए सही-सही कितने अंक दिए जाएँ इसकी अपेक्षा पश्चात् तथा आत्मगतता (biases and subjectivity) पर आवश्यक अंकुश लगाते हुए ग्रेड प्रदान करना ज्यादा आसान तथा युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

(*ii*) अगर एक ही परीक्षण तथा परीक्षा से सम्बन्धित परीक्षा केन्द्रों की उत्तर पुस्तिकाएँ अलग-अलग परीक्षकों के पास जाएं या अलग-अलग परीक्षक विभिन्न विद्यार्थियों/विद्यार्थी समूहों की परीक्षाएँ लें तो उनके मूल्यांकन में आत्मनिष्ठ तथा अंकन स्तर की विभिन्नता को लेकर अन्तर आना स्वाभाविक ही है। ग्रेडिंग, परीक्षकों की इस प्रकार की आत्मनिष्ठा तथा अविश्वसनीयता पर रोक लगाने का प्रयास करना है।

(*iii*) प्रचलित प्रणाली में प्रतिशत अंक लेने के आधार पर विद्यार्थियों के पास, फेल घोषित करने या प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी प्रदान करने का चलन है। एक या दो नम्बर इधर-उधर होने से विद्यार्थी पास से फेल तथा द्वितीय से तृतीय डिवीजन में पहुँच जाते हैं। 100 में 59 अंक लेने वाल विद्यार्थी द्वितीय श्रेणी प्राप्त करता है। जबकि केवल एक अंक ज्यादा लेने से ही वह प्रथम श्रेणी प्राप्त कर होशियार, प्रतिभाशाली बालकों की श्रेणी में आकर अनेक सुविधाओं जैसे आगे की कक्षाओं में प्रवेश लेना, नौकरियों में साक्षात्कार देने के काबिल बन जाना, वजीफा लेना इत्यादि को प्राप्त कर लेता है। ग्रेडिंग में वर्गीकरण का आधार बढ़ जाता है जैसे 55% से 65% तक अंक पाने वाले को एक-सा ग्रेड देकर प्रचलित दोष को बहुत कुछ सीमा तक दूर किया जा सकता है।

(*iv*) कई बार पाठ्यक्रम के विविध विषयों में पूर्णांक एक जैसे नहीं होते और विषय विशेष की परीक्षाओं जैसे मौखिक, लिखित तथा क्रियात्मक परीक्षाओं या आन्तरिक मूल्यांकन में भी पूर्णांक तथा प्राप्तांकों का सीमा विस्तार (range) एक जैसे नहीं होता, परन्तु पास, फेल घोषित करने या डिवीजन प्रदान करने हेतु इन सभी प्रकार के असमान और विसंगत मूल्यांकन परिणामों या प्राप्तांकों को जोड़ लिया जाता है। गणित और सांख्यिकी की दृष्टि से ऐसा करना युक्ति संगत नहीं है। ग्रेडिंग प्रणाली इस दोष को दूर करने हेतु एक अच्छा विकल्प प्रस्तुत करती है।

(*v*) मूल्यांकन चाहे अलग-अलग विभिन्न परीक्षकों द्वारा किया जाए या विभिन्न विषयों, कार्यक्षेत्रों तथा विभिन्न मूल्यांकन तकनीकों से किया जाए, सभी अवस्थाओं में एक जैसा आधार प्रदान करके उचित तुलनात्मक अध्ययन करने तथा सभी अवस्थाओं के मूल्यांकन परिणामों का उचित संकलन (Summation) करने के लिए ग्रेडिंग प्रणाली काफी वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय आधार प्रदान करती है।

ग्रेडिंग विधियाँ (Methods of Grading) : ग्रेडिंग प्रणाली में प्रायः दो प्रकार के अक्षर ग्रेड जैसे A, B, C, D, E तथा O, A, B, C, D देने का रिवाज है। इनके द्वारा क्रमशः उत्कृष्ट (Out-Standing), बहुत अच्छा, अच्छा, कम या बहुत कम उपलब्धि स्तर का प्रतिनिधित्व किया जाता है। इन अक्षर ग्रेडों को प्रदान करने हेतु प्रायः निम्न दो विधियों का अनुसरण किया जाता है:-

निरपेक्ष ग्रेडिंग विधि (Absolute Grading Method) : इस विधि में अक्षर ग्रेड प्रदान करने हेतु कोई पूर्व निर्धारित स्तर चुन लिया जाता है। ऐसा निम्न दो तरह से किया जा सकता है-

(*a*) यह तय कर लिया जाता है कि किस अक्षर ग्रेड को प्रदान करने हेतु कितने प्रतिशत अंक चाहिए। दूसरे शब्दों में मूल्यांकन परिणामों के रूप में विद्यार्थियों को जो प्रतिशत अंक प्राप्त होते है हम उनकी अलग-अलग विस्तार सीमाएँ (Ranges) बनाकर उन्हें भिन्न-भिन्न अक्षर ग्रेड प्रदान कर देते हैं जैसा कि नीचे दिखाया गया है।

ग्रेड (Grade)	अंक प्रतिशत (Scores percentage)
O	80% और उससे अधिक
A	70-79%
B	60-69%
C	50-59%
D	50% प्रतिशत से कम

(*b*) निरपेक्ष ग्रेडिंग (absolute grading) का दूसरा अन्य रूप कसौटी या मानदंड संदर्भित ग्रेडिंग (Criterion Referenced Grading) कहलाता है। इसमें परीक्षण का कठिनाई स्तर कैसा है तथा विद्यार्थियों से किस प्रकार की अधिगम निष्पत्ति (learning performance) की अपेक्षा की जा सकती है, इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए परीक्षक द्वारा निष्पत्ति स्तर का एक मानदंड निर्धारित कर लिया जाता है और फिर उसी के हिसाब से अक्षर ग्रेड प्रदान करने का काम किया जाता है। दूसरे शब्दों में, विद्यार्थियों का मूल्यांकन करने से पहले ही यह निर्णय ले लिया जाता है कि विद्यार्थियों को किस प्रकार की उपलब्धि या निष्पत्ति (व्यवहार परिवर्तन के संदर्भ में) उनको कौन-कौन से अक्षर ग्रेड दिलाएगी। निष्पत्ति के स्तर तथा अक्षर ग्रेडों को निम्न रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है-

ग्रेड (Grade)	निष्पत्ति स्तर (पूर्ण निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के संदर्भ में) (Performance Level In Relation to the Attainment of Pre-determined Objectives)
O	बहुत ही अच्छा या उत्कृष्ट (Outstanding)
A	सामान्य से ऊपर उत्तम (Above Average Or very Good)
B	सामान्य या अच्छा (Average Or Good)
C	सामान्य से कम या कमजोर (Below Average Or Poor)
D	बहुत ही कमजोर या निराशा जनक (Inadequate Or very Poor)

सापेक्ष ग्रेडिंग विधि
(Relative Grading Method)

इस विधि में विद्यार्थियों की अपनी कक्षा या समूह विशेष में अपनी उपलब्धि या निष्पत्ति के आधार पर जो सापेक्षिक स्थिति या मेरिट पोजीशन (Ranks) होती है उसी के आधार पर उनकी ग्रेडिंग कर दी जाती है। व्यावहारिक रूप में इस प्रकार के ग्रेड वितरण में "सामान्य वक्र वितरण" (Normal Curve Distribution) के सिद्धान्त का अनुसरण किया जाता है। इसके पीछे यही मान्यता कार्य करती है कि विद्यार्थियों की किसी भी एक निश्चित जनसंख्या में अंकों का वितरण "सामान्य वक्र वितरण" के अनुरूप ही होता है। इस दृष्टि से सामान्य वक्र क्षेत्र को सांख्यिकी विधि का प्रयोग करते हुए जितने ग्रेड दिए जाने होते हैं उनके ही खंडों में बाँटकर यह निश्चित कर लिया जाता है कि खंड विशेष में दी हुई जनसंख्या (Population) के कितने प्रतिशत विद्यार्थी शामिल होंगे। इस प्रकार की जानकारी आगे जाकर हमें ग्रेडिंग करने हेतु निम्न प्रकार का निर्णय लेने में सहायक बनती है-

ग्रेड (Grade)	विद्यार्थियों का प्रतिशत जिन्हें यह ग्रेड दिया जाना है (Percentage of cases for being assigned the given grade)
O	कक्षा या समूह के शीर्षस्थ 7%
A	कक्षा या समूह के शीर्षस्थ से नीचे 24%
B	कक्षा या समूह के मध्य 38%
C	कक्षा या समूह के मध्य से कुछ नीचे 24%
D	कक्षा या समूह के सबसे नीचे वाले 7%

शीर्ष के 7% और इसके बाद के 24% तथा मध्य के 38% तथा उसके नीचे के 24 तथ 7% विद्यार्थियों में किस-किस की गिनती की जाएगी इस बात का निर्णय विद्यार्थी विशेष द्वारा किसी परीक्षण या मूल्यांकन तकनीक विशेष में आर्जित अंकों के आधार पर ही लिया जाता है। जितने अंक या रेटिंग स्कोर विद्यार्थियों ने अर्जित किए जाते हैं उनके इन प्राप्तांकों को घटते हुए क्रम (decending order) में व्यवस्थित कर लिया जाता है। किसके कितने अंक हैं, इसकी पहचान हेतु उन विद्यार्थियों के रोल नं. भी साथ लिख दिए जाते हैं और फिर शीर्ष पर स्थित 7% विद्यार्थियों को O grade, उसके बाद के 24% को A ग्रेड, उसके नीचे के 38% को B ग्रेड तथा बाद के 24% तथा 7% को क्रमश: C तथा D ग्रेड प्रदान कर दिया जाता है।

12

सतत् या व्यापक मूल्यांकन
(Continuous and Comprehensive Evaluation)

आज मूल्यांकन को स्मपूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का एक अन्तरिम भाग बनाने की आवश्यकता है। परम्परामगत परीक्षण विधि केवल ज्ञानात्मक पक्ष का ही मूल्यांकन करती है और अध्यापक तथा विद्यार्थियों को कोशिशें भी मुख्य रूप से इसी भाग पर केन्द्रित रहती हैं। इसलिए वर्तमान स्कूल कार्यक्रम विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विस्तृत क्षेत्रों के विकास की अवहेलना करते हैं। यदि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया व्यापक तथा निरन्तर होती है तो मूल्यांकन प्रक्रिया भी व्यापक एवं निरन्तर होनी चाहिए।

1. सतत् या निरन्तर मूल्यांकन (Continuous Evaluation) : शिक्षा के रूप में हमारी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को किसी सीमा तक प्राप्त कर लिया गया है। उद्देश्यों की प्राप्ति की प्रगति को समय-समय पर जांचा जाना चाहिए, मूल्यांकित किया जाना चाहिए, नहीं तो हमें यह ज्ञात नहीं होगा कि हम कहाँ जा रहे हैं ? परम्परागत परीक्षण केवल एक निश्चित समय पर ही ज्ञान एवं कौशलों की उपलब्धि की जांच करता है, परन्तु मूल्यांकन का नवीन संप्रत्यय मांग करता है कि विद्यार्थियों की उपलब्धियों एवं व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन किसी निश्चित समय पर नहीं अपितु निरन्तर होना चाहिए। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रत्येक किया जैसे- अधिगम अनुभवों का चयन व नियोजन, शिक्षण विधियों व तकनीकों में परिवर्तन, अध्यापक का व्यवहार, शिक्षण अधिगम के लिए प्रदान किया गया वातावरण, शिक्षण साधन व उपकरणों का प्रयोग आदि सभी सतत् मूल्यांकन से प्रभावित होती है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के संशोधित प्रारूप, 2005 में भी यह लिखा गया है कि निरन्तर और विस्तृत मूल्यांकन ही एकमात्र सार्थक मूल्यांकन पद्धति हैं।

2. व्यापक मूल्यांकन (Comprehensive Evaluation) : विद्यार्थियों की विद्धता एवं गैर विद्धता पक्षों से सम्बन्धित उद्देश्यों की प्राप्ति को जानने के लिए प्रयोग की गई प्रक्रिया को व्यापक या विस्तृत मूल्यांकन प्रक्रिया कहा जाता है। साधारणतया यह देखा जाता है कि विद्धता सम्बन्धी तत्त्व जैसे एक विषय के तथ्यों, संप्रत्ययों, सिद्धान्तों आदि के ज्ञान एवं सूझ-बूझ तथा चिन्तन कौशलों का ही मूल्यांकन किया जाता है और गैर विद्धता सम्बन्धी तत्त्वों को या तो मूल्यांकन प्रक्रिया से बाहर कर दिया जाता है या उन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। अतः बालक के व्यक्तित्व के समरूप विकास का उद्देश्य अपूर्ण रह जाता है। मूल्यांकन को व्यापक बनाने के लिए इसमें विद्धता तथा गैर विद्धता सम्बन्धी सभी तत्त्वों को शामिल किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में तथा इसके

संशोधित रूप 1992 में भी यह इंगित किया गया है कि मूल्यांकन प्रक्रिया में विद्धता तथा गैर विद्धता क्षेत्र के सभी अधिगम अनुभवों को शामिल किया जाना चाहिए।

सतत् और व्यापक मूल्यांकन की विशेषतायें (Characteristics of Continuous and Comprehensive Evaluation)

1. सतत् और व्यापक मूल्यांकन विद्यार्थियों का स्कूल आधारित मूल्यांकन है जिसमें विद्यार्थी के सभी पक्षों की शामिल किया जाता है।
2. सतत् और व्यापक मूल्यांकन का सतत् पक्ष मूल्यांकन की निरन्तरता और 'आवर्तिता' (Periodicity) पर ध्यान देता है।
3. 'सतत्' का अर्थ है विद्यार्थियों का शिक्षा के प्रारम्भ में मूल्यांकन (Placement evaluation) और शिक्षण प्रक्रिया की अवधि में मूल्यांकन (संरचनात्मक मूल्यांकन) करना तथा अनौपचारिक रूप में बहुविध तकनीकियों का मूल्यांकन के लिए प्रयोग करना।
4. आवर्तित के प्रत्यय को ऋणात्मक अर्थों में नहीं लेना चाहिए अर्थात् अधिक-से-अधिक परीक्षण देना। यह किसी भी प्रकार से विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए भार नहीं होना चाहिए।
5. सतत् और व्यापक मूल्यांकन का 'व्यापक' घटक बच्चे के व्यक्तित्व के चतुर्मुखी विकास के आंकलन का ध्यान रखता है। इसमें और विद्याथियों के विकास के शैक्षिक और सह-शैक्षिक पक्षों का आंकलन सम्मिलित होता है।
6. शैक्षिक क्षेत्र में आंकलन अनौपचारिक और औपचारिक दोनों प्रकार से मूल्यांकन की बहुविध तकनीक का प्रयोग कर निरन्तर और आवर्तिता (Peiodically) रूप में किया जाता है। नैदानिक मूल्यांकन यूनिट के अन्त में किया जाता है। खराब निष्पादन का कारण कुछ यूनिटों में नैदानिक परीक्षणों के प्रयोग द्वारा ज्ञात किया जाता है।
7. सह-पाठ्यचारी क्षेत्र में आंकलन निश्चित कसौटियों के आधार पर बहुविध तकनीकियों के प्रयोग द्वारा किया जाता है, जबकि सामाजिक और व्यक्तिगत विशेशताओं का आंकलन व्यवहारपरक सूचकांको के प्रयोग द्वारा किया जाता है। इन्हीं के द्वारा विभिन्न रूचियों, मूल्यों और मनोवृत्तियों आदि का भी आंकलन किया जाता है।

व्यापक तथा निरन्तर मूल्यांकन की उपयोगिता/लाभ (Merits/Advantages of Comprehensive and Continuous Evaluation)

1. यह पुस्तकालय में अध्ययन की आदतों का विकास करता है।
2. इससे बालक में आत्मविश्वास की वृद्धि होती है।
3. यह आपसी विचार-विमर्श के अवसर प्रदान करता है।
4. इसके आधार पर विद्यार्थी की भविष्य में सफलता की भविष्यवाणी की जा सकती है।

5. यह पहले से ही पाठ/प्रकरण की तैयारी की आदत का विकास करने में भी सहायता करता है।
6. इसके अन्तर्गत अपनाई जाने वाली तकनीकें जैसे सेमिनार, सामूहिक विचार-विमर्श आदि विद्यार्थी एवं अध्यापक तथा विद्यार्थी एवं विद्यार्थी के बीच अन्त क्रिया को प्रोत्साहित करती है।
7. यह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की कमियों या कमजोरियों को दूर करने में सहायक होता है।
8. उपचारात्मक कार्यक्रमों एवं प्रोजैक्ट के द्वारा निर्माणत्मक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुदृढ़ आधार प्रदान किया जा सकता है।
9. इसमें बालक के ज्ञानात्मक तथा अन्य भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों को भी शामिल किया जाता है।
10. इससे व्यक्तिनिष्ठता में कमी आती है।
11. यह समय-समय पर बालक तथा अध्यापक दोनों को प्रतिपुष्टि प्रदान करता है।
12. यह नियमित रूप से विद्यार्थियों की कमजोरियों एवं शक्तियों के बारे में उपयोगी आँकड़े प्रदान करता है।
13. यह विद्यार्थी तथा अध्यापक दोनों को ही अपने प्रयत्नों में उपयुक्त परिवर्तन के अवसर प्रदान करता है।
14. यह शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाता है।
15. यह बालकों की व्यक्तिगत योग्यताओं को प्रोत्साहन देता है।

व्यापक तथा सतत् मूल्यांकन की हानियाँ एवं सीमाएँ (Demerits and Limitations of Continuous and Comprehensive Evaluation)

1. यह मूल्यांकन तभी सम्भव है जब अध्यापक एवं विद्यार्थी के बीच मधुर सम्बन्ध हों।
2. कभी-कभी अध्यापक इसका गलत प्रयोग करते हैं और समय-समय पर विद्यार्थियों को चेतावनी देते रहते हैं जिससे उनमें असुरक्षा की भावना आने का भय बना रहता है।
3. अध्यापक को ऐसे मूल्यांकन के लिए प्रत्येक विद्यार्थी की भूमिका को जानना आवश्यक होता है।
4. अध्यापक का पक्षपात इसे वस्तुनिष्ठ की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठ बना देता है।
5. यह बड़ी संख्या वाले कक्षा-कक्ष में सम्भव नहीं होता हैं।
6. इसमें समय तथा शक्ति का प्रयोग अधिक होता है।

ऊपर वर्णित हानियों तथा सीमाओं के बावजूद भी यह मूल्यांकन बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी उपयोगिता को बढ़ाना अध्यापक पर निर्भर करता है। यह न केवल विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की जांच ही करता है अपितु उनमें सुधार लाने का प्रयत्न भी करता है।

अधिगम एवं शिक्षण

(LEARNING AND TEACHING)

Mr. Vikas Sharma
Mrs. Monika Rani
Mrs. Ranjana

TANDON PUBLICATIONS®
Head Office : LUDHIANA
Branch Office : JALANDHAR

ISBN 93-85720-00-7